पुस्तक -

खरतरगच्छीय श्रीपंचप्रतिक्रमण सूत्र
तथा सप्तस्मरण सार्थ

विषय -

चरणकरणानुयोग

संयोजक -

श्रावक-पंडित श्रीमान् हीरालाल जी दूगड़ जै

प्रेरक-

मुनिराज प्रभाकरसागर जी महाराज

प्रस्तावना लेखक-

पं० श्रीमान् हीरालाल जी दूगड़ जैन

पुस्तक पृष्ठ-

६४+५३२=५९६

प्रथम हिन्दी प्रकाशन -

विक्रम संवत् २०२७; ईस्वी सन् १९७०
वीर निर्वाण संवत् २४९६; शक संवत्

पुस्तक संख्या -

२०००

प्रकाशक -

आनन्द ज्ञानमंदिर
सैलाना (रतलाम) म० प्र०

मूल्य -

छह रुपये

मुद्रक -

उद्योगशाला प्रेस किंग्जवे-दिल्ली ९

[illegible]

[illegible]

[illegible] पाया है।

हम इस कार्य के लिए [illegible] महानगंयत) [illegible] श्रीमान पंडित श्री हीरालाल जी [illegible] जितना भी आभार माने उतना ही थोड़ा है, अधिक क्या लिखें।

इसके प्रकाशन में प्रेरणा तथा आर्थिक सहयोग दिलाने में श्रीयुत् [illegible] वीचंदजी साहू सिवनी (मध्यप्रदेश) वालों का विशेष रूप से सहयोग रहा है। ये भी धन्यवाद के पात्र हैं।

दिल्ली निवासी श्रेष्ठिवर्य श्रीमान् धनपतसिंह जी साहब पंगानी दादाजी मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि जी महाराज साहेब की समाधिस्थल महीदादवाड़ी के कुशल मानद व्यवस्थापक (ऑनरेरी मेनेजर) तथा खरतरगच्छ श्रीसंघ में अनन्य गुरुभक्त श्राद्धरत्न हैं, उनके भी हम आभारी हैं जिन्होंने बड़ी लगन के साथ इस पुस्तक प्रकाशन आदि कार्य में प्राप्त धनराशि के खर्च की सारी व्यवस्था स्वयं कर पूर्ण सहयोग दिया है। अतः उनकी इस शासन सेवा के लिए हम हार्दिक अनुमोदना करते हैं।

इस ग्रंथरत्न के प्रकाशन के लिये जिन-जिन महानुभावों ने आर्थिक सहयोग दिया है (सहायक महानुभावों की सूची अलग दी गई है)

ये भी धन्यवाद के पात्र हैं और शासनदेव से आशा करते हैं कि आगे भी जैनशासन की प्रभावना के लिए उदारचेता श्रावकरत्न इसी प्रकार उदारतापूर्वक ज्ञान प्रकाशन के कार्यों में सहयोग देते रहेंगे।

यह हिन्दी अनुवाद पाठकों के करकमलों में समर्पित करते हुए हम आशा करते हैं कि सूत्रों का शुद्ध पाठ कंठस्थ किया जाय, उनका वास्तविक अर्थ समझा जाय, इस दृष्टि से सुज्ञ श्रावक—श्राविका समुदाय इस पुस्तक का उपयोग करने की भावना रखें तथा इसका उचित सत्कार करें एवं इस का सदुपयोग करके अपनी आत्मा की प्रवृत्ति को जागृत करें।

प्रेस की असावधानी से जो अशुद्धियां छपने में रह गई हैं उन का शुद्धिपत्रक पुस्तक के अन्त में दे दिया गया है सो जिस जिस पाठ में अशुद्धि छपी है उसे शुद्ध करके पढ़ें तथा कंठस्थ करें ताकि अशुद्ध पढ़ने तथा याद करने का भागी न बनना पड़े। इस के अतिरिक्त यदि कोई अक्षर-मात्रा रेफ आदि छपने से टूट गया हो अथवा और भी कोई अशुद्धि मालूम पड़े तो उसे भी शुद्ध कर लेवें।

इतना होने पर भी प्रमादादि दोष से कोई त्रुटि रह गई हो तो विद्वज्जन क्षमा करते हुए हमें सूचित करें। जिससे अगली आवृत्ति में संशोधन किया जा सके।

दिनांक

वि० सं० २०२७
आषाढ़ शुक्ला ११
१५—७—१९७०

निवेदक—

मांगीलाल ग्वालेरी
क्युरेटर-आनन्द ज्ञानमन्दिर
सैलाना (म०प्र०)

धर्मप्रेमी श्री सम्पतलाल जी गोलेच्छा

फलोधी-हाल कटनी

स्वर्गवास ता० २७-१-१९७० कटनीमें

चित्र-परिचय

स्व० श्री सम्पतलालजी सा० का संक्षिप्त जीवन परिचय

आपका जन्म वि० संवत् १९५० में मिति पोष सुदी १० को हुआ। बचपन से ही आपकी प्रवृत्ति बहुत धार्मिक रही है। आपने सिर्फ १८ वर्ष की उम्र में ही कटनी आकर कपड़े का व्यवसाय प्रारंभ किया जिसे अपने पुरुषार्थकौशल और बुद्धि की सूझबूझ के बलपर कई गुना बढ़ाया। इस व्यवसाय में आपने न केवल कटनी में वरन चारों ओर आस-पास के क्षेत्र में काफी ख्याति अर्जित की। इसके साथ साथ समाज में भी आपने अपना उच्च स्थान बनाया।

कहा जाता है कि दया धर्म का मूल है। श्री सम्पतलालजी का हृदय पूर्णतया दया से ओतप्रोत था। लगभग ७७ वर्ष की अवस्था में भी आप सुबह बाजार जाकर गरीबों के खाने का सामान (केले, सन्तरे, आम, पपीता इत्यादि) लाकर उसे अपने हाथों से उन्हें बांटते थे। यह कार्य आपकी दिनचर्या का अंग सा बन गया था। दूसरी तरफ़ आप इस क्षेत्र में विचरनेवाले साधु साध्वियों की भावभक्ति का पुनीत कार्य सम्पन्न करते थे। कटनी में पधारनें वाले साधु साध्वियों के लिये आवश्यक लगभग सभी सामान आपके पास हर समय तैयार रहता था। जो कि रास्ते में अन्य कहीं उपलब्ध नहीं हो पाता था। इस तरह आप अपार लाभ का अर्जन करते थे।

जैन दर्शन के प्रति आपको दृढ़ श्रद्धा थी। जिसके वशीभूत होकर आपने समय समय पर कई संघ निकलवाने का आयोजन किया।

इस तरह हम देखते हैं कि [illegible] का सम्पूर्ण जीवनकाल पुनीत कार्यों से भरा पड़ा है। [illegible] एवं शांत प्रकृति के पुरुष थे। जो जैसा करेगा [illegible] पायेगा इस उक्ति को आपने सत्य कर दिखलाया है।

कहने का सारांश यह है कि आपका सारा जीवन धार्मिक प्रवृत्तियों मे ओतप्रोत रहा है। इस के साथ पंचप्रतिक्रमण के प्रकाशन में भी आपने रुपया १५१५) प्रदान करने की उदारता दिखलायी है।

पुस्तक छपने की तैयारी में ही थी कि श्री सम्पतलालजी के अचानक पांव में चोट आ गई जिसकी तकलीफ करीबन दो माह तक बनी रही। इन दो महीनों में भी आप पद्मावती आलोयण एवं अन्य धार्मिक सूत्र सुनते ही रहते थे। तारीख २७ जनवरी सन् १९७० ई० मिति माघ वदी ५ मंगलवार वि० संवत् २०२६ को आप श्रीजी शरण हुए। मरण के पहले ही आपने कह दिया था कि मेरे पीछे कोई भी प्रकार का शोक-संताप मत करना। यह शरीर तो नाशवान ही है। इस के लिये शोक-संताप क्यों ?

पुस्तक प्रकाशनमें आर्थिक सहयोग
दाताओं की सूचि

१५१५)	श्री सम्पतलाल, सोहनलाल, तिलोकचंद, अशोककुमार गोलेछा।	कटनी
५०१)	सौ० मनोहर ध०प० अमरचंदजी लूनिया।	दुर्ग
५०१)	सौ० रतन ध०प० प्रेमराजजी गोलेछा।	दुर्ग
५००)	एक सौभाग्यवती।	गुप्त
५०१)	श्रीयुक्त सौभागमलजी आइदानजी लूनिया।	गोंदिया

६—सम्यक्चारित्र की प्राप्ति के लिये तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट आचार का आचरण है, जो सम्यक्त्व युक्त बारहव्रत श्रावक के तथा साधु के पांच महाव्रतों के आचरण से प्राप्त होता है। इस चारित्र में उत्तरोत्तर विशुद्धि लाने के लिये 'आवश्यक क्रिया-सामायिक, प्रतिक्रमण आदि छह आवश्यक प्रतिदिन करने परमावश्यक है।

आवश्यक

प्रस्तुत ग्रंथका विषय 'षट् आवश्यक' है अतः इसी के विषय में कुछ लिखना आवश्यक है। प्रभात में तथा संध्या काल में जो कर्तव्य अवश्य करने योग्य है; जो क्रिया दोनों समय मानव मात्र के लिये करना आवश्यक है वह क्रिया प्रतिक्रमण कहलाती है। यह क्रिया आत्मा के विकास को लक्ष्य में रखकर की जाय तो सम्यक्त्व, तथा चारित्र आदि गुणों की शुद्धि होते हुए क्रमशः मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस लिये इस आवश्यक क्रिया को शास्त्रों में आध्यात्मिक क्रिया कहा गया है।

इस प्रतिक्रमण के हेतु तथा रचना का विचार करने से ज्ञात होता है कि इन छह आवश्यकों का जो क्रम शास्त्रों में बतलाया गया है उससे इनका कार्यकारणभाव स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। मात्र इतना ही नहीं परन्तु इस अनुक्रम में यदि कोई फेरफार किया जावे तो जो स्वाभाविकता इस अनुक्रम में है; वह न रह पावेगी।

सामायिक आदि षट् आवश्यक जिन का हम आगे वर्णन करेंगे, का अर्थ सामान्यरीत्या विचार करने से प्रतीत होता है कि इन आवश्यक क्रियाओं को करने से आश्रव का निरोध होकर संवर की प्राप्ति तथा तृष्णा का लोप होता है। ऐसा होने से समभाव प्रगट होते हुए क्रमशः यह क्रिया करने वाला व्यक्ति मुक्ति पा सकता है।

प्रतिक्रमण :—भूतकाल में लगे हुए दोषों को पश्चातापपूर्वक क्षमा

मांगना, संवर करके वर्तमान [illegible] दोषों [illegible]
भविष्य काल में लगने वाले दोषों का प्रत्याख्यान करके [illegible]
यह त्रिकालवर्ती आत्मा को दोषों से [illegible] के लिये प्रतिक्रमण करने
का उत्तम हेतु है।

प्रतिक्रमण को आवश्यक भी कहते हैं। आवश्यक का अर्थ है "अवश्यं करणात् आवश्यकम्"। जो अवश्य किया जाय वह आवश्यक है। इस बात की पुष्टि अनुयोगद्वार सूत्र की निम्नोक्त गाथा से होती है।

"समणेण सावएण य, अवस्स कायव्वयं हवइ जम्हा।
अंतो अहो निसस्स य, तम्हा आवस्सयं नाम ॥१॥

आवश्यक के पर्याय

पर्याय का दूसरा नाम अर्थान्तर है। अनुयोगद्वार सूत्र में 'आवश्यक, के निम्नोक्त पर्याय बतलाये गये हैं :—

"आवस्सयं अवस्स-करणिज्जं, धुव-निग्गहो विसोही य।
अज्झयण-छक्कवग्गो, नाओ आराहणा मग्गो ॥१॥"

अर्थात्—आवश्यक, अवश्यकरणीय, ध्रुवनिग्रह, विशोधि, अध्ययन षट्वर्ग, न्याय, आराधना, मार्ग।

उपर्युक्त आठ पर्यायवाची शब्द अर्थभेद रखते हुए भी मूलतः समानार्थक है।

१-आवश्यक[1]—अवश्य करने योग्य कार्य आवश्यक कहलाता है। सामायिक आदि की साधना साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका के द्वारा

---

१ आवश्यक—यह साधु तथा श्रावक दोनों की आवश्यक क्रिया है। परन्तु दोनों की विधि में अन्तर है और ऐसा होना स्वाभाविक भी है क्योंकि साधु सर्वविरति है और श्रावक देशविरति है। साधु

अवश्य करने योग्य है; इसलिये यह आवश्यक क्रिया है।

२-अवश्यकरणीय—मोक्षाभिलाषी आत्माओं के द्वारा अवश्य अनुष्ठेय होने से अवश्यकरणीय है।

३-ध्रुवनिग्रह—आत्मा के साथ कर्मों का अनादि सम्बन्ध होने से कर्मों को ध्रुव कहते हैं। कर्मों का फल जन्म-मरण आदि संसार भी अनादि है। अतः यह भी ध्रुव कहलाता है।। जो कर्म और कर्मफल स्वरूप संसार का निग्रह करता है, वह ध्रुवनिग्रह है।

४-विशोधि—कर्म मलिन आत्मा की विशुद्धि का हेतु होने से विशोधि कहलाता है।

अध्ययन षट्वर्ग—आवश्यक सूत्र के सामायिक आदि छह अध्ययन हैं। अतः अध्ययन षट्वर्ग है।

६-न्याय—अभीष्ट अर्थ की सिद्धि का सम्यग् उपाय होने के कारण इसे न्याय कहते हैं।

७-आराधना—मोक्ष की आराधना का हेतु होने के कारण इसे आराधना है।

८-मार्ग—मोक्ष का प्रापक होने के कारण इसे मार्ग कहते है। मार्ग का अर्थ उपाय है।

अध्ययन षट्वर्ग

अनुयोगद्वार सूत्रमें आवश्यक के छह प्रकार कहे गए हैं:—

को प्रतिदिन प्रातः-सायं दोनों समय प्रतिक्रमण करना अनिवार्य है तथा श्रावकों को भी प्रतिदिन दोनों समय प्रतिक्रमण करना चाहिये। कुछ श्रावक प्रतिक्रमण नित्य करते हैं, कुछ पर्व के दिनों में कुछ पर्युषणों में और कुछ ऐसे भी हैं जो सवत्सरी को करते हैं। अतः प्रत्येक श्रावक को प्रतिक्रमण-सम्बन्धी जानकारी अवश्य कर लेनी चाहिये।

१-सामायिक [illegible]

५-काउस्सग्गो ६-पच्चक्खाण ।

१-सामायिक का लक्षण

"समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना ।

आर्त्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम् ॥"

अर्थात्--सब जीवों के प्रति राग द्वेष रहित समभाव रखना, संयम-पांचों इन्द्रियों तथा मन के विकारों को वश में रखना, शुभ भावना रखना, आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान का त्यागकर धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान का ध्याना यह सामायिक व्रत कहलाता है।

सामायिक का मुख्य लक्षण समता है। समता का अर्थ है, मन की स्थिरता, राग-द्वेष की उपशान्ति, समभाव, एकीभाव सुख-दुःख में निश्चलता, इत्यादि। समता आत्मा का स्वरूप है और विषमता पर-स्वभाव, यानी कर्मों का स्वभाव है। अतः समता का फलितार्थ यह हुआ कि कर्म निमित्त से होनेवाले राग आदि विषम भावों की ओर से आत्मा को हटाकर, स्व-स्वभाव में रमण करना ही समता है।

सामायिक[२] का रूढ़ार्थ

श्रावक की सामायिक जो एक बहुत ही पवित्र एवं विशुद्ध क्रिया है उसका रूढ़ार्थ यह है कि शुद्ध पवित्र एकांत स्थान में शुद्धासन बिछा कर, शुद्धवस्त्र पहनकर कम से कम दो घड़ी (४८ मिनट) तक 'करेमिभंते' के पाठ से सावद्य व्यापारों का त्यागकर सांसारिक झंझटों से अलग होकर अपनी योग्यता के अनुसार अध्ययन, आत्मचिंतन, ध्यान, चिंतन-मनन, जप, धर्मादि करना सामायिक है।

---

२ सामायिक के विषय में विस्तार से इसी प्रस्तावना में आगे लिखा है। वहां से जान लेना।

२-चतुर्विंशति स्तव का स्वरूप :—

चौबीस तीर्थंकर जो कि सर्व गुण सम्पन्न आदर्श हैं उनकी स्तुति करने रूप है। इसके द्रव्य और भाव दो भेद हैं। पुष्पादि द्वारा तीर्थंकरों की पूजा करना द्रव्य स्तव है। और उनके वास्तविक गुणों का कीर्तन करना भावस्तव है। गृहस्थ के लिये द्रव्य और भाव दोनों स्तव करना आवश्यक है। मुनि को मात्र भाव स्तव। पर गृहस्थ को भी सामायिक प्रतिक्रमण पोसह आदि में द्रव्य स्तव का त्याग है क्योंकि शास्त्र में सामायिक में श्रावक को भी साधु के समान कहा है; यथा :—

"सामायम्मि उ कए समणो इव सावओ हवइ जम्हा"

पर सामायिक के अलावा गृहस्थ के लिये द्रव्य स्तव कितना लाभदायक है इस बात को विस्तार पूर्वक आवश्यक निर्युक्ति में बतलाया है। उपदेशप्रसाद में भी कहा है कि :—

"सावलेपं विहायैव समृद्धिमान सदुपासकः।
भक्ति पूर्वं जिनं स्तौति स एव जगदुत्तमः॥"

अर्थात्—उत्तमपुरुषों का उपासक समृद्धिवाला जो श्रावक गर्व का त्याग कर भक्ति पूर्वक जिनेश्वर प्रभु की स्तुति करता है वही जगत में उत्तम है।

सिंदूर प्रकर में भी कहा है कि :—

"पापं लुंपति दुर्गतिं दलयति व्यापदयत्यापदं,
पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते पुष्णाति नीरोगताम्।
सौभाग्यं विदधाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः,
स्वर्गं यच्छति निर्वृत्तिं च रचयत्यर्चार्हतां निर्मिता॥"

अर्थात् श्री अरिहंतों की पूजा पापों का लोप करती है, दुर्गति को दमित करती है, आपदाओं का नाश करती है, पुण्य को इकट्ठा करती है। श्री की वृद्धि करती है, आरोग्यता से पवित्र करती है,

सौभाग्य को देती है, प्रीति को बढ़ाती है, यश को उत्पन्न करती है, स्वर्ग को देती है और अंत में मोक्ष की रचना करती है।

"ते जन्मभाजः खलु जीवलोके, येषां मनो ध्यायति अर्हन्नाथम्।
वाणी गुणान् स्तौति कथां शृणोति श्रोत्रद्वयं ते भवमुत्तरन्ति॥

अर्थात्—जिनका मन अरिहंत भगवान् का ध्यान करता है, जिनकी वाणी उनके गुणों का स्तवन करती है और जिन के दो कान उनकी कथा सुनते हैं, उन्हीं का इस लोक में लिया हुआ जन्म वास्तव में सार्थक है और वे ही संसार को पार कर मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

३-वन्दन का स्वरूप :—

मन, वचन और काया का वह व्यापार वन्दन है, जिस से पूज्यों के प्रति बहुमान प्रगट किया जाता है। शास्त्र में वन्दन के चितिकर्म, कृतिकर्म, पूजाकर्म आदि पर्याय प्रसिद्ध है। द्रव्य और भाव उभय चारित्र सम्पन्न मुनि ही वन्द्य हैं। वन्दना क्रिया का उद्देश्य नम्रता भाव प्राप्त करना है। विनीत साधक ही सच्चा संयमी हो सकता है।

४-प्रतिक्रमण का स्वरूप :—

प्रमादवश शुभयोग से गिरकर अशुभ योग को प्राप्त करने के बाद फिर से शुभ योग को प्राप्त करना—यह प्रतिक्रमण है। जिस को आचार्य हरिभद्र सूरि ने आवश्यक सूत्र की टीका में इस प्रकार कहा है :—

स्वस्थानाद् यत्परस्थानं, प्रमादस्य वशाद् गतः।
तत्रैव क्रमणं भूयः प्रतिक्रमणमुच्यते॥

अर्थात् अशुभ योग को छोड़कर उत्तरोत्तर शुभयोग में वर्तना

(१) सावद्य योग विरति, (२) उत्कीर्तन, (३) गुणवत्प्रतिपत्ति, (४) स्खलित— निंदनम्; (५) व्रण चिकित्सा, और (६) गुणधारण।

१— सावद्य योग विरति हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म, और मूर्छा आदि सावद्ययोगों का त्याग करना। आत्मा में सावद्यकर्मों का आश्रव पाप प्रयत्नोंद्वारा होता है, अतः सावद्य व्यापारों का त्यागकरना ही सामायिक है

२— उत्कीर्तन— तीर्थंकरदेव स्वयं कर्मों को क्षय करके शुद्ध हुए हैं दूसरों को आत्मशुद्धि के लिये सावद्य योग विरति का उपदेश देते है अतः उन के गुणों की स्तुति करना उत्कीर्तन है। यह चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक है।

३— गुण— वत्प्रतिपत्ति— अहिंसा आदि पांच महाव्रतों के धारक संयमी साधु— मुनिराज हैं उन की वन्दना आदि के द्वारा उचित प्रतिपत्ति करना गुणवत्प्रतिपत्ति है। यह वन्दना आवश्यक है।

४—स्खलित— निन्दना— संयम का पालन करते हुए साधक से प्रमादादि के कारण स्खलनाएं हो जाती हैं उन की शुद्धि अंतःकरण से परमोत्तम भावना में पहुँच कर निन्दा करना स्खलित निन्दना है। दोष को दोष मान कर निन्दा करना ही वस्तुतः प्रतिक्रमण है

५— व्रण— चिकित्सा— स्वकृत चारित्र साधनामें जब कभी अतिचार रूप दोष लगता है तो वह एक प्रकार का भाव व्रण (घाव) हो जाता है कायोत्सर्ग एक प्रकार का प्रायश्चित है जो इस भावव्रण पर चिकित्सा का काम करता है। अतः कायोत्सर्ग का दूसरा नाम ही व्रण चिकित्सा है।

६— गुणधारना — कायोत्सर्ग के द्वारा भावव्रण के ठीक होते ही साधक का धर्म जीवन अपनी ठीक स्थिति में आजाता है। प्रत्याख्यान के द्वारा फिर उस शुद्ध स्थिति को परिपुष्ट किया जाता है। पहले की अपेक्षा और भी अधिक बलवान बनाया जाता है। किसी त्याग रूप गुण को निरातिचार रूप से धारण करना गुणधारण है। गुण-धारणा प्रत्याख्यान का दूसरा नाम है।

आवश्यक के क्रम की स्वाभाविकता

(१) जो अन्तर्दृष्टिवाले हैं उन के जीवन का प्रधान लक्ष्य सम-भाव—सामायिक प्राप्त करना है। इसलिये उनके प्रत्येक व्यवहार में समभाव का दर्शन होता है। (२) अन्तर्दृष्टिवाले जब किसी को समभाव की पूर्णता के शिखर पर पहुँचे हुए जानते हैं, तब वे उनके वास्तविक गुणों की स्तुति करने लगते हैं और उन्हें अपना आदर्श मान कर गुण प्राप्त करने में कटिबद्ध हो जाते हैं। (३) इसी तरह वे समभावस्थित साधु पुरुषों को वन्दन नमस्कार करना भी नहीं भूलते। (४) अन्तर्दृष्टिवालों के जीवन में ऐसी स्फूर्ति—अप्रमत्तता होती है कि कदाचित वे पूर्व—वासना वश या कुसंसर्गवश समभाव से गिर जावें, तब भी उस अप्रमत्तता के कारण प्रतिक्रमण करके वे अपनी पूर्व प्राप्त स्थिति से आगे भी बढ़ जाते हैं। (५) ध्यान ही आध्यात्मिक जीवन के विकास की कुंजी है। इसके लिए अन्तर्दृष्टिवाले बार-बार ध्यान—कायोत्सर्ग किया करते हैं। (६) ध्यान द्वारा चित्तशुद्धि करते करते वे आत्मस्वरूप में विशेषतया लीन हो जाते हैं। अतएव जड़ वस्तुओं के भोग का परित्याग—प्रत्याख्यान भी उन के लिये साहजिक क्रिया है। इस प्रकार यह स्पष्ट सिद्ध है कि आध्यात्मिक पुरुषों के उच्च तथा स्वाभाविक जीवन का पृथक्करण ही आवश्यक क्रिया के क्रम का आधार है।

जब तक सामायिक प्राप्त न हो तब तक चतुर्विंशति स्तव भाव-पूर्वक किया ही नही जा सकता। क्योंकि जो स्वयं समभाव को प्राप्त नहीं है, वह समभाव में स्थित महात्माओं के गुणों को जान नहीं सकता और न उन से प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा ही कर सकता है इस लिये सामायिक के बाद चतुर्विंशति स्तव है।

चतुर्विंशति स्तव का अधिकारी वन्दन को यथाविधि कर सकता है

क्योंकि जिसने चौबीस तीर्थंकरों के गुणों से प्रसन्न होकर उनकी स्तुति नहीं की है, वह तीर्थंकरों के मार्ग के अनुगामी तथा उपदेशक सद्गुरु को भावपूर्वक वन्दन कैसे कर सकता है ? इस से वन्दन को चतुर्विंशतिस्तव के बाद रखा है।

वन्दन के पश्चात् प्रतिक्रमण को रखने का आशय यह है कि आलोचना गुरु समक्ष की जाती है जो गुरुवन्दन नहीं करता, वह आलोचना का अधिकारी ही नहीं। गुरुवन्दन के सिवाय की जाने वाली आलोचना नाममात्र की आलोचना है उस से कोई साध्यसिद्धि नहीं हो सकती। सच्ची आलोचना करने वाले अधिकारी के परिणाम इतने नम्र और कोमल होते हैं कि जिससे वह आप ही आप गुरु के पैरों पर सिर नमाता है।

कायोत्सर्ग की योग्यता प्रतिक्रमण कर लेने पर ही आती है। इस का कारण यह है कि जब तक प्रतिक्रमण द्वारा पाप की आलोचना करके चित्त शुद्धि न की जाय, तब तक धर्मध्यान या शुक्लध्यान के लिये एकाग्रता संपादन करने का जो कायोत्सर्ग का उद्देश्य है, वह किसी तरह सिद्ध नहीं हो सकता। आलोचना के द्वारा चित्त शुद्धि किये बिना जो कायोत्सर्ग करता है, उसके मुँह से चाहे किसी शब्द विशेष का जप हुआ करे, लेकिन उसके दिल में उच्च ध्येय का विचार कभी नहीं आता वह अनुभूत विषयों का ही चिन्तन किया करता है।

कायोत्सर्ग करके जो विशेष चित्तशुद्धि, एकाग्रता और आत्म-बल प्राप्त करता है वही प्रत्याख्यान का सच्चा अधिकारी है। जिस ने एकाग्रता प्राप्त नहीं की है और संकल्प बल भी पैदा नहीं किया, वह यदि प्रत्याख्यान भी करले तो भी उसका ठीक ठीक निर्वाह नहीं कर सकता। प्रत्याख्यान सब से ऊपर की आवश्यक क्रिया है। उस के लिये विशिष्ट चित्तशुद्धि और विशेष उत्साह की आवश्यकता है,

तीर्थंकर भगवन्तों ने श्रावकधर्म के बारह व्रत बतलाये हैं। जिसमें नवमां व्रत "सामायिक" बतलाया है। गृहस्थों के लिये 'सामायिक" प्रतिदिन करने की क्रिया है। हो सके तो एक ही दिन में कई बार सामायिक करनी चाहिये। सामायिक के भेदानुभेद गुरु महाराज से जान कर आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होना चाहिये। यहाँ विस्तार भय से भेदों का विस्तार नहीं किया।

पूणिया श्रावक जिसने सामायिक व्रत का पालन कर अपने आत्म कल्याण का ध्येय प्राप्त किया है। जिस की आदर्श सामायिक की प्रशंसा श्री महावीरप्रभुने अपने श्रीमुख से श्रेणिक राजा के सन्मुख की है। इसी महापुरुष की सामायिक का दृष्टांत सामने रख कर श्रद्धापूर्वक समता सहित सामायिक करनी चाहिये। कहा भी है कि :-

"समकित द्वार गभारे पेसतां जी, पाप पडल गया दूर रे ॥१॥"

पूणिया श्रावक की कथा आगे कहेंगे।

सामायिक का शब्दार्थ

सम अर्थात् मध्यस्थ—सब जीवों के प्रति समभाव-राग द्वेष के अभाव वाले परिणाम। आय अर्थात् ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र रूप लाभ इक भाव में प्रत्यय है।

(१) ज्ञान दर्शन और चारित्र रूप भाव हो उसे सामायिक कहते हैं।

(२) सावद्य योग (पाप व्यापार) का त्याग और निरवद्य योग (पाप रहित व्यापार) सेवन करने के परिणाम हों तब सामायिक कहलाती है।

(३) सर्वजीवोंके साथ मैत्रीभाव हो उसे सामायिक कहते हैं।

(४) जो मोक्ष प्राप्त करने में ज्ञान, दर्शन, चारित्र का एक समान सामर्थ्य प्राप्त करावे उसे सामायिक कहते हैं।

(५) सब प्रकार के राग द्वेष उत्पन्न करानेवाले परिणामों

को समाप्त कर देने का प्रयास करना सामायिक है।

(६) रागद्वेष रहित जीव को ज्ञानादि का लाभ [illegible] को सामायिक कहते हैं।

(७) मन वचन काया की पापवाली चेष्टाओं का त्याग कर सब वस्तुओं में सम परिणाम रखना, इसको सामायिक कहते हैं।

(८) मन वचन और काया को स्थिर कर समत्व योग की प्राप्ति के मार्ग में प्रयाण करना ही सामायिक है।

(९) सावद्य प्रवृत्तियों पर अरुचि, पाप का पश्चात्ताप, समता और मुक्ति के लिये प्रयास करना सामायिक कहलाती है।

सामायिक करने की विधि

शुद्ध वस्त्र पहन कर आसन चरवला और मुहपत्ति लेकर शुद्ध पवित्र स्थान में चरवले से भूमि को साफ कर आसन को बिछावें। राग-द्वेष रहित शान्त स्थिति में दो घड़ी अर्थात् ४८ मिनट तक आसन पर बैठ कर विधि पूर्वक सामायिक व्रत ग्रहण करें।

इतने समय में आत्म तत्त्व की विचारणा, जीवन शोधन का पर्यालोचन, जीवन विकासक धर्मशास्त्रों का परिशीलन, आध्यात्मिक स्वाध्याय अथवा परमात्मा की भक्ति, जाप इत्यादि जो अपने को पंसद हो किया जाता है।

सामायिक में रहा हुआ जीव निन्दा-प्रशंसा में समता रखे, मान-अपमान, करनेवालों पर भी समता रक्खे।

विचार शून्य बनकर एक स्थान पर बैठे रहना ही सामायिक नहीं है। क्रोध, द्वेष, अभिमान, लोभ, कपट आदि पर नियंत्रण कर, पापयुक्त क्रियाओं को रोककर, समस्त चराचर जीवों के साथ समभाव रखकर "करेमि भंते" की प्रतिज्ञा लेकर और आधि-व्याधियों को भूल कर किये जाने वाली सामायिक ही श्रेष्ठ-उत्तम फल देने वाली है।

उ०—मैं आत्मभाव में प्रवेश कर रहा हूँ।

(८) प्र०—मैं सामायिक करता हूँ?

उ०—मैं तृष्णा का त्याग कर रहा हूँ।

सामायिक प्रशंसा

(१) सामायिक मोक्ष का उत्कृष्ट अंग है क्योंकि इसमें समता भाव मुख्य है, आराधक को उपसर्गकर्त्ताओं पर द्वेष और भक्ति करने वाले पर राग न करते हुए समदृष्टि रखनी होती है। जैसे कि चन्दन को कुठार काटता है या घिसने पर काटने पर और जलाने पर, सुगन्धी देता है इसी प्रकार उपसर्ग करने वाले पर महापुरुष प्रेम भाव रखता है और भक्ति करने वाले पर भी प्रेम भाव रखता है।

(२) सामायिक से विशुद्ध बनी हुई आत्मा सर्व प्रकार के घातिया कर्मों का नाश करके लोक तथा अलोक को देखती हुई केवलज्ञान प्राप्त करती है।

(३) करोड़ों जन्म में तीव्र तप तपते हुए भी जो कर्म क्षीण नहीं होते वे कर्म एक समतावान जीव समता पूर्वक सामायिक करके आधे क्षण में क्षीण करता है।

(४) बड़े से बड़े तीव्र तप किये जायें, अधिकाधिक जाप (माला) की जाये और चारित्र भी लेने में आ जाये, परन्तु समता बिना (उत्कृष्ट भावना सहित सामायिक बिना) किसी को आज तक मोक्ष हुआ नहीं, होता नहीं और भविष्य में होगा नहीं।

(५) इसी को शास्त्रकार दूसरी प्रकार से कहते हैं :—जो कोई मोक्ष गये हैं, जावेंगे अथवा जा रहे हैं, यह सब सामायिक का ही प्रभाव है। सामायिक व्रत ये मूल्यवान मोती के समान है, मोती को जितना जितना साफ किया जाता है उतना उतना उसका तेज निखरता है इसी प्रकार कायिक, वाचिक तथा मानसिक सावद्य व्यापारों को

—स्वरूप। लट्ठ—सुन्दर।

सम-प्पइट्ठा—समभाव में स्थिर।

सम—समभाव। प्पइट्ठा—स्थिर।

अदोस-दुट्ठा—दोष रहित।

गुणेहिं जिट्ठा—गुणोंसे अत्यन्त महान्।

पसाय-सिट्ठा—कृपा करनेमें उत्तम।

पसाय—कृपा। सिट्ठ—उत्तम।

तवेण पुट्ठा—तपके द्वारा पुष्ट।

तव—तप। पुट्ठ—पुष्ट।

सिरीहिं इट्ठा—लक्ष्मीसे पूजित।

रिसीहिं जुट्ठा—ऋषियोंसे सेवित।

ते—वे।

तवेण—तपके द्वारा।

धुअ-सव्व-पावया—सर्व पापोंको दूर करनेवाले।

धुअ—दूर करना।

सव्व-लोअ-हिअ-मूल-पावया— समग्र प्राणि समूहको हितका मार्ग दिखानेवाले।

सव्व—समग्र। लोअ—प्राणी।

हिअ— कल्याण, हित।

मूल—पावय—प्राप्त कराने-वाले, मार्ग दिखानेवाले।

संथुआ—अच्छी प्रकार स्तुत।

अजिअ-संति-पायया—पूज्य श्रीअजित-नाथ और श्रीशान्तिनाथ।

हुंतु—हों।

मे—मुझे।

सिव-सुहाण—मोक्ष सुखके।

दायया—देनेवाले।

भावार्थ—जो छत्र, चँवर, पताका, स्तम्भ, यव, श्रेष्ठ ध्वज, मकर (घड़ियाल), अश्व, श्रीवत्स, द्वीप, समुद्र, मन्दर पर्वत और ऐरावत हाथी आदि के शुभ लक्षणोंसे शोभित हो रहे हैं, जो स्वरूपसे सुन्दर, समभावमें स्थिर, दोष—रहित, गुण—श्रेष्ठ, बहुत तप करनेवाले, लक्ष्मीसे पूजित, ऋषियोंसे सेवित, तपके द्वारा सर्व पापोंको दूर करनेवाले और समग्र प्राणि—समूहको हितका मार्ग दिखानेवाले हैं, वे अच्छी तरह स्तुत, पूज्य श्रीअजितनाथ और श्रीशान्तिनाथ मुझे मोक्षसुखके देनेवाले हों ॥३२—३३—३४॥

(विशेषकद्वारा उपसंहार)

एवं तव-बल-विउलं, थुअं मए अजिअ-संति-जिण-जुअलं।
ववगय-कम्म-रय-मलं, गइं गयं सासयं विउलं ॥३५॥ गाहा

शब्दार्थ

जो—जो ।
पढइ—पढ़ता है ।
जो—जो ।
अ—और ।
निसुणइ—नित्य सुनता है ।
उभओ कालं पि—प्रातःकाल और सायङ्काल ।
अजिअ-संति-थयं—अजित-शान्ति-स्तव को ।
न हु हुंति—होते ही नहीं ।
तस्स—उसको ।
रोगा—रोग ।
पुव्वुप्पन्ना—पूर्वोत्पन्न ।
वि—भी ।
नासंति—नष्ट होते हैं ।

भावार्थ—"यह अजित-शान्ति-स्तव" जो मनुष्य प्रातःकाल और सायङ्काल पढ़ता है अथवा दूसरोंके मुखसे नित्य सुनता है, उसको रोग होते ही नहीं और पूर्वोत्पन्न रोग हों, वे भी नष्ट हो जाते हैं ॥३९॥

जइ इच्छह परम-पयं, अहवा कित्ति सुवित्थडं भुवणे ।
ता तेलुक्कुद्धरणे, जिण-वयणे आयरं कुणह ॥४०॥

शब्दार्थ

जइ—यदि ।
इच्छह—तुम चाहते हो ।
परम-पयं—परम-पदको ।
अहवा—अथवा ।
कित्ति—कीर्तिको ।
सुवित्थडं—अत्यन्त विशाल ।
भुवणे—जगत् में ।
तो—तो ।
तेलुक्कुद्धरणे—तीनों लोकका उद्धार करनेवाले ।
जिण-वयणे—जिन-वचनके प्रति ।
आयरं—आदर ।
कुणह—करो ।

भावार्थ—यदि परम पदको चाहते हो अथवा इस जगत्में अत्यन्त विशाल

धरेह कुणह—मन में स्मरण करो।	खिप्पं—शीघ्र ही।
जाणह—जानो।	विग्घं—विघ्नों का।
जेण—जिनसे।	घाएह—नाश करो।

भावार्थ—हे भव्यो ! तुम इस पवित्र स्तोत्र जोकि सारे दुःखों को नाश करने वाला है को पाक्षिक चातुर्मासिक या सांवत्सरिक पर्व में पढ़ो, सुनो, स्वाध्याय करो, ध्यान करो, मन में स्मरण करो और भलीभांति जान कर जो जिससे तुम अपने विघ्नों को शीघ्र ही नाश करो।

इअ विजया—जिअसत्तु—पुत्त सिरि अजिअ—जिणेसर,
तह अइरा—विससेण—तणय पंचम चक्कीसर।
तित्थंकर सोलसम संति—जिण ! वल्लह संतह,
कुरु मंगल मम हरसु दुरिअ—मखिलंपि थुणंतह ॥१७॥

शब्दार्थ

विजया—विजयादेवी तथा।	तित्थंकर—तीर्थंकर (और)।
जिअसत्तु—जितशत्रु राजा के।	संतह—सज्जनों के वल्लभ (ऐसे)।
पुत्त—पुत्र।	संति—शांतिनाथ।
सिरि—श्री।	जिन—भगवान्।
अजिअ—अजितनाथ।	इअ—इस प्रकार।
जिणेस—जिनेश्वर।	थुणंतह—स्तुति करनेवाले।
तह—तथा।	मम—मुझ को।
अइरा—अचिरादेवी और।	मंगलं—सुख।
विससेण—विश्वसेन राजा के।	कुरु—करो (और)।
तणय—पुत्र।	अखिलंपि—सभी तरह के।
पंचम—पांचवें।	दुरिअं—पाप को।
चक्कीसर—चक्रवर्ती।	हरसु—अपहरण करो।
सोलसम—सोलहवें।	जिणवल्लह—जिन वल्लभ।

शब्दार्थ

ते जिणे—उन दो जिनेन्द्रों का ।
संभरामि—मैं स्मरण करता हूँ ।
जेसिं—जिनका ।
वयणं—वचन ।
इय—इस प्रकार ।
बहु-विह—बहुत प्रकार के ।
णय-भंगं—नयों के भेद वाला ।
कुणय-विरुद्ध—दुर्नयों से विरुद्ध ।
सुप्पसिद्ध—सुप्रसिद्ध ।
च—और ।
अवयणिज्जं—अवचनीय है जैसे कि
वत्थु—वस्तु ।
णिच्चं—नित्य और ।
अणिच्चं—अनित्य है ।
सदसदभिलप्पालप्पं—सत् और अ
हैं, वाच्य और अवाच्य हैं ।
एगं—एक और ।
अणेगं—अनेक हैं ।

भावार्थ—मैं उन दोनों जिन भगवन्तों का स्मरण करता हूं जि
वचन अनेक नयों की रचनावाला, दुर्नयोंसे विरुद्ध, सुप्रसिद्ध और अवचनी
जैसे कि वस्तुमात्र द्रव्यार्थिक नय के अभिप्राय से नित्य तथा पर्यायार्थिक न
दृष्टि से अनित्य है, स्वद्रव्यक्षेत्र आदि की अपेक्षासे विद्यमान और प
द्रव्यादिकी अपेक्षासे असत् है, क्रमसे बोलने योग्य और युगपत अवाच्य है
सदृश्य और विलक्षण है ॥८॥

पसरइ तिअ--लोए ताव मोहंधयारं,
भमइ जयमतण्णं ताव मिच्छत्त--छण्णं ।
फुरइ फुड--फलंताणंत--णाणंसु--पूरो,
पयडमजिअ--संतो--झाण--सूरो न जाव ॥९॥

शब्दार्थ

तिअ-लोए—तीनों जगत में ।
मोहंधयारं—मोह रूप अंधकार ।
ताव—तब तक ही ।
पसरइ—फैलता है (और) ।

ताव—तब तक ही ।
मिच्छत्त-छण्णं—मिथ्यात्व से आच्छादित (ढकी से) ।
असण्णं—संज्ञा रहित ।
जयं—जगत ।
जाय—जब तक ।
भमइ—विपरीत प्रवृत्ति करता है ।
फुड फलंत—स्पष्ट उल्लास को प्राप्त ।

अणंत-णाणं-सुपुरो—अनन्त ज्ञान रूप किरण समूह वाला ।
अजिअ-संतो — अजितनाथ और शांतिनाथ का ।
झाण-सुरो—ध्यान रूपी सूर्य ।
पयडं—प्रकट रूप से ।
न—नहीं ।
फुरइ—उदित होना ।

भावार्थ—तबतक ही तीन लोक में मोहरूप अंधकारकी प्रबलता रहती है और तबतक ही मिथ्यात्व से व्याप्त संज्ञा रहित जगत् विपरीत प्रवृत्तिवाला रहता है जबतक इन दो भगवन्तों (अजितनाथ और शांतिनाथ) के स्पष्ट और उल्लास प्राप्त ध्यान रूप किरण समूह वाला सूर्य उदय न हो अर्थात् सूर्यके उदयसे जैसे अंधेरा और नींद नष्ट हो जाते हैं ऐसे ही इन दोनों भगवन्तोंके ध्यानसे मोह और मिथ्यात्व नाश हो जाते हैं ॥६॥

अरि—करि—हरि—तिण्हुण्हंबु—चोराहि—वाही—
समर—डमर—मारी—रुद्द—खुद्दोवसग्गा ।
पलयमजिअ—संती—कित्तणे झत्ति जंती,
निविडतर—तमोहा—भक्खरालुं खिय व्व ॥१०॥

शब्दार्थ

अजिअ-संती — अजितनाथ और शांतिनाथ के ।
कित्तणं—गुण कीर्तनसे ।
अरि—शत्रु ।

करि—हाथी ।
हरि—सिंह ।
तिण्हुण्हंबु—तृष्णा, आतप, पानी ।
चोराहिवाही—चोर, मनोव्यथा, रोग ।

१—रोग के भय का नाश

सडिय-कर-चरण-नह-मुह-निबुड्ड-नासा विवन्न-लायन्ना।
कुट्ठ-महा-रोगानल-फुलिंग-निद्दड्ढ-सव्वंगा ॥२॥

शब्दार्थ

सडिय—सड़ गये हैं।
कर—हाथ।
चरण—पग।
नह—नख।
मुह—मुँह।
निव्वुड्ड-नासा—बैठ गया हो नाक जिसका।
विवन्न-लायन्ना — नाश पाया है लावण्य जिसका; विरूप लावण्य हो गया हो जिसका।
कुट्ठ-महारोग—कोढ़ नामक महारोग रूपी।
अनल-फुलिंग—अग्नि की चिंगारियों।
निद्दड्ढ—जला हुआ है।
सव्वंगा - सब अंग जिनका।

भावार्थ—जिनके हाथ, पैर, नाखुन और मुख सड़ गये हों, जिनकी नासिका बैठ गई हो, जिनका लावण्य नाश पाया हो, अथवा विरूप लावण्य हो गया हो और जिनके सब अंग कोढ़ नामक महारोगरूपी अग्नि की चिंगारियों द्वारा दग्ध हो गये हों ॥२॥

ते तुह चलणाराहण-सलिलंजलि-सेय-वुड्ढिय-च्छाया।
वण-दव-दड्ढा गिरि-पायवव्व पत्ता पुणो लच्छिं ॥३॥

शब्दार्थ

ते—वे मनुष्य।
तुह—तुम्हारे।
चलणाराहण—चरणों की आराधना रूप।
सलिलंजलि—जल की अंजलि के।
सेय—सिंचन से।
वुड्ढिय-च्छाया—वृद्धि पा गई है कांति जिनकी ऐसा।

समर—युद्ध ।
डमर—राजकीय उपद्रव ।
मारी—महामारी ।
पइसुद्दोवसग्गा—भयंकर व्यंतरादि के उपसर्ग—उपद्रव ।
भक्करालुंलिय—सूर्य से स्पृष्ट ।

निबिडतरतमोहा—प्रति निबिड अंधकार समूह को ।
व्व—तरह ।
झत्ति—शीघ्र, झटपट ।
पलयं—नाश को ।
जंति—प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—जैसे सूर्यके स्पर्शमात्र से प्रतिनिबिड अंधकार समूह शीघ्र ही नष्ट होता है वैसे श्रीअजितनाथजी तथा श्रीशांतिनाथजी के गुण कीर्तन स्तुति करने से शत्रु, हाथी, सिंह, प्यास, गरमी, पानी, चोर, आधि-व्याधि, संग्राम, राजकीय उपद्रव, मारी और व्यंतर आदि के भयंकर उपद्रव नाश हो जाते हैं ॥११०॥

निचिअ—दुरिअ—दारूद्दित्त—झाणग्गि—जाला—
परिगयमिव गोरं चितिअं जाण रूवं ।
कणय—निहस—रेहा—कंति—चोरं करिज्जा,
चिर—थिरमिह लच्छिं गाढ—संथंभिअव्व ॥११॥

शब्दार्थ

जाण—जिन भगवन्तों के ।
चितिअं—चिंतन किया गया ।
निचिअ—निबिड ।
दुरिअदारु—पाप काष्ठों से ।
उद्दित्त—उत्तेजित ।
झाणग्गि—ध्यानाग्नि की ।
जाला—ज्वालाओं से मानो ।
परिगयमिव—व्याप्त हो ऐसा ।
गोरं—उज्ज्वल [तथा] ।

कणयनिहस—कसौटी की ।
रेहा—रेखा ।
कंतिचोरं—कांति को चुराने वाला
रूवं—रूप ।
लच्छिं—लक्ष्मी को ।
इह—इस जगत् में ।
गाढ-संथंभिअव्व—अत्यन्त नियंत्रितसी
चिरथिरं—निश्चल ।
करिज्जा—करता है ।

वण-दव-दड्ढा—वन की दावानल से जले हुए।
गिरि-पायव—पर्वत के वृक्षों के।
व्व—समान।
पुणो—फिर से, पुनः।
लच्छिं—लक्ष्मी को।
पत्ता—पाये हैं।

भावार्थ—हे भगवन् ! वे मनुष्य आपके चरण कमलों की सेवा [illegible] की प्रणति (वृष्टि) के सिंचन से अधिक कान्ति वाले होकर वन के दावानल से जले हुए पर्वत के वृक्षों के समान फिर आरोग्य लक्ष्मी को [illegible] करते हैं ॥३॥

२ – जल के भय का नाश

दुव्वाय-खुभिय जलनिहि, उब्भड-कल्लोल-भीसणारावे।
संभंत--भय--विसंठुल--निज्जामय--मुक्क--वावारे ॥४॥
अविदलिय-जाणवत्ता, खणेण पावंति इच्छिअं कूलं।
पासजिण-चलण-जुअलं, निच्चं चिअ जे नमंति नरा ॥५॥

भावार्थ—विविध पाप रूप कोष्ठों से उपार्जित ध्यानाग्नि की ज्वालाओं से जो व्याप्त हो ऐसा और कसौटी के पत्थर की रेखा के तुल्य कांति वाले जो जिन भगवन्तों के उज्ज्वल स्वरूप का चिंतन करने पर सर्वांग शुद्ध—निश्चित से वस्तु चिरकाल तक स्थिर होती है ॥११॥

अडवि निवडिआणं पत्थिवुत्तासिआणं,
जलहि—लहरि—हीरंताण गुत्ति—ट्ठिआणं ।
जलिअ—जलण—जालालिंगिआणं च झाणं,
जणयइ लहु संति संतिनाहाजिआणं ॥१२॥

शब्दार्थ

संतिनाह-अजिआणं—शांतिनाथ तथा अजितनाथ का ।
झाणं—ध्यान ।
अडवि-निवडिआणं—जंगल में भूले पड़े लोगों को ।
पत्थिवुत्तासिआणं—राजा से उत्पीड़ितों को ।
जलहि—समुद्र के ।
लहरि—तरंगों से ।
हीरंताणं—खींचे जाते जनों को ।
गुत्तिट्ठिआणं—कैद में पड़े हुए लोगों को ।
च—और ।
जलिअ—सुलगी हुई ।
जलण—आग की ।
जाला—ज्वालाओं से ।
आलिंगिआणं—आश्लिष्टों को ।
लहु—शीघ्र ही ।
संति—शान्ति को ।
जणयइ—पैदा करता है ।

भावार्थ—भगवान श्रीशान्तिनाथजी तथा श्री अजितनाथजी का ध्यान, अटवी में भूले भटके हुए, राजा से पीड़ित किये गये, समुद्र में डूबे हुए, कैद में डाले हुए, प्रदीप्त आग की ज्वालाओं से घिरे हुए लोगों को शीघ्र ही उन दुःखों से मुक्त कराकर शान्ति को पैदा करता है ॥१२॥

विदलिअ - जाणवत्ता — सुरक्षित जहाज वाले होते हुए।
खणेण - पावंति — क्षणमात्र में पा लेते हैं।

भावार्थ—जिस समय प्रवल तुफान के कारण समुद्र क्षुब्ध हो उठता है, उसमें प्रचंड तरंगों से भयंकर आवाज आने लगती है और वचने का कोई भी उपाय न देख कर कर्णधार भी निराश होकर काम छोड़ देते हैं, उस समय भी भगवान् पार्श्वनाथ के चरणों को नित्य वन्दन करने वाले मनुष्य वाल-वाल बचकर शीघ्र ही अपने इच्छित स्थान को प्राप्त कर लेते हैं ।।४—५।।

३—अग्नि के भय का नाश

खर-पवणुद्धूय-वण-दव-जालावलि-मिलिअ-सयल-दुम-गहणे।
डज्झंत-मुद्ध-मय-वहु-भीसण-रव-भीसणम्मि वणे ।।६।।
जग-गुरुणो कम-जुअलं, निव्वाविअ-सयल-तिहुअणाभोअं।
जे संभरंति मणुआ, न कुणइ जलणो भयं तेसिं ।।७।।

शब्दार्थ

खर-पवण—प्रचंडवायु द्वारा।
उद्धूय—फैले हुए।
वण-दव—दावानल को।
जालावली—ज्वाला समूह से।
मिलिअ—मिली हुई है।
सयल—समग्र, संपूर्ण।
दुम-गहणे—वृक्षों के घने वण खंड में।
डज्झंत—जलती हुई।
मुद्धमयवहु—मुग्ध हरिणियों के।
भीसण—भयंकर।
रव—शब्द द्वारा।
भीसणम्मि—भयंकर।
वणे—वन में।
निव्वाविअ—सुखी किया है।
सयल—समग्र, सब।
तिहुणाभोअं — तीन भुवन का विस्तार।
जग-गुरुणो —जगत गुरु के।
कमजुअलं—चरण युगल को।
जे मणुआ—जो मनुष्य।

हरि—करि—परिकिण्णं पक्क पाइक्क पुण्णं,
सयल—पुहवि—रज्जं छड्डिउं आण—सज्जं।
तणमिव पड—लग्गं जे जिणा—मुत्ति—मग्गं,
चरणमणुपवण्णा हुंतु ते मे पसण्णा ॥१३॥

शब्दार्थ

जे जिणा—जिन जिनेश्वरों ने।
हरि-करि—घोड़ों और हाथियों से।
परिकिण्णं—व्याप्त।
पक्क—समर्थ।
पाइक्क—पदाति (पैदल) सेना से।
पुण्णं—पूर्ण [तथा]।
आणसज्जं—आज्ञापालक [ऐसे]।
सयल-पुहवि-रज्जं—संपूर्ण पृथ्वी के राज्य का।
पडलग्गं—कपड़े के लगे हुए।
तणमिव—तृण के समान।
छड्डिउं—परित्याग कर।
मुत्तिमग्गं—मोक्ष के मार्ग भूत।
चरणं—चारित्र को।
अणुपवण्णा—स्वीकार किया।
ते—वे। दोनों भगवान्।
मे पसण्णा हुंतु—मुझ पर प्रसन्न हों।

जिसमें सर्वत्र आज्ञा का पालन होता था और जो घोड़ों, हाथियों, रथों तथा समर्थ प्यादों से सुसज्जित चतुरंगी सेना से व्याप्त था ऐसे सकल पृथ्वी के राज्य को जिन जिनेश्वर भगवन्तों ने वस्त्र में लगे हुए तृण के समान छोड़कर मुक्ति मार्ग को ग्रहण किया वे मेरे पर प्रसन्न हों॥१३॥

छण—ससि—वयणाहिं फुल्ल—नेत्तुप्पलाहिं,
थण—भर—नमिरीहिं मुद्धि—गिज्झोदरीहिं।
ललिअ—भुअ—लयाहिं पीण—सोणि—त्थलाहिं,
सइ सुर रमणीहिं वंदिआ जेसिं पाया॥१४॥

अविलुत्त-विहव-सारा—संपत्ति और सार वस्तुओं को सुरक्षित रखते हुए।

विगय-विग्घा—विघ्न रहित तथा।

सिघं—शीघ्र।

हिअ-इच्छियं—मनोभिष्ट।

ठाणं— स्थान को।

हे भगवन् ! जो लोग निरतर आपको प्रणाम करने में ही लगे रहते हैं उन जंगलों में भी विघ्न बाधाओं को दूर करते हुए तथा अपने जान माल का आसानी से रक्षण करते हुए शीघ्र अपने मनोभिष्ट स्थान को पहुंच जाते हैं, जो (जंगल) भीलों, चोरों, पुलिंद तथा शेरों के शब्दों से भयंकर हैं तथा जहां पर मुसाफिर लोग भयभीत, दुःखित तथा कायर बनाकर लूट लिये जाते है ॥१०—११॥

६—सिंह के भय का नाश

पज्जलिआनल-नयणं, दूर-वियारिय-मुहं महा-कायं ।
नह-कुलिस-घाय-विअलिअ-गइंद-कुंभत्थला-ऽऽभोअं ॥१२॥
पणय-ससंभम-पत्थिव-नह-मणि-माणिक्क-पडिअ-पडिमस्स ।
तुह वयण-पहरण-धरा, सिंहं कुद्धंपि न गणंति ॥१३॥

शब्दार्थ

पज्जलिआनल — प्रज्वलित अग्नि के समान।

नयणं—आंखों वाले।

दूर—अत्यंत।

वियारिय—फैलाया है।

मुहं—मुंह जिसने।

महा-कायं—बड़े शरीर वाले।

नह-कुलिस-घाय—नख रूपी वज्र के प्रहार से।

विअलिअ—विदीर्ण किया।

गइंद कुंभत्थला-ऽऽभोअं—कुंभस्थलों का विस्तार जिसने।

कुद्धं पि सिंह— क्रोधी शेर को भी।

पणय-ससंभम--विनम्र तथा आदरवान।

शब्दार्थ

जेसिं—जिनके ।
पाया—चरणों को ।
छन-ससि-वयणाहिं—पूर्णिमा के चन्द्र जैसे मुखवाली ।
फुल्ल-नेत्तुप्पलाहिं—विकस्वर नेत्र रूप कमल वाली ।
थण-भर-नमिरीहिं—स्तनों के बोझसे झुकती हुई ।
मुट्ठि-गिज्झोयरीहिं—मुट्ठि से ग्रहण करने योग्य उदर वाली ।
ललिअ-भुअ-लयाहिं—ललित भुजलता वाली [और] ।
पीण-सोणि-त्थलाहिं पुष्ट नितम्ब वाली ।
सुर-रमणीहिं—देवाङ्गनाओं ने ।
सद—सदा, हमेशा ।
वंदिआ—वन्दन किया है [वे] ।

भावार्थ—जिनके मुख पूनम के चन्द्र समान थे, नेत्र विकासी कमल के समान थे, जो स्तनों के बोझ से झुक जाती थी, जिनका पेट कृश, भुजाएं ललित और नितम्बपुष्ट थे। ऐसी देवियों ने जिनके चरणों को सदा वन्दन किया है ॥१४॥

अरिस—किडिभ—कुट्ठ—गंठिकासाइसार—
खय—जर—वण—लूआ—सास—सोसोदराणि ।
नह—मुह—दसणच्छी—कुच्छि—कण्णाइ-रोगे,
मह जिण—जुअ—पाया स—प्पसाया हरंतु ॥१५॥

शब्दार्थ

जिण-जुअ-पाया—पूज्य दोनों जिनदेव ।
स-प्पसाया—प्रसन्न होते हुए ।
मह—मेरे ।
अरिस—बवासीर, मसा ।
किडिभ—चर्म रोग ।
कुट्ठ—कुष्ठ ।
गंठि—गठिया ।
कास—खांसी ।

पत्थिव—राजाओं का।	तुह—तुम्हारे, आपके।
नह-मणि-माणिक्क—जिनके नखरूपी मणियों तथा माणिक्यों में।	वयण-पहरण-धरा—वचनरूपी शस्त्र को धारण करने वाले मनुष्य।
पडिअ-पडिमस्स—प्रतिबिम्ब पड़ा है।	न गणंति—नहीं गिनते।

भावार्थ—हे पार्श्वनाथ प्रभो! आपके नखरूपी[1] मणियों तथा माणिक्यों में एकदम आकर प्रणाम करने वाले राजाओं के प्रतिबिम्ब पड़ते हैं, ऐसे आपके वचनरूपी शस्त्र को धारण करने वाले मनुष्य प्रज्वलित अग्नि जैसे लाल नेत्रों वाले अत्यन्त फाड़े हुए मुख वाले, भयानक शरीर वाले, नखरूपी वज्र के प्रहार द्वारा हाथियों के मस्तकों को विदीर्ण करने वाले तथा अति क्रोधित सिंह को भी कुछ नहीं गिनते। अर्थात् आपका नाम स्मरण करने वाले तथा प्रणाम करने वाले मनुष्य को उपर्युक्त प्रकार के भयंकर सिंह भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते ॥१२—१३॥

७—हाथी के भय का नाश

ससि–धवल–दंत–मुसलं, दीह–करुल्लाल–वुड्ढिउच्छाहं।
महु-पिंग-नयन-जुअलं, स-सलिल-नव-जल-हरा-ऽऽरावं ॥१४॥
भीमं महा–गइंदं–अच्चासन्नं पि ते न वि गणंति।
जे तुम्ह चलण–जुअलं, मुणि–वइ! तुंगं समल्लीणा ॥१५॥

शब्दार्थ

ससि-धवल—चंद्र समान उज्ज्वल।	दीह-कर—लम्बी सूंड के।
दंत-मुसलं—दांतरूपी मूसल वाले।	उल्लाल—उच्छालने से।

---

[1] प्रभु के नख अत्यन्त कान्ति वाले होने से उनको मणि और माणिक्य की उपमा दी है। नमस्कार करते समय नमस्कार करने वाले का प्रतिबिम्ब उन नखों में पड़ता है।

अइसार—अतिसार, संग्रहणी ।	नह—नख ।
खय—क्षयरोग ।	मुह—मुँह ।
जर—ज्वर, बुखार ।	दसण—दांत ।
वण—व्रण, फोड़ा, फुंसी ।	अच्छि—आंख ।
लूआ—लूता रोग ।	कुच्छि—पेट ।
सास—श्वास रोग, दमा ।	कण्णाइ रोगे—कान आदि के रोगों का ।
सोस—तालुशोष ।	हरंतु—नाश करें ।
ओदर—जलोदर [तथा] ।	

भावार्थ—[ऐसे] पूज्य दोनों जिनेश्वर प्रभु प्रसन्न होते हुए मेरे अर्श, चर्म रोग, कुष्ट (कोढ़), गठिया, खांसी, अतिसार, क्षय, ज्वर, फोड़े, फूंसी, घाव, लूता रोग, दमा, तालुशोष, जलोदर तथा नख, मुख, दांत, आंख, पेट और कान आदि के रोगों का नाश करें ॥१५॥

इअ गुरु—दुह—तासे पक्खिए चाउमासे,
जिणवर—दुग—थुत्तं वच्छरे वा पवित्तं ।
पढह सुणह सज्झाएह झाएह चित्ते,
कुणह मुणह विग्घं जेण घाएह सिग्घं ॥१६॥

शब्दार्थ

इअ—इस प्रकार ।	चाउमासे—चातुर्मासिक पर्व में ।
पवित्त—पवित्र ।	वा—अथवा ।
जिणवर-दुग-थुत्तं—दो जिन भगवन्तों के स्तोत्र को ।	वच्छरे—सांवत्सरिक पर्व में ।
गुरु-दुह-तासे—भारी दुःखों के भगाने वाले ।	पढह—पढ़ो ।
पक्खिए—पाक्षिक पर्व में ।	सुणह—सुनो ।
	सज्झाएह—स्वाध्याय करो ।
	झाएह—ध्यान करो ।

सुंडि-उच्छाह—[illegible]	[illegible] हुए को।
मउ-पिंग—[illegible] समान पीले।	[illegible]
नयण-जुअलं—दो आँखों वाले।	न वि गणंति—कुछ नहीं गिनते।
स-सलिलं—जलपूर्ण।	जे—जो।
नव—नये।	मुणि-वइ—हे मुनिपति।
जल-हरा-ऽऽरावं—मेघ के समान शब्द (गर्जना वाले)।	तुम्ह—तुम्हारे, आपके।
भीमं—भयंकर।	तुंगं—उन्नत, उत्कृष्ट।
महा-गइंदं—बड़े हाथी को।	चलण-जुअलं—दोनों चरण को।
अच्चासन्नं पि—अति नजदीक आये	समल्लीणा—आश्रित हुआ है।

भावार्थ—हे मुनिपति श्री पार्श्वनाथ प्रभो! जिन लोगों ने आपके उत्कृष्ट उन्नत चरण कमलों का आश्रय लिया है—ऐसे निकटवर्ती भयंकर बड़े गजेन्द्र को भी वे कुछ नहीं गिनते - जिसके दांत चन्द्र की तरह सफेद हैं, अपनी लम्बी सूंड के उछालने से जिसका उत्साह बढ़ा हुआ है, जिसकी आँखें मधु की तरह पीली हैं, और जलपूर्ण नवीन मेघ के समान जिसकी गर्जना है। अर्थात् ऐसा हाथी भी उनको कुछ भी नुकसान नहीं पहुंचा सकता ॥१४--१५॥

८—युद्ध के भय का नाश

समरम्मि तिक्ख–खग्गा–ऽभिग्घाय–पविद्ध–उद्धुय–कबंधे।
कुंत-विणिभिन्न-करि–कलह्-मुक्क-सिक्कार-पउरम्मि ॥१६॥
निज्जिअ–दुप्पुद्धुर–रिउ–नरिंद–निवहा भडा जसं धवलं।
पावंति पाव–पसमिण ! पास–जिण ! तुह प्पभावेण ॥१७॥

शब्दार्थ

समरम्मि—युद्धों में, लड़ाइयों में।	पविद्ध—कटे हुए।
तिक्ख-खग्ग-ऽभिग्घाय—तीक्ष्ण खड्ग के प्रहारों से।	उद्धुय-कबंधे—उछाला मारते हुए सिर बिना के धड़।

कुंत-विणिभिन्न—भालों से विदीर्ण ।
करि-कलह—हाथियों के बच्चों के ।
मुक्क-सिक्कार—निकले हुए सीत-कारों से ।
पउरम्मि—पूर्ण ऐसो ।
पाव-पसमिण—पापों को नाश करने वाले ।
पास-जिण—हे पार्श्वनाथ भगवान् ।
तुह-प्पभावेण—आपके प्रभाव से ।
भडा—सुभट, योद्धा ।
निज्जिअ—जीतते हुए, परास्त क हुए ।
दप्पुद्धुर—अहंकार द्वारा गर्विष्ठ ।
रिउ-नरिंद-निवहा—शत्रु राजाओं समूह को ।
धवलं—उज्ज्वल ।
जसं—यश को ।
पावंति—पाते हैं ।

भावार्थ—जहाँ तीक्ष्ण तलवारों के प्रहार से मस्तक से अलग होकर ध नाचने लगते हैं, भालों से विदीर्ण हाथियों के बच्चों के सीतकारों से व्या ऐसे घनघोर भयंकर युद्ध में भी—पापों को नाश करने वाले हे पार्श्वन जिनेश्वर ! आपके प्रभाव से सुभट लोग अभिमानी शत्रु राजाओं के सम को परास्त करते हुए उज्ज्वल यश कीर्ति प्राप्त करते हैं ।।१६—१७।।

९—रोगादि आठों ही महाभयों का नाश

रोग–जल–जलण–विसहर–चोरारि–मइंद–गय–रण–भयाइं ।
पास–जिण–नाम–संकित्तणेण पसमंति सव्वाइं ।।१८।।

शब्दार्थ

१—रोग—रोग
२—जल—पानी ।
३—जलण—अग्नि ।
४—विसहर—सर्प ।
५—चोरारि—चोर रूप शत्रु ।
६—मइंद—मृगेन्द्र, सिंह, शेर ।
७—गय—हाथी ।
८—रण—युद्ध, लड़ाई ।

१२—इस स्तोत्र में रहा हुआ गुप्त मंत्र

एअस्स मज्झयारे अट्ठारस-अक्खरेहिं जो मंतो ।
जो जाणइ सो झायइ, परम-पयत्थं फुडं पासं ॥२३॥

शब्दार्थ

एअस्स—इस स्तवन के ।
मज्झयारे—बीच में वना हुआ ।
अट्ठारस-अक्खरेहिं—अठारह अक्षरों का ।
जो—जो ।
मंतो—गुप्त मंत्र है उसे ।
जो—जो मनुष्य ।
जाणइ—जानता है ।
सो—वह मनुष्य ।
परम-पयत्थं—परमपद में रहे हुए, मोक्ष में रहे हुए ।
पासं—पार्श्वनाथ प्रभु का ।
फुडं झायइ—प्रगट रूप से ध्यान करना है ।

१ इस प्रकार—"भविय जणाण" भव्य जनों को, "कल्लाणपरं" कल्याण कारक तथा "परनिहाणं" शत्रु के कपट को, "अंदयरं" वांधने वाला अथवा क्षुद्र कर्मों को अटकानेवाला यह स्तवन यानी स्तोत्र है। अर्थात् भव्य जनों को कल्याण कारक तथा शत्रु के कपट को वांधने वाला अथवा क्षुद्र कर्मों को अटकाने वाला यह स्तोत्र है।

२—श्रीपार्श्वनाथ के साथ पूर्व भव के दस भवों से कमठ को वैर था। दसवें भव में कमठ तापस होकर पंचाग्नि तप करता था। उस समय अग्नि में से जलती हुई लकड़ी को बाहर निकलवा कर उसे चिरवाया और उसमें जलता हुआ सांप वतलाकर प्रभु ने उसकी अज्ञानता वताई। इससे वह तापस अपना अपमान हुआ समझकर मन में प्रभु पर विशेष वैर रख कर वहुत कठो अज्ञान तप कर मर कर मेघमाली नामक देव हुआ। पार्श्वनाथ प्रभु दी लेने के वाद एक दिन जंगल में एकाकी ध्यानारूढ़ खड़े थे उस समय मेघमा ने पूर्व भव का वैर याद करके प्रथम धूल की फिर मूसलाधार मेघ वृष्टि की, प्रभु को भारी उपसर्ग किया, तो भी प्रभु ध्यान में ही तल्लीन र

सायंकाल इन दोनों संध्याओं में, आरण्य आदि विषम मार्गों में, उपसर्ग के अवसर पर, और भयंकर रात्रियों में जो मनुष्य पढ़ता है एवं जो सावधान होकर सुनता है उसके तथा मानतुंग नामक कवि के पापों को—समग्र जगत् के जीवों द्वारा पूजे गये हैं चरण जिनके ऐसे श्रीपार्श्वनाथ स्वामी शांत करो—नाश करो ॥१९—२०—२१॥

११—श्रीपार्श्वनाथ प्रभु का माहात्म्य

उवसग्गंते कमठा-ऽसुरम्मि झाणाओ जो न संचलिओ।
सुर-नर-किन्नर-जुवईहिं, संथुओ जयउ पास-जिणो ॥२२॥

शब्दार्थ

कमठा-ऽसुरम्मि—कमठ नामक असुरके।
उवसग्गंते—उपसर्ग करने पर।
जो—जो प्रभु।
झाणाओ—ध्यान से।
न—नहीं।
संचलिओ—चलायमान हुआ।
सुर-नर-किन्नर-जुवईहिं—देवों, मनुष्यों तथा किन्नरों की स्त्रियों द्वारा।
संथुओ—स्तुति की है।
पास—पार्श्वनाथ।
जिणो—जिनेश्वर।
जयउ—जय हो।

भावार्थ—जब कमठासुर ने उपसर्ग किया[३] तब जो प्रभु ध्यान से चलायमान नहीं हुए व देवताओं, मनुष्यों तथा किन्नरों की स्त्रियों द्वारा संस्तुत (स्तुति किए गए) श्रीपार्श्वनाथ जिनेश्वर जय पाओ ॥२२॥

[illegible]

पसत्य—प्रशस्त, शुभ ।
सुह-लेस्सा--शुक्लादि शुभ लेश्या वाले हैं।
सिरि—श्री ।
वद्धमान-तित्यस्स--महावीरके तीर्थंको।
मंगलं-दितु— मंगल करो।
ते—वे ।
अरिहा—अरिहंत भगवान् ।

भावार्थ— जिन्होंने सम्पूर्ण क्लेशों तथा कृष्णादि अशुभ लेश्याओं का नाश किया है और जो प्रशस्त शुक्लादि शुभ लेश्याओं वाले हैं ; वे अरिहंत भगवान श्री वर्धमान स्वामी के श्री चतुर्विध संघ रूप तीर्थ का मंगल करें ॥ २ ॥

सिद्ध भगवन्तों का स्मरण

निद्दड्ढ-कम्म-बीआ, बीआ परमिट्ठिणो गुण-समिद्धा ।
सिद्धा ति-जय-पसिद्धा, हणंतु दुत्थाणि तित्थस्स ॥३॥

शब्दार्थ

कम्म-बीआ—जिन्होंने कर्म बीज को ।
निद्दड्ढ—जला दिया है ।
परमिट्ठिणों—पांच परमेष्ठियों की संख्या में ।
बीआ—दूसरे नम्बर पर हैं ।
गुण-समिद्धा—ज्ञानादि अनन्त गुणों की समृद्धि वाले ।
ति-जय—तीन जगत में ।
पसिद्धा—प्रसिद्ध ।
सिद्धा—ऐसे सिद्ध भगवान् ।
तित्यस्स-दुत्थाणि—संघ के पापों को, दुष्कृत्यों को ।
हणंतु--दूर करो ।

भावार्थ—सम्पूर्ण रूप से जला दिये हैं कर्मरूप बीज जिन्होंने तथा जो पांच परमेष्ठियों की संख्या में दूसरे नम्बर पर हैं, ज्ञानादि अनन्त गुणों की समृद्धि वाले हैं तथा तीन जगत में प्रसिद्ध हैं ऐसे सिद्ध भगवान् संघ से पापों को दूर करो ॥ ३ ॥

जो धार्मिक [illegible] भी [illegible] नहीं हम देखते हैं कि ऐसा नहीं होता है कि सामायिक सूत्र, प्रतिक्रमण सूत्र, जीवविचार, नवतत्त्व, कर्मग्रंथ और [illegible] की [illegible] अभ्यास क्रम में तो है परन्तु उसका ज्ञान तो [illegible], समानार्थ और गहराई से हेतु और उद्देश्यों के साथ नहीं समझाया जाता। मात्र गाथाओं को रटा दिया जाता है और बहुत ज्यादा किया तो मूल गाथाओं का शब्दार्थ [illegible] बता दिया जाता है। परीक्षा में उत्तर देने के लिये पाठ को तोते की तरह रटा दिया जाता है ऐसा रटा हुआ और मात्र ऊपर ऊपर का ज्ञान देने और लेने से शिक्षण के हेतु का अभाव रहता है। शिक्षण का जो मुख्य उद्देश्य बालक की ज्ञान, विचार व तर्क शक्ति का विकास करना है उससे विपरीत परिणाम आता है।

(२) कुछ लोगों की ऐसी आकांक्षा रहती है कि विषय का सम्पूर्ण ज्ञान एकदम प्राप्त हो जाय। इस लिये ऐसे व्यक्ति किसी पुस्तक को हाथ में लेते ही उसका पहला व अन्तिम पन्ना देखते हैं, एक दो बार बीच से उलट-पुलट लेते हैं और फिर उस पुस्तक के सम्बन्ध में एक अभिप्राय बांध लेते हैं। फिर पुस्तक को एक ओर उठा कर रख देते हैं। ऐसे लोग आलसी बेपरवाह होते हुए भी अपनी बुद्धि का गर्व करते हैं।

(३) कुछ ऐसा मानते हैं कि वांचन मात्र समय व्यतीत करने के लिये है। इससे रेल में, घर में, बैठे-लेटे सामायिक जैसी पवित्र क्रिया के समय भी वक्त व्यतीत करने के लिये पुस्तक का वांचन करते हैं। इससे येनकेन प्रकारेण उसको पढ़ तो जाते हैं परन्तु उनका मनन व चिन्तन का लक्ष्य नहीं होता है जहाँ ऐसी स्थिति है वहाँ उपन्यास आदि से मनोरंजन तो हो जाता है परन्तु शास्त्र तथा गहन विचार के ग्रंथों के वांचन तथा विचार करने की रुचि एवं अवकाश नहीं रहता।

आचार्य महाराजों का स्मरण

आयारमायरंता, पंच-पयारं सया पयासंता।
आयरिआ तह तित्थं, निहय कुतित्थं पयासंतु ॥४॥

शब्दार्थ

पंच-पयार—ज्ञानादि पांच प्रकार के।
आयारं—आचार को।
आयरंता—स्वयं आचरण करने वाले।
सया—सदा, हमेशा।
पयासंता—प्रकाश करने वाले, उपदेश देने वाले।
आयरिआ—आचार्य महाराज।
तह—तथा।
तित्थं—तीर्थ को।
निहय-कुतित्थं—दूर किया है कुतीर्थ को जिन्होंने।
पयासंतु—प्रकाशित करो।

भावार्थ—हमेशा ज्ञान-दर्शन-चरित्र-तप और वीर्य इन पांचों प्रकार के आचारों का स्वयं पालन करने वाले और निरंतर भव्य जीवों को उनका उपदेश देनेवाले आचार्य महाराज कुतीर्थ को दूर करने वाले तीर्थ को प्रकाशित करें ॥४॥

उपाध्याय महाराजों का स्मरण

सम्म-सुअ-वायगा, वायगा य सिअवाय वायगा वाए।
पवयण-पडिणीअ-कए-ऽवणितु सव्वस्स संघस्स ॥५॥

शब्दार्थ

सम्म-सुअ-वायगा—सम्यक् (यथार्थ) बारह अंग रूप श्रुत की वाचना देने वाले।
वायगा—उपाध्याय महाराज।
य—और।
सिअवाय—स्याद्वाद को।
वायगा—कहने वाले।
वाए—वाद में।
पवयण-पडिणीय—प्रवचन के द्वेषियों को।
अवणंतु-कए—दूर करने वाले।
सव्वस्स संघस्स—सब संघ के।

भावार्थ—बारह अंग रूप सम्यक् श्रुत की वाचना देनेवाले, प्रवचन के द्वेपियों के द्वारा किये हुए वाद (शास्त्रार्थ) में स्याद्वाद शैली से परास्त करने वाले ऐसे उपाध्याय महाराज संघ के सब द्वेपियों को दूर करो ॥५॥

साधु महाराजों का स्मरण

निव्वाण-साहणुज्जुअ, साहूणं जणिअ-सव्व-साहज्जा ।
तित्थ-प्पभावगा ते, हवंतु परमिट्ठिणो जइणो ॥६॥

शब्दार्थ

निव्वाण—निर्वाण, मोक्ष मार्ग को ।
साहणुज्जुअ— साधना में उद्यत ।
साहूणं—साधुओं को, सत्पुरुषों को ।
जणिअ— जिन्होंने पहुंचाई है ।
सब्ब-साहज्जा— सब प्रकार की सहायता ।
तित्थ-प्पभावगा—तीर्थ के प्रभावक ।
ते—वे ।
परमिट्ठिणो —पांचवें परमेष्ठी ।
जइणो—यति, साधु ।
हवंतु—हों ।

भावार्थ—मोक्ष मार्ग की साधना में उद्यत साधुओं—सत्पुरुषों को जिन्होंने सब प्रकार की सहायता पहुंचाई है वे पांचवें परमेष्ठी यति (साधु) तीर्थ के प्रभावक हों ।

सम्यग्दर्शन (सम्यक्त्व) का स्मरण

जेणाणुगयं नाणं, निव्वाण-फलं च चरणमवि हवइ ।
तित्थस्स दंसणं तं, मंगुलमवणेउ सिद्धियरं ॥७॥

शब्दार्थ

जेण—जिस दर्शन से ।
अणुगयं—[illegible] ।
नाणं—ज्ञान ।
च—और ।
चरणं अवि—[illegible] ।
निव्वाण फलं—मोक्ष [illegible]

भगवान् श्रीमहावीर के तीर्थ को नमस्कार

कं जस्स जलंतं, गच्छइ पुरओ पणासिय तमोहं।
तित्थस्स भगवओ नमो नमो वद्धमाणस्स ॥२१॥

शब्दार्थ

पुरओ—जिसके आगे।
चक्कं — जाज्वल्यमान धर्म चक्र।
इ—चलता है।
सिय—नाश किया है।
हं—अंधकार का समुह जिसने।
तं—उस।
तित्थस्स—तीर्थ को।
भगवओ—भगवान।
वद्धमाणस्स—महावीर के।
नमो नमो—वार-वार नमस्कार।

भावार्थ—जाज्वल्यमान तथा जिसने अन्धकार समुह का नाश किया है धर्मचक्र जिनके आगे-आगे चलता है उस भगवान् महावीर के तीर्थ को बार-बार नमस्कार हो ॥२१॥

भगवान महावीर की जय हो

जयउ जिणो वीरो, जस्स-ऽज्जवि सासणं जए जयइ।
द्ध-पह-सासणं कुपह-नासणं सव्व-भय-महणं ॥२२॥

शब्दार्थ

[illegible]।
—जय हो।
वीरो—श्री महावीर भगवान्
सासणं—जिनका शासन।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
रहा है।
सिद्धि-पह-सासणं—मोक्ष मार्ग का शासक।
कुपह-नासणं—कुमार्ग का नाशक।
सव्व—सब।
भय—भयों को।
महणं—नाशक।

हवइ—हो जाते है ।
तं—वह ।
सिद्धिपरं-दंसणं—मुक्तिदायक सम्यग दर्शन ।
मंगुलं-अवणेउ—पापों को दूर करो ।
तित्थस्स—तीर्थ के ।

भावार्थ—जिस सम्यग् दर्शन के साथ ज्ञान और चारित्र भी मोक्ष फल को देने वाले हो जाते है वह मुक्तिदायक सम्यग्दर्शन तीर्थ (श्रीसंघ) के पापों को दूर करो ॥७॥

श्रुतज्ञान का स्मरण

निच्छम्मो सुअ-धम्मो, समग्ग-भव्वंगि-वग्ग-कय-सम्मो ।
गुण-सुट्ठिअस्स संघस्स, मंगलं सम्ममिह दिसउ ॥८॥

शब्दार्थ

निच्छम्मो—कपट रहित ।
सुअ-धम्मो—श्रुत धर्म, श्रुतज्ञान ।
समग्ग—समग्र, सब ।
भव्वंगि-वग्ग—भव्य प्राणियों को ।
कय-सम्मो—जिसने सुख दिया है ।
गुण-सुट्ठिअस्स—गुणों में निरन्तर स्थित।
संघस्स—श्रीसंघ को ।
इह—यहाँ, इस लोक में ।
सम्मं—अच्छी तरह से ।
मंगल-दिसउ—मंगल देवे ।

भावार्थ—जिसने सब भव्य प्राणियों को सुख दिया है ऐसा कपट रहित श्रुतज्ञान गुणों में निरंतर स्थित श्रीसंघ को इस लोक में अच्छी तरह से मंगल देवे ॥ ८ ॥

चारित्र धर्म का स्मरण

रम्मो चरित्त-धम्मो, संपाविअ-भव्व-सत्त-सिव-सम्मो ।
निस्सेस-किलेस-हरो, हवउ सया सयल-संघस्स ॥९॥

भावार्थ—मुक्ति मार्ग का प्रकाशक, कुमार्ग का नाशक, सब भयों का घातक ऐसा जिनका शासन जगत में आज पर्यंत विजयी हो रहा है उन श्री भगवान् महावीर की जय हो ॥ २२ ॥

गणधरदेवों की स्तुति

सिरि-उसभसेन-पमुहा, हय-भय-निवहा दिसंतु तित्थस्स ।
सव्व-जिणाणं गणहारिणोऽणहं वंछिअं सव्वं ॥२३॥

शब्दार्थ

सिरि-उसभसेन-पमुहा—श्री ऋषभसेन आदि ।
हय-भय-निवहा—जिन्होंने भय समूह का सर्वथा नाश किया है ।
सव्व जिणाणं—सब तीर्थंकरों के ।
गणहारिणो—गणधर ।
अणहं—दोष रहित, पवित्र ।
तित्थस्स सव्वं—श्रीसंघ की सब ।
वंछिअं दिसंतु—अभिलाषा पूर्ण करो ।

भावार्थ—जिन्होंने भय समूह का सर्वथा नाश किया ऐसे सब तीर्थंकरों के श्री ऋषभसेन आदि गणधर श्रीसंघ की सब दोष रहित पवित्र अभिलाषाओं को पूर्ण करो ॥ २३ ॥

श्री सुधर्मास्वामी की स्तुति

सिरि-वद्धमाण-तित्थाहिवेण तित्थं समप्पिअं जस्स ।
सम्मं सुहम्म-सामी, दिसउ सुहं सयल-संघस्स ॥२४॥

शब्दार्थ

सिरि-वद्धमाण-तित्थाहिवेण—श्री वर्धमान तीर्थंकर ने ।
जस्स—जिनको ।
तित्थं समप्पिअं—तीर्थ सौंपा था ।
सम्मं—अच्छी तरह से ।
सुहम्म-सामी—श्री सुधर्मा स्वामी ।
सयल संघस्स—सकल श्रीसंघ को ।
सुहं दिसउ—सुख दें ।

भावार्थ—उपद्रवों का नाश किया है जिसने ऐसी अंबादेवी (और प्रवचन-शासन की रखवाली सिद्धाइका अथवा) सिद्धा, सिद्धाइका, चक्रेश्वरी, वैरोट्या आदि चोवीस शासन देवियां हैं वे (अथवा शांति सुरी) सुख दें ॥१२॥

सोलह विद्यादेवियों का स्मरण

सोलस विज्जा-देवीओ दिंतु संघस्स मंगलं विउलं।
अच्छुत्ता-सहिआओ, विस्सुअ-सुअदेवयाइ समं ॥१३॥

शब्दार्थ

सोलस—सोलह।
विज्जा-देवीओ—विद्या देवियों के।
विउलं—वहुत।
अच्छुत्ता-अच्छुप्ता देवी।
सहिआओ—साथ।
विस्सुअ—प्रख्यात, प्रसिद्ध।
सुअदेवयाइ—श्रुतदेवियों आदि।
समं—सहित।
दिंतु—दे।
संघस्स— संघ को।
मंगल—मंगल।

भावार्थ—प्रख्यात श्रुतदेवियां आदि तथा अच्छुप्तादेवी सोलह विद्या देवियों के साथ श्रीसंघ का वहुत मंगल-कल्याण करें ॥१३॥

जिनशासन रक्षक तथा शासनदेवों का स्मरण

जिण-सासण-कय-रक्खा, जक्खा चउवीस-सासण-सुरा वि
सुह-भावा संतावं, तित्थस्स सया पणासंतु ॥१४॥

शब्दार्थ

जिण-सासण—जिन शासन की।
कय-रक्खा—रक्षा करने वाले।
जक्खा-वि—यक्ष भी।
सुह-भावा—शुभ भाव वाले।
चउवीस—चोवीस।
सासन-सुरा—शासन देव।

भावार्थ—मद रहित, गुणों के समूह रूप रत्नों के सागर तुल्य सुगुरु जनों की परम्परा को आदर सहित नमस्कार करके उपयोग पूर्वक उन्हीं गुरु जनों की निश्चय पूर्वक स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

निम्महिय-मोह-जोहा, निहय-विरोहा पणट्ठ-संदेहा ।
पणयंमि-वग्ग-दाविअ-सुह-संदोहा सुगुण-गेहा ॥२॥

पत्त-सुजइत्त-सोहा, समत्थ-पर-तित्थ-जणिअ-संखोहा ।
पडिभग्ग-लोह-जोहा, दंसिय-सुमहत्थ-सत्थोहा ॥३॥

परिहरिअ-सत्थ-वाहा, हय-दुह-दाहा सिवंब-तरु-साहा ।
संपाविअ-सुह-लाहा-खीरोदहिणुव्व अगाहा ॥४॥

सुगुण-जण-जणिअ-पुज्जा, सज्जो निरवज्ज-गहिअ-पव्वज्जा ।
सिव-सुह-साहण-सज्जा, भव-गुरु-गिरि-चूरणे वज्जा ॥५॥

अज्ज-सुहम्म-पमुहा, गुण-गण-निवहा सुरिंद-विहिअ-महा ।
ताण ति-संझं नामं, नामं न पणासइ जियाणं ॥६॥

शब्दार्थ

निम्महिय-मोह--जोहा—जिन्होंने मोह रूप योद्धा को जीता है ।

निहय विरोहा—विरोध दूर किया है ।

पणट्ठ-संदेहा—संदेह नष्ट किया है ।

पणयंमि-वग्ग—नमस्कार करने वाले भक्तजनों के समूह को ।

दाविअ-सुह-संदोहा—सुख समूह को दिया है ।

सुगुण-गेहा—उत्तम गुणों के घर ।

पत्त-सुजइत्त-सोहा—उत्तम साधुता की शोभा को प्राप्त किया है ।

समत्थ-पर-तित्थ-जणिअ-संखोहा—समस्त अन्य मतावलंबियों को क्षोभ पैदा किया है ।

पडिभग्ग-लोह-जोहा—लोभ रूप योद्धा को नाश किया है ।

तित्थस्स—श्रीसंघ के।
संतावं—संताप को।
सया—हमेशा।
पणासंतु—नष्ट करें।

भावार्थ—जिनशासन की रक्षा करनेवाले यक्षलोक और शुभभाव वाले चोवीस शासनदेव श्रीसंघ के संताप को निरंतर दूर करें ॥१४॥

वैयावृत्य में तल्लीन देवी-देवताओं का स्मरण

जिण-पवयणम्मि निरया विरया कुपहाओ सव्वहा सव्वे।
वेआवच्चकरा चि अ, तित्थस्स हवंतु संतिकरा ॥१५॥

शब्दार्थ

जिण-पवयणम्मि—जिन प्रवचन में।
निरया—निरत, तल्लीन।
अ—और।
विरया—विरक्त।
कुपहाओ—कुमार्ग।
सव्वहा—सर्वथा।
सव्वे—सब।
वेआवच्चकरा-चि—वैयावृत्य करने वाले भी।
तित्थस्स—श्रीसंघ को।
संतिकरा हवंतु—शांति करने वाले हों।

भावार्थ—जिन प्रवचन में रत और कुमार्ग से सर्वथा विरक्त ऐसे सभी वैयावृत्य करनेवाले (देवी-देवता) भी श्रीसंघ को शांति पहुंचाने वाले हों ॥१५॥

गृह गोत्र इत्यादि देवों का स्मरण

जिन-समय-सुद्ध-सुमग्ग-वहिअ-भव्वाण जाणिअ-साहज्जो।
गीयरइ गोयजसो स-परिवारो सुहं दिसउ ॥१६॥
गिह-गुत्त-खित्त-जल-थल-वण-पव्वय-वासि-देव-देविउ।
जिण—सासण—ट्ठिआणं, दुहाणि सव्वाणि निहणंतु ॥१७॥

दंसिअ-गुमहत्थ-सत्थोहा—गंभीर अर्थ वाले शास्त्र समूह को दिखा गया है।

परिहरिअ-सत्थ-वाहा—शास्त्र की बाधा (उत्सूत्र भाषीपन) दूर किया है।

हय-दुह-दाहा—दुःख रूप दाह नाश किया है।

सिवंब-तरु-साहा—मोक्ष रूप आम्र वृक्ष की शाखा रूप।

संपाविअ-गुरु-लाहा—प्राप्त किया है। गुरु का लाभ।

खीरोदहिणुव्व अगाहा — अगाध (गंभीर) क्षीर समुद्र के समान।

सुगुण-जन-जनिअ-पुज्जा—उत्तम गुणवान् पुरुषों ने जिनकी पूजा की है।

सज्जो निरवज्ज-गहिअ-पवज्जा—तत्काल दोष रहित ग्रहण की है दीक्षा।

सिव-सुह-साहण-सज्जा—मोक्ष सुख को साधने के लिये सावधान।

भव-गुरु-गिरि-चूरणे—भवरूप बड़े पर्वत को चकनाचूर करने में।

वज्जा—वज्र समान।

प्रज्ज-सुहम्म-प्पहुहा—आर्य सुधर्मा स्वामी प्रमुख।

गुण-गण-निवहा—गुण समूह को धारण करने वाले।

सुरिंद-विहिअ-महा—इन्द्रों ने जिनका उत्सव मनाया है।

ताण-तिसंझं-नामं—उनका तीनों संध्याओं के समय याद किया हुआ नाम।

नामं न पणासइ जिआणं—क्या जीवों के कर्मों का नाश नहीं करता ?

भावार्थ—जिन्होंने मोह रूपी योद्धा को जीता है, परस्पर के वैर-विरोध को मिटाया है, जीवों के संदेह को दूर किया है, भक्तजनों को सुखसमूह दिया है, श्रेष्ठ गुणों के भंडार है, उत्तम साधुता की शोभा को प्राप्त किया है, समस्त अन्य-तीथियों (अन्य मतावलंबियों) को क्षोभ उत्पन्न कर दिया है, लोभ योद्धा को मार भगाया है, गंभीर अर्थ वाले शास्त्र समूह का बोध कराया है अथवा रचना की है, शास्त्रों की बाधा (उत्सूत्रपन) को दूर किया है, स्व-पर के दुःख रूप ताप का नाश किया है, मोक्षरूप आम्रवृक्ष की शाखाभूत गुरु का लाभ प्राप्त किया है, क्षीर समुद्र समान गंभीर उत्तम गुणवान् पुरुषों ने जिनकी

शब्दार्थ

जिण-समय-सुद्ध—जिन आगमोक्त शुद्ध ।
सुमग्ग-वहिअ—उत्तम मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले ।
भव्वाण जणिअ-साहज्जो—भव्य जीवों को जिन्होंने सहायता की है ।
गीयरइ—गीतरति ।
गीयजसो—गीतयश ।
सपरिवारो—परिवार सहित ।
सुहं दिसउ—सुख दें ।
गिह—घर के ।
गुत्त—गोत्र के ।
खित्त—क्षेत्र के ।
जल—जल के ।
थल—स्थल के ।
वण—जंगल के ।
पव्वय—पर्वत के ।
वासि-देव-देविओ—रहने वाले देवी देवता ।
जिण सासण—जिन शासन में ।
ट्ठिआणं—रहने वाले ।
दुहाणि—दुःखों को ।
सव्वाणि—सब ।
निहणंतु—नाश करें ।

भावार्थ—जिन आगमोक्त शुद्ध उत्तम मार्ग में प्रवृति करने वाले भव्य जीवों को जिन्होंने सहायता की है ऐसे गीतरति, गीतयश नामक व्यंतरेन्द्र हम लोगों को परिवार सहित सुख दें ॥१६॥

घर के, गोत्र के, क्षेत्र के, जल के, स्थल के, जंगल के, पर्वत के रहनेवाले देवी और देवता जिनशासन में रहने वाले भव्य जीवों के सब दुःखों को नाश करो ॥१७॥

दस दिक्पाल, नवग्रह आदि का स्मरण

दस दिसिवाला स-खित्तवालया नव-गहा स-नक्खत्ता ।
जोइणि-राहु-गह काल‌पास कुलि-अद्ध-पहरेहिं ॥१८॥
सह काल-कंटएहिं, स-विट्ठि वच्छेहिं काल-वेलाहिं ।
सव्वे सव्वत्थ सुहं, दिसंतु सव्वस्स संघस्स ॥१९॥

पूजा की है, तत्काल दोष रहित दीक्षा ग्रहण की है, सदा मोक्ष सुख को साधने में सावधान, भव (जन्म-मरण) रूप मेरु पर्वत को चूर-चूर करने में वज्र समान अर्थात् भव भ्रमण का नाश कर मोक्ष प्राप्त किया है, गुण समुद्र को धारण किया है, इन्द्रों अथवा सूरेन्द्रों द्वारा जिनका पूजोत्सव मनाया गया है ऐसे आर्य सुधर्मास्वामी आदि सूरीश्वरों का प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल त्रिकाल नामस्मरण; क्या जीवों के कर्मों का नाश नहीं करता? अर्थात् अवश्य नाश करता है ॥२, ३, ४, ५, ६॥

पडिवज्जिअ-जिण-देवो, देवायरिओ दुरंत-भव-हारी।
सिरि-नेमिचंद-सूरी, उज्जोअण-सूरिणो सुगुरु ॥७॥

सिरि-वद्धमाण-सूरी, पयडीकय-सूरि-मंत-माहप्पो।
पडिहय-कसाय-पसरो, सरय-ससंकुव्व सुह-जणओ ॥८॥

सुह-सील-चोर-चप्परण-पच्चलो निच्चलो जिण-मयम्मि।
जुग-पवर-सुद्ध-सिद्धंत-जाणओ पणय-सुगुण-जणो ॥९॥

पुरओ दुल्लह-महि-वल्लहस्स अणहिल्लवाडए पयडं।
मुक्का विआरिऊणं, सीहेण व्व दव्व-लिंगि-गया ॥१०॥

दसम-च्छेरय-निसि वि-प्फुरंत-सच्छंद-सूरि-मय-तिमिरं।
सूरेण व्व सूरि-जिणेसरेण हय-महिय-दोसेण ॥११॥

शब्दार्थ

पडिवज्जिअ-जिण-देवो—जिन्होंने जिनेन्द्र भगवान को अंगीकार किया है।
देवायरिओ—[illegible]
दुरंत-भव-हारी—[illegible] संसार को त्यागने [illegible]।
सिरि-नेमिचंद-सूरी—श्री [illegible] सूरि।

भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिआ य जे देवा ।
धरणिंद-सक्क-सहिआ, दलंतु दुरिआइं तित्थस्स ॥२०॥

शब्दार्थ

दस दिसिपाला—दस दिक्पाल ।
स-खित्तपाला—क्षेत्रपाल सहित ।
नव-गहा—नव ग्रह ।
स-नक्खत्ता—नक्षत्रों सहित ।
जोइणि—चौसठ जोगनियाँ ।
राहु-गह—राहु ग्रह ।
कालपास—कालपास ।
कुलि—कुलिक योग ।
अद्ध-पहरेहिं—अर्द्ध प्रहर योग ।
सह—साथ ।
काल—काल, कालमुखी ।
कंटएहिं—कंटक योग ।
स-विट्ठि-वच्छेहिं—विष्टि (भद्रा) तथा वत्स योग सहित ।
काल-वेलाहिं—कालवेला आदि योग ।
सव्वे सव्वत्थ—सब सर्वत्र ।
सुहं दिसंतु—सुख दें ।
सव्वस्स संघस्स—सब संघ को ।
भवणवइ—भवनपति ।
वाणमंतर—वाणव्यंतर, व्यंतर ।
जोइस—ज्योतिषी ।
वेमाणिआ—वैमानिक ।
य—और ।
जे देवा—जो देवता ।
धरणिंद सक्क-सहिआ—धरणेंद्र शक्र सहित ।
दलंतु—नाश करो ।
दुरिआइं—पाप ।
तित्थस्स—तीर्थके, श्रीसंघके ।

भावार्थ—क्षेत्रपाल सहित दस दिक्पाल, नक्षत्रों सहित नवग्रह, चौसठ जोगनियाँ, राहुग्रह, कालपास, कुलिक योग, अर्धप्रहर योग, कालमुखी तथा कंटक, विष्टि (भद्रा), वच्छ सहित कालवेला आदि योगों सहित सब सर्वत्र सकल श्रीसंघ को सुख दो ॥१८-१९॥

धरणेन्द्र और शक (सौधर्मेन्द्र) सहित जो भवनपति, वाणव्यंतर, व्यंतर ज्योतिषी और वैमानिक और भी जो जो देवता हैं वे सब श्रीसंघ के पापों का नाश करो ॥२०॥

उज्जोअण-सूरिणो—उद्योतन सूरि।
सुगुरु—उत्तम गुरु।
सिरि-वद्धमाण-सूरि—श्री वर्द्धमान सूरि।
पयडीकय—प्रकट किया है।
सूरि-मंत—सूरि मंत्र का।
माहप्पो—महात्म्य।
पडिहय-कसाय-पसरो — कषायों के फैलाव को रोका है।
सरय—शरद् ऋतु के।
ससंकुव्व—शशांक (चन्द्र) के समान।
सुह-जणओ—सुख का उत्पादक है।
सुह-सील—सुखशीलिया, शिथिलाचारी।
चोर—जिन मत के चोरों को।
चप्परण-पच्चलो—जीतने में समर्थ।
निच्चलो जिण-मयम्मि—जैन धर्म में निश्चल।
जुग-पवर—युग प्रधान।
सुद्ध-सिद्धंत—शुद्ध सिद्धान्त का।
जाणओ—जानकार।
पणय-सुगुण-जणओ—उत्तम गुणीजनों से नमस्कृत।
दुल्लह-महिवल्लहस्स—दुर्लभ राज के।
पुरओ—आगे।
अणहिल्लवाडए—अणहिल्लपुर पाटण में।
पयडं—प्रकट, खुली रीति से।
मुक्का—हरा कर ही छोड़ा।
विआरिऊणं—विदार कर।
सिहेण व्व—सिंह की तरह।
दव्व-लिंगि-गया—द्रव्यलिंगि वेषधारी साधु रूप हाथिओं को।
दसम-च्छेरय—असंयति पूजा नामक दसवां आश्चर्य रूप।
निसि-विप्फुरंत—रात्री में देदीप्यमान।
सच्छंद-सूरि-मय-तिमिर—स्वेच्छाचार्यों के मत रूप अंधकार का।
सूरेण व्व—सूर्य समान प्रतापी।
सूरि जिणेसरेण—श्री जिनेश्वर सूरि।
हय—नाश किया है।
महिय-दोसेण—मथन किया है दोषों को जिन्होंने।

भावार्थ—(सुधर्मा स्वामी के पट्ट परम्परा में अनुक्रम से ३६वें पाठ पर) अंगीकार किया है जिनेश्वरदेव को जिन्होंने ऐसे श्री देवाचार्य (देवसूरि) आचार्य हुए तत्पश्चात् दुरन्त संसार के त्यागी श्री नेमिचन्द्रसूरि हुए, उनके बाद उत्तम गुरु श्री उद्योतन सूरि हुए ॥७॥

शब्दार्थ

जिण-समय-सुद्ध—जिन आगमोक्त शुद्ध ।
सुमग्ग-वट्टिअ—उत्तम मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले ।
भव्वाण जणिअ-साहज्जो—भव्य जीवों को जिन्होंने सहायता की है ।
गीयरइ—गीतरति ।
गीयजसो—गीतयश ।
सपरिवारो—परिवार सहित ।
सुहं दिसउ—सुख दें ।
गिह—घर के ।
गुत्त—गोत्र के ।
खित्त—क्षेत्र के ।
जल—जल के ।
थल—स्थल के ।
वण—जंगल के ।
पव्वय—पर्वत के ।
वासि-देव-देविओ—रहने वाले देवी देवता ।
जिण सासण—जिन शासन में ।
ट्ठिआणं—रहने वाले ।
दुहाणि—दुःखों को ।
सव्वाणि—सब ।
निहणंतु—नाश करें ।

भावार्थ—जिन आगमोक्त शुद्ध उत्तम मार्ग में प्रवृति करने वाले भव्य जीवों को जिन्होंने सहायता की है ऐसे गीतरति, गीतयश नामक व्यंतरेन्द्र हम लोगों को परिवार सहित सुख दें ॥१६॥

घर के, गोत्र के, क्षेत्र के, जल के, स्थल के, जंगल के, पर्वत के रहनेवाले देवी और देवता जिनशासन में रहने वाले भव्य जीवों के सब दुःखों को नाश करो ॥१७॥

वस दिक्पाल, नवग्रह आदि का स्मरण

दस दिसिवाला स-खित्तवालया नव-ग्गहा स-नक्खत्ता ।
जोइणि-राहु-ग्गह कालपास कुलि--अद्ध--पहरेहिं ॥१८॥
सह काल-कंटएहिं, स-विट्ठि वच्छेहिं काल-वेलाहिं ।
सव्वे सव्वत्थ सुहं, दिसंतु सव्वस्स संघस्स ॥१९॥

जिणदत्त सूरि—श्री जिनदत्त सूरी ।
सिरि निलओ—ज्ञानादि लक्ष्मी के घर ।
पणओ—विनीत, क्षमाशील ।
मुणि—मुनियों में ।
तिलओ—तिलक समान ।

भावार्थ—वे श्री जिनवल्लभ सूरी देदिप्यमान श्रेष्ठ सिद्धान्त के ज्ञान शिरोमणि थे । दुर्वह क्षमा के ओज को वहन करने वाले अर्थात् महाक्षमा थे । उस समय के अन्य शिथिलाचारियों से भव्य जीवों की रक्षा करने थे तथा शेषनाग के समान सब उपसर्गों को सहन करने वाले थे ॥२०॥

जो उपर्युक्त ऐसे निर्दोष उत्तम चारित्र वाले सद्गुरुओं की परतंत्र अधीनता को स्वीकार करता है अर्थात् उनका सानिध्य प्राप्त करता है अ इस गुरु पारतंत्र्य नामक स्तोत्र को किसी भी प्रकार की हीनता विना धारण करता है—पढ़ता है—वह सदा जयवंता रहता है । अ सब प्रकार के दुःखों से रहित होकर सदा सुखी रहता है अथवा ज्ञान लक्ष्मी के घर और क्षमाशील मुनियों में तिलक क समान तीर्थंकरों द्वा दिये हुए गणधर पद वाले श्री सुधर्मा स्वामी अथवा इस स्तोत्र के क श्री जिनदत्त सूरि की जय हो ॥२१॥

(दादा जी श्री जिनदत्त सूरि कृत)

७५–छठा सिग्घमवहर स्मरण

सिग्घमवहरउ विग्घं, जिण वीराणाणुगामि-संघस्स ।
सिरि—पास—जिणो थंभणपुर—ट्ठिओ निट्ठिआनिट्ठो ॥१

शब्दार्थ

सिग्घं—शीघ्र, तत्काल ।
अवहरउ—हरें, दूर करें ।
विग्घं—विघ्न बाधायें ।
जिण वीर—श्री महावीर जिनेश्वर
आणाणुगामि—आज्ञानुयायी ।
संघस्स—श्रीसंघ के ।

रि—श्री ।
स-जिणो—पार्श्वनाथ जिनेश्वर ।
णयपुर—स्तम्भनपुर में ।
ट्ठिओ—स्थित, रहे हुए ।
निट्ठिअ—निष्ठित, नाश हो गये हैं ।
पणिट्ठो—प्रनिष्ट ।

भावार्थ—स्तम्भनपुर (खंभात) में रहे हुए श्री पार्श्वनाथ प्रभु जिनके ष अनिष्टों का नाश हो चुका है एवं श्रीमहावीर जिनेश्वर के आज्ञानुयायी संघ की सब विघ्न बाधाओं को शीघ्र दूर करें ॥१॥

गोअम-सुहम्म-पमुहा, गणवइणो विहिअ-भव्व-सत्त-सुहा ।
सिरि-वद्धमाण-जिण-तित्थ-सुत्थयं ते कुणंतु सया ॥२॥

शब्दार्थ

गोअम—श्री इन्द्रभूति गौतमस्वामी ।
सुहम्म—श्री सुधर्मास्वामी ।
पमुहा—आदि ।
गणवइणो—गणधर ।
विहिअ—किया है ।
भव्व-सत्त—भव्य जीवों के ।
सुहा—सुख, कल्याण ।
सिरि—श्री ।
वद्धमाण-जिण—वर्द्धमान जिनेश्वर के ।
तित्थ—तीर्थ का ।
सुत्थयं—सुस्थित, उपद्रव रहित ।
ते—वे ।
कुणंतु—करें ।
सया—सदा ।

भावार्थ—जिन्होंने भव्य जीवों का कल्याण किया है वे श्री इन्द्रभूति गौतम स्वामी, सुधर्मास्वामी आदि गणधर श्रीमहावीर प्रभु के तीर्थ (चतुर्विध संघ) को सदा सुस्थित—उपद्रव रहित करें ॥२॥

सक्काइणो सुरा जे, जिण—वेयावच्च—कारिणो संति ।
अवहरिअ—विग्घ—संघा, हवंतु ते संघ—संति—करा ॥३॥

[illegible]

सक्कएसा सच्चउरपुर-ट्ठिओ वद्धमाण जिण भत्तो ।
सिरि बंभसंति जक्खो, रक्खउ संघं पयत्तेण ॥७॥

शब्दार्थ

सक्कएसा—शक्रेन्द्र की आज्ञा से रहा हुआ ।
सच्चउरपुर-ट्ठिओ — सत्यपुरी नगर (साचोर नगर में स्थित) ।
वद्धमाण—महावीर, वर्द्धमान ।
जिण—जिनेश्वर के ।
भत्तो—भक्त ।
सिरि—श्री ।
बंभसंति-जक्खो—ब्रह्मशांति नामक यक्ष ।
रक्खउ—रक्षा करे ।
संघं—श्रीसंघ को ।
पयत्तेण—यत्नपूर्वक ।

भावार्थ – शक्रेन्द्र की आज्ञा से साचोर नगर में रहा हुआ प्रभु महावीर जिनेश्वर का भक्त श्रीब्रह्मशांति नामक यक्ष श्रीचतुर्विध संघ की यत्नपूर्वक रक्षा करे ॥७॥

खित्त-गिह-गुत्त-संताण-देस-देवाहिदेवया ताओ ।
निव्वुइ-पुर-पहिआणं, भव्वाणं कुणंतु सुक्खाणि ॥८॥

शब्दार्थ

खित्त—क्षेत्र, खेत के ।
गिह—घर, गृह के ।
गुत्त-संताण—गोत्र के, संतान के ।
देस—देश के ।
देव-आहिदेवया—देवाधिदेव

तित्थवइ वद्धमाणो, जिणेसरो संगओ सुसंघेण ।
जिणचंदोऽभयदेवो, रक्खउ जिणवल्लहो पहु मं ॥१०॥

शब्दार्थ

तित्थवइ—तीर्थंपति, शासन नायक ।
वद्धमाणो—महावीर स्वामी अथवा वर्द्धमान सूरि ।
जिणेसरो—जिनेश्वर, सामान्य केवलियों के स्वामी अथवा जिनेश्वर सूरि ।
संगओ—साथ ।
सुसंघेण—सुविहित संघ के ।
जिणचंदो—सामान्य केवलियों में चन्द्र समान । अथवा श्री जिन-चन्द्र सूरि ।
अभयदेवो—भय रहित प्रभु अथवा श्री अभयदेव सूरि ।
रक्खउ—रक्षा करें ।
जिणवल्लहो—श्री जिनवल्लभ सूरि अथवा सामान्य केवलियों में वल्लभ ।
पहु—प्रभु ।
मं—मेरी ।

भावार्थ—तीर्थंपति-शासननायक सामान्य केवलियों के स्वामी जिनेश्वर सुविहित संघ सहित सामान्य केवलियों में चंद्र समान, भय रहित प्रभु, केवलियों में प्रिय ऐसे श्रीवर्धमान भगवान मेरी रक्षा करो ।

अथवा सुविहित संघ सहित तीर्थंपति-संघनायक श्रीवर्द्धमान सूरि, जिनेश्वर सूरि, जिनचंद्र सूरि, अभयदेव सूरि तथा जिनवल्लभ सूरि ये गुरु मेरी रक्षा करें ॥१०॥

सो जयउ वद्धमाणो जिणेसरो णेसरुव्व हय-तिमिरो ।
जिणचंदोऽभयदेवा, पहुणो जिणवल्लहा जे अ ॥११॥

शब्दार्थ

सो—वह, उनकी ।
जयउ—जय हो ।
हय-तिमिरो—जिन्होंने अन्धकार का नाश किया है ।

णेसरुव्व—सूर्य के समान ।
वद्धमाणो—श्री वर्द्धमान सूरि ।
जिणेसरो—श्री जिनेश्वर सूरि ।
जे—जो
अ—और ।
जिणचंदो—जिनचंद्र सूरि ।
अभयदेवा—अभयदेव सूरि ।
पहुणो—प्रभु, महाप्रभावशाली ।
जिणवल्लहा—श्री जिनवल्लभ सूरि ।

भावार्थ—सूर्य जैसे अंधकार को दूर करता है वैसे अज्ञान अंधकार को नाशकरने वाले महाप्रभावक श्रीवर्धमान सूरि, श्री जिनेश्वर सूरि, श्री जिनचंद्र सूरि, श्री अभयदेव सूरि, तथा श्री जिनवल्लभ सूरि की जय हो ॥११॥

गुरु-जिनवल्लह-पाए-ऽभयदेव-पहुत्त-दायगे वंदे ।
जिणचंद-जिणेसर-वद्धमाण-तित्थस्स वुड्ढि-कए ॥१२॥

शब्दार्थ

जिणचंद—सामान्य केवलियों में चंद्र के समान अथवा जिनचंद्र सूरि ।
जिणेसर—जिनेश्वर अथवा जिनेश्वर सूरि ।
वद्धमाण—श्री महावीर प्रभु अथवा वर्धमान सूरि के ।
तित्थस्स—तीर्थ की ।
वुड्ढि—वृद्धि, उन्नति ।
कए—के लिये ।
गुरु—पूज्य ।
जिणवल्लह—श्रीजिनवल्लभ सूरि के ।
पाए—चरणों को ।
अभयदेव—श्री अभयदेव सूरि को ।
पहुत्त-दायगे—प्रभुत्व को देने वाला ।
वंदे—मैं वन्दन करता हूं ।

भावार्थ—सामान्य केवलियों में चंद्रमा के समान श्री महावीर जिनेश्वर के तीर्थ की (चतुर्विधसंघ की) वृद्धि के लिये श्री अभयदेव सूरि को प्रभुत्व देने वाले गुरु श्री जिनवल्लभ सूरि के चरणों को मैं नमस्कार करता हूं ।

अथवा श्री जिनचंद्र सूरि तथा श्री वर्धमान सूरि जी के तीर्थ की उन्नति के

१०—नवअंग पूजा करने का हेतु

उपदेशक नव तत्त्व ना, तिन नव अंग जिनन्द ।
पूजो बहुविध राग (भाव) थी, कहे शुभ वीर मुनिंद[1] ॥१०॥

भावार्थ—हे कल्याण करने वाले, मुनियों में इन्द्र समान (तीर्थंकर) राग द्वेष रूप अंतरंग शत्रुओं को जीतने में वीर प्रभो ! आप नव (जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा और मोक्ष) तत्त्वों के उपदेशक हैं इसलिए बहुत भावपूर्वक आपके नव अंगों की पूजा से मैं नव तत्त्वों का हेय, ज्ञेय-उपादेय रूप भलीभांति ज्ञान करके शुद्ध श्रद्धा पूर्वक संवर और निर्जरा द्वारा मोक्ष प्राप्त करूं ।

—:o:—

आशातना[2]

जुआ खेलना, चोरी करना, मैथुन (काम क्रीड़ा) करना, कलह (झगड़ा) करना, अस्त्र-शस्त्र आदि बनाना या युद्ध विद्या सीखना, खाना पीना करना, कुरला करना, श्लेष्म, लहू, फोड़े के खुरंड, वमन, पित्त, मल, मूत्र आदि गिराना, दांत नख आदि गिराना, बाल संवारना या गिराना, शरीर को तैलादि से मालिश करना, शरीर के किसी भी अंग की मैल गिराना, गाली

१. इस पूजा को बनाने वाले मुनि श्री शुभ वीरविजय जी ने "शुभ वीर मुनिंद" से अपने नाम का भी सूचन किया है ।

२. हम श्री मंदिर जी में भगवान के पूजन-दर्शनार्थ जाते हैं । कर्मों को क्षय करने के लिये । किन्तु यदि हम वहां पर ऊपर लिखे कार्य करेंगे तो पाप

भावना—धूप पूजा में सुगंधित धूप परमात्मा के सामने खेते हुए मन
भावना करनी चाहिए—कि धूप जैसे जलते हुए भी वातावरण को शुद्ध बनाकर
सुगन्ध ही सुगन्ध फैला देता है वैसे ही—हे प्रभो ! मुझे भी ऐसा बल दि
कि मैं पूर्व कर्मों के योग से विविध ताप में जलते हुए भी आत्म-जागृति की
शक्ति द्वारा आस-पास के लोगों में तथा विरोधी जीवों के हृदयों में शांति का
वातावरण फैला सकूं एवं शील की सुगंधि से सब के चित्त प्रसन्न कर सकूं।

—:o:—

५—दीप पूजा

जिमि दीप के प्रकाश से तम चोर नासे जानिये,
तिमि भाव दीपक नाण से अज्ञान नाश बखानिये।
भव पाप ताप निवारणी प्रभु पूजना जग हित करी,
करूं विमल आतम कारणे व्यवहार निश्चय मन धरी॥

णत्र—ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा-मृत्यु-निवारणाय श्रीमते
जिनेन्द्राय दीपं यजामहे स्वाहा।

भावना—दीप पूजा में दीपक प्रकट (जला) कर मन में भावना करनी
चाहिये कि हे प्रभो ! आप सदा केवलज्ञान से प्रकाशमान हैं। मेरे हृदय में
भी आपके प्रताप से—अज्ञानान्धकार दूर हो, मलीन वासनाएं नष्ट हों तथा
सदा के लिए मेरे अन्तःकरण में ज्ञान ज्योति जगमगाती रहे।

—:o:—

६—अक्षत पूजा

शुभ द्रव्य अक्षत पूजना स्वस्तिक सार बनाइये,
गति चार चरण भावना भवि भाव से मन भाइये।

भव पाप ताप निवारणी प्रभु पूजना जग हित करि,
करूं विमल आतम कारणे व्यवहार निश्चय मन धरी ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा-मृत्यु-निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय अक्षतान् यजामहे स्वाहा ।

भावना—अक्षत पूजा में चावलों का साथिया (स्वस्तिक) बनाना चाहिये । उस समय ऐसी भावना करनी चाहिए कि इन चार टेढ़ी पंखड़ियों की तरह चार गतियां भी टेढ़ी हैं । उन्हें हे प्रभो ! तू दूर कर । मैंने उनमें बहुत परिभ्रमण किया है । अब मैं इनसे घबराता हूं । इस शरीर रूपी छिलके को दूर कर । चावल की तरह अखंड और उज्ज्वल आत्म स्वरूप प्रकट करने का मुझे बल दे ।

—:०:—

७—नैवेद्य पूजा

सरस मोदक आदि से भरि थालो जिनपुर धारिये,
निर्वेद गुणधारी मने निज भावना जनि वारिये ।
भव पाप ताप निवारणी प्रभु पूजना जग हित करी,
करूं विमल आतम कारणे व्यवहार निश्चय मन धरी ॥

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा-मृत्यु-निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय नैवेद्यं यजामहे स्वाहा ।

भावना—नैवेद्य पूजा में विविध प्रकार का नैवेद्य (मिठाई) प्रभु के सामने रखकर ऐसे भावना करनी चाहिए कि—हे प्रभो ! इन पदार्थों को मैंने अनेक बार खाया है, तो भी तृप्ति नहीं हुई । मैं निरन्तर आत्मा के आनन्द में ही तृप्त रहूँ इसलिए मुझे अनाहारी पद प्राप्त करने का बल दे ।

—:०:—

परिशिष्ट - २

विधियाँ

(१) प्रातःकालीन सामायिक लेने की विधि :—

सर्वप्रथम काल के पड़िलेहण किये हुए उपकरण लेकर तथा पड़िलेहण किये हुए शुद्ध वस्त्र पहनकर चरवले (पूजनी) से सामायिक स्थल (जगह) को साफ करे; फिर पाट, पट्टा या चौकी पर ठवणी रखकर उसपर स्थापनाचार्य की स्थापना करे यदि स्थापनाचार्य प्रतिष्ठित न हो तो पुस्तक या जपमाला की स्थापना करें उस समय दाहिना (जीमणा) हाथ स्थापित पुस्तकादि के सामने उल्टा लम्बा करके बांये (डावे) हाथ में मुहपत्ति लेकर मुख के सामने रखकर तीन नवकार गिनकर स्थापना स्थापें। फिर 'शुद्ध स्वरूप धारें' का पाठ बोलकर स्थापना जी की पडिलेहण करें। बैठने के आसन (कटासन) को अपनी बाई (डावी) तरफ रख दें। फिर चरवला मुहपत्ति लेकर खड़े-खड़े तीन बार खमासमण (इच्छामि खमासमणो०) देकर खड़े-खड़े इच्छाकारेण० तथा अब्भुट्ठिओमि० सूत्र का "इच्छं खामेमि राइं" तक पाठ बोले (गुरु महाराज की उपस्थिति में उनका आदेश लेकर; यदि वे न हों तो भी) नीचे बैठ मस्तक नवा कर जीमणा (दाहिना) हाथ चरवले अथवा भूमि पर स्थापित करके बांये हाथ में मुखवस्त्रिका रखकर 'अब्भुट्ठियोमि' का बाकी पाठ बोले। (इस प्रकार गुरु महाराज को वन्दन करने के बाद 'एक खमासमण' देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन ! सामायिक लेवा मुंहपत्ति पडिलेहूं! इच्छं' कहकर पचास बोलों सहित मुंह-पत्ति पडिलेहे। फिर खड़े हो खमासमण देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्

८—फल पूजा

फल पूर्ण लेने के लिये फल पूजना जिन कीजिये,
पण इन्द्रि दामी कर्म वामी शाश्वता पद लीजिये।
भव पाप ताप निवारणी प्रभु पूजना जग हित करी,
करूं विमल आतम कारणे व्यवहार निश्चय मन धरी॥

मंत्र—ॐ ह्री श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा-मृत्यु-निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय फलानि यजामहे स्वाहा। —

भावना—फल पूजा में विविध प्रकार के फल प्रभु के सामने रख कर इस प्रकार भावना करनी चाहिये कि हे प्रभो! मैं इन फलों को प्राप्त करके अपनी आत्मा को भूल गया हूँ। अब मुझे ऐसा फल प्राप्त हो कि जिसके द्वारा मुझे परमात्मा के स्वरूप का अखण्ड भान सर्वदा बना रहे। दूसरे फल की इच्छा ही न हो।

—:o:—

प्रभुके नव-अंगोंपर तिलक करनेके दोहे

—:o:—

१—चरणों के अंगूठों पर तिलक करने का दोहा

जलभरी संपुट पत्र में, युगलिक नर पूजन्त।
ऋषभ चरण अंगूठड़े, दायक भवजल अन्त॥१॥

भावार्थ—हे ऋषभदेव प्रभो! जिस प्रकार युगलिये पुरुषों ने आप के चरणों

[illegible] कहे। फिर एक खमासमण देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! बेसणे संदिसाहुं! इच्छं, कहे। फिर खमासमण देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! बेसणे ठाऊं? इच्छं, कहे। फिर एक खमासमण देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सज्झाय संदिसाहुं? इच्छं, कहे। फिर एक खमासमण देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! सज्झाय करुं? इच्छं कहकर आसन बिछा कर बैठे और आठ नवकार गिने।

यदि सर्दी हो और कपड़ा आदि लेना पड़े तो एक खमासमण देकर इच्छाकारेण पांगरणु संदिसाहुं? इच्छं कहे। फिर खमासमण देकर इच्छाकारेण० पांगरणुं पडिग्गहुं? इच्छं कहे। फिर वस्त्र लेवे।

सामायिक अथवा पोसह में यदि कोई सामायिक या पोसह वाला श्रावक वन्दन करे तो 'वन्दामो' कहे। यदि दूसरे श्रावक वन्दन करे तो 'सज्झाय करेह' कहे, फिर कम से कम दो घड़ी (४८ मिनट) तक बैठ कर आत्मचिंतन, आत्मकल्याणकारी स्वाध्याय, तत्त्व चिंतन, धर्मचर्चा, जाप आदि में तल्लीन रहें अथवा राइय प्रतिक्रमण करें। सामायिक—प्रतिक्रमण पूर्ण हो जाने के बाद सामायिक पारे।[1]

(२) सामायिक पारणे की विधि

प्रथम चरवला (पूंजनी) और मुंहपत्ति लेकर खड़ा हो एक

१— सामायिक लेने के बाद यदि दीपक या बिजली का प्रकाश शरीर पर पड़ा हो या प्रमाद किया हो तो 'इरियावहियं० तस्स उत्तरी०

के अंगूठों की पत्तों के दोनों (डूनों) में जल भर कर पूजा की थी उसी प्रकार मैं भी जल-चन्दन आदि से आप के चरणों की पूजा करता हूं क्योंकि आप के चरण संसार में अनादि काल से भटकते हुए भव्य प्राणियों को शाश्वत शांति प्रदान करने (संसार का अन्त करने-मोक्ष देने) वाले हैं अतः आप से प्रार्थना है कि आप के चरण-कमलों की भक्ति से मुझे भी मोक्ष प्राप्त हो।

———:०:———

२—घुटनों (गोड़ों) पर तिलक करनेका दोहा

जानू बले काउस्सग्ग रह्या, विचर्या देश विदेश।
खड़े-खड़े केवल लह्या, पूजो जानू नरेश ॥२॥

भावार्थ—हे प्रभो! आप ने राजसी वैभवों को त्याग कर परम कल्याण-कारिणी दीक्षा को ग्रहण किया तथा वर्षों तक कठोर तप कर के अनेक प्रकार के परिषहों को सहन करते हुए अपने घुटनों के बल खड़े-खड़े काउस्सग्ग किये। सर्व घातीकर्मों को क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया। इन्हीं घुटनों के द्वारा पैदल विहार करते हुए देश-विदेशों में विचर कर अनादि काल से इस भव अटवी में भटकते हुए भव्य प्राणियों को परमकल्याणकारिणी द्वादशांगी वाणी द्वारा सच्चा मार्ग बतला कर शाश्वत सुख प्रदान किया। हे प्रभो! आप के गोड़ों की पूजा करने से मुझे भी केवलज्ञान प्राप्त हो।

———:०:———

३—हाथोंकी कलाइयोंपर तिलक करने का दोहा

लोकांतिक वचने करी, वरस्या वरसी दान।
कर कांडे प्रभु पूजना, पूजो भवि बहुमान ॥ ३ ॥

खमासमण देकर इच्छाकारेण० सामायिक पारवा मुंहपत्ति पडिलेहूं ? इच्छं, कह कर मुंहपत्ति पडिलेहे । फिर खमासमण देवे बाद में इच्छाकारेण० सामायिक पारूं ? कहे । (गुरु कहे पुणोवि कायव्वो) फिर 'यथाशक्ति' कहें । फिर खमासमणो देकर इच्छाकारेण० सामायिक पारेमि ? कहें । (गुरु कहे-आयारो न मोत्तव्वो) तब 'तहत्ति' कहकर आधा अंग नमाकर खड़े-खड़े तीन नवकार पढ़े । पीछे घुटने टेककर सिर नमाकर दाहिना हाथ चरवले अथवा आसन पर रख 'भयवं दंसण्ण भद्दो०' का पूरा पाठ पढ़े । फिर सामायिक विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि करते यदि कोई अविधि आशातना हुई हो, दस मन के दस वचन के, बारह काया के; कुल इन बत्तीस दोषो में से कोई दोष लगा हो तो मिच्छामि दुक्कड कहें ।

(३) संध्याकालीन सामायिक लेनेकी विधि[2]

दिन के अन्तिम पहर में पोषधशाला, उपाश्रय अथवा पोषाल आदि में जाकर या घर में ही एकान्त स्थान में सामायिक करे उस स्थान का तथा सामायिक में काम में लेने वाले उपकरणों तथा वस्त्रादि का पड़िलेहण करे । यदि देरी हो गई हो तो दृष्टि पडिलेहण करे । फिर गुरु या स्थापनाचार्य के सामने बैठकर भूमि प्रमार्जन करके बांयी ओर आसन रख एक खमा-

---

अन्नत्थ० कह कर एक लोगस्स का काउस्सग्ग करे । उसको पार कर प्रकट लोगस्स० कह कर फिर सामायिक पारने की विधि प्रारम्भ करें ।

२—यदि एक ही साथ दो या तीन सामायिक लेना हो प्रत्येक सामायिक लेते समय सामायिक लेने की जो विधि है सो करनी । सब सामायिकें पूर्ण होने पर एक ही दफा पारणे की विधि करनी । लेकिन दूसरी या तीसरी सामायिक लेते समय 'सज्झाय करूं ?' इस वाक्य के स्थान पर 'सामायिक में हूं ।' ऐसा कह कर तीन नवकार के बदले एक ही नवकार बोलना ।

भावार्थ—हे प्रभो ! तीर्थ प्रवर्तने के लिए लोकांतिक देवों की प्रार्थना करने पर आप ने तुरत ही राजसी वैभव को त्याग कर दीक्षा लेने का निश्चय किया और वरसी दान देना शुरु कर दिया। जिस से करोड़ों संकट ग्रस्त भव्य नर-नारियों को संतोष प्राप्त हुआ। हे दयानिधे ! मैं आप के उन पावन हाथों की कलाइयों की बहुमान पूर्वक पूजा करते हुए सविनय प्रार्थना करता हूँ कि मुझे भी ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि मैं भी वरसी (मतवातर एक वर्ष तक) दान दे सकूँ।

——:o:——

४—कन्धों पर तिलक करने का दोहा।

मान गयूं दोय अंशथी, देखी वीर्य अनन्त।
भुजा बले भवजल तरया, पूजो खंध महन्त ॥४॥

भावार्थ—हे प्रभो ! आप का अनन्त वल देख कर मान (अहंकार) सर्वथा नाश हो गया। हे प्रभो ! इस संसार रूपि समुद्र को आप अपने भुजा बल से तरे इस लिए मैं आप के इन महान् समर्थशाली कन्धों की बड़ी भक्ति पूर्वक पूजा करके प्रार्थना करता हूं कि मुझ में भी आप के समान वैसी शक्ति प्रकट हो।

——:o:——

५—सिरको चोटी में तिलक करने का दोहा।

सिद्धशिला गुण ऊजली, लोकांते भगवन्त।
वसिया तेने कारणे भवि, शिर शिखा पूजन्त ॥५॥

भावार्थ—हे भगवन् ! आप ने सब अघाती-घनघाती कर्मों का सर्वथा नाश ः के कर्म रज से सर्वथा निर्लेप हो कर सर्व प्रकार के आत्मा के उज्ज्वल

गुणों को प्राप्त कर लिया है इस कारण से आप सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर के लोक के सर्वोच्च स्थान अग्रभाग पर स्थित सिद्धशिला पर जा विराजे हैं। इस लिए हे प्रभो ! मैं भी आप के सिर की चोटी की पूजा करके प्रार्थना करता हूं जिससे मैं भी सब प्रकार के कर्मों को क्षय कर के निरंजन-निराकार स्वरूप (सिद्ध अवस्था) प्राप्त कर के अग्रभाग में सिद्धशिला पर पहुंच जाऊं।

——:o:——

६—मस्तकपर तिलक पूजाका दोहा।

तीर्थंकर पद पुण्य थी, तिहुअन जन सेवन्त।
त्रिभुवन तिलक समा प्रभो! भाल तिलक जयवन्त ॥६॥

भावार्थ—हे प्रभो ! मोक्ष पाने से तीन जन्म पहले आप ने बीसस्थानक का तप कर "तीर्थंकर नाम कर्म" का उपार्जन किया। उस कर्म के पुण्य प्रभाव (उदय) से इस जन्म में आप ने तीर्थंकर पदवी पाई जिस से आप तीन (ऊर्ध्व, मध्य और अधो) लोक के समस्त प्राणियों के पूज्य बन कर सारे विश्व में तिलक समान हो गये हैं। अतः मैं आप के मस्तक (भाल) की भक्ति पूर्वक पूजा कर के सविनय प्रार्थना करता हूं कि आपकी पूजा (जो कि बीसस्थानक में से यह भी एक स्थानक है) से मुझे भी इस पद को प्राप्त करने का सामर्थ्य प्राप्त हो।

——:o:——

७—गलेपर तिलक पूजाका दोहा।

सोल प्रहर प्रभो ! देशना, कंठे विवर वर्तुल।
मधुर ध्वनी सुर नर सुनी, तेने गले तिलक अमूल ॥७॥

रा सूत्र कहे। गुरु को मिच्छामि दुक्कडं देकर फिर दो वंदना (द्वादशावर्त वंदना) देवे। तदनन्तर आयरिय उवज्झाय० की तीन गाथाएं कहकर, करेमिभंते० इच्छामि ठामि० तस्स उत्तरी० अन्नत्थ० कहकर तप चितवन का काउस्सग्ग करे। काउस्सग्ग में भगवान् महावीर स्वामी कृत छम्मासी तप का चिंतन करे अथवा छह लोगस्स या चोबीस नवकार का काउस्सग्ग करे। फिर स्वयं जो पच्चक्खाण करना हो मन में धार कर (निश्चय करके) काउस्सग्ग पारे। फिर प्रगट लोगस्स कहकर उकडू आसन से बैठकर छठे आवश्यक की मुहपत्ति पडिलेहे और दो वन्दना (द्वादशावर्त वन्दना) दे।

पीछे 'सल्लुवस्या देवलोके'० स्तवसे सकल तीर्थों को मानपूर्वक नमस्कार करे और 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! पसायकरी पच्चक्खाण कराओ जी' ऐसा कहकर गुरु के मुख से अथवा वृद्ध साधर्मी के मुख से या स्थापना जी के सामने पूर्व निश्चयानुसार स्वय पच्चक्खाण का पाठ पढ़कर पच्चक्खाण कर लेवे। बाद में 'इच्छामो अणुसट्ठिं० कहकर बैठ जाय और मस्तक पर अंजली रख 'नमो खमासमणाणं० नमोऽर्हत० पढ़कर परसमय-तिमिर-तरणिं०' की तीन गाथाएं कहे। पीछे नमुत्थुणं० कह खड़े होकर 'अरिहंत चेइयाणं० अन्नत्थ० पढ़कर एक नवकार का काउस्सग्ग करे और उसे पारकर नमोऽर्हत्० कहकर एक स्तुति (थुई) कहे। बाद लोगस्स० सव्वलोए अरिहंत चेइयाणं० अन्नत्थ० पढ़कर एक नवकार का काउस्सग्ग करे और दूसरी स्तुति कहे। फिर 'पुक्खरवरदी०सुअस्स भगवओ करेमि०अन्नत्थ०'पढ़कर एक नवकार का काउस्सग्ग करे। पार कर तीसरी स्तुति कहे। तदनन्तर सिद्धाणं बुद्धाणं० वेयावच्चगराणं० अन्नत्थ० बोलकर एक नवकार का काउस्सग्ग करे। पारकर नमोऽर्हत्० पूर्वक चौथी स्तुति कहे। तत्पश्चात् 'नमुत्थुणं० पढ़ तीन खमासमण पूर्वक आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व साधुओं को वन्दन करे। यहाँ प्रतिक्रमण की विधि समाप्त हो जाती है।

इतनी विधि करने के बाद यदि स्थिरता हो तो—

भावार्थ—हे प्रभो ! आप ने अन्तिम समय (मोक्ष प्राप्ति) से पहले सोलह प्रहर(मतवातर दो दिन रात) तक अपने पवित्र कंठ से सर्वजन कल्याणकारि धर्मदेशना दी। आप की इस मधुर दिव्य-ध्वनी को देवताओं, मनुष्यों तिर्यंचों ने जन्म-जाति-गत परस्पर के वैर-विरोध को सर्वथा त्याग कर एक चित्त से सुना। इसलिये मैं आप के गले की पूजा कर के प्रार्थना करता हूं कि मुझे भी ऐसी शक्ति प्राप्त हो।

——:०:——

८—छातीपर तिलक करनेका दोहा।

हृदय कमल उपशम बले, बाल्या राग ने रोष।
हिम दहे वणखंड ने, हृदय तिलक संतोष॥ ८

भावार्थ—हे प्रभो ! आप ने हृदय की शांति द्वारा राग-द्वेष को ऐसे जला डाला जैसे हिम-पात (बरफ गिरने) से जंगल के सब प्रकार के पौधे जल जाते हैं। हे प्रभो ! मैं आप के ऐसे शांत हृदय की पूजा करके यह प्रार्थना करता हूं कि मेरे मन में भी ऐसी शांति प्राप्त हो।

——:०:——

९—नाभिपर तिलक करनेका दोहा।

रत्नत्रयी गुण ऊजली, सकल सुगुण विश्राम।
नाभि कमल नी पूजना, करतां अविचलधाम॥ ९॥

भावार्थ—हे प्रभो ! सर्व गुण निष्पन्न, उज्ज्वल (निर्मल) रत्नत्रयी (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र) को धारण करने वाली आप की नाभि की मैं पूजा कर के यह प्रार्थना करता हूं कि मुझे अविचल स्थान (मोक्ष) की प्राप्ति हो।

——:०:——

(५) कायोत्सर्ग (६) प्रत्याख्यान ये छः आवश्यक ये प्रतिक्रमण के नाम से प्रसिद्ध है। सामायिक का समय स्वाध्याय, प्रतिक्रमण अथवा जाप में व्यतीत करना चाहिये।

स्थान शुद्धि :—सामायिक शुद्ध स्थान में करनी चाहिये स्थान शुद्धि तथा समता का बहुत निकट सम्बन्ध है इस स्थान में मनुष्यों एवं तिर्यंचों का संचार नहीं होना चाहिये। किसी का भी कोलाहल उस स्थान पर नहीं होना चाहिये। जहां लोग बातें करें उनके समीप भी नहीं बैठना चाहिये। सारांश यह है कि सामायिक के लिये पवित्र स्थान व शान्त वातावरण की परम आवश्यकता है। सामायिक करने वालों को यह बात निश्चय ही ध्यान में रखनी चाहिये।

उपाश्रय :—कई लोगों को अपने घर में धार्मिक क्रियायें करने के लिये पवित्र व शान्त स्थान नहीं मिल पाता है। इस लिये जैनियों ने उपाश्रय की स्थापना की है। उपाश्रय अर्थात् उप + आश्रय। उपाश्रय वैसे तो अनेकार्थी शब्द है। परन्तु यहां उपाश्रय का अर्थ है उप = पास आश्रय = जहां आत्मा के भावों के पास आश्रय लिया जावे। वह स्थान जिस स्थान में मुमुक्षु जीव को कायिक, वाचिक तथा मानसिक क्षोभ न हो ऐसा निराकुल शान्ति का स्थान खोजना बहुत जरूरी है परन्तु शास्त्रों में यह नहीं कहा है कि अगर कहीं उपाश्रय न हो तो वहां सामायिक ही न की जावे जैसे भी हो सामायिक नित्य बार बार जहां भी हो अवश्य करनी चाहिये।

विधि शुद्धि :—धर्म की सब क्रियाओं के सम्बन्ध में हमारे ऋषियों आचार्यों ने किसी भी स्वार्थ के बिना परमार्थ के हेतु से प्रत्येक क्रियाओं को विधि सहित वर्णन किया है। सामायिक यह एक पवित्र धार्मिक क्रिया है इसे विधि विधान पूर्वक करना चाहिये। जिस प्रकार किसी भी शारीरिक रोग से छुटकारा पाने के लिये यदि औषधि का विधि से सेवन किया जाय तो वह विशेष गुणकारी तथा रोग मुक्ति

सग्गहरं० तथा जयवीयराय० कहे। फिर एक खमासमण देकर
रि थंभणट्ठिय पाससामिणो० की दो गाथाए पढ़े। तदनन्तर श्री
जिनपार्श्वनाथ आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं कह खड़े होकर वन्दन
वत्तियाए० अन्नत्थ० कह चार लोगस्स या १६ नवकार का काउस्सग्ग
फिर पार कर प्रगट लोगस्स कहे।

इसके बाद "श्री खरतरगच्छ शृंगारहार जंगम युगप्रधान दादाजी
जिनदत्त सूरिजी आराधना निमित्त करेमि काउस्सग्ग कहकर अन्न-
एक लोगस्स या चार नवकार का काउस्सग्ग कर फिर पारकर
ट लोगस्स कहे। इसी तरह दादा जी श्री जिन कुशलसूरि जी का
क लोगस्स अथवा चार नवकारका काउस्सग्ग करे तथा पार कर
ट लोगस्स कहे।

बाद प्रमार्जन पूर्वक आसन पर बायां घुटना ऊंचा कर 'इच्छा-
रेण संदिसह भगवन्! चैत्यवन्दन करूँ। इच्छं कहकर 'चउक्क-
य०, अर्हन्तो भगवन्त० नमुत्थणं० इत्यादि जयवीयराय तक पढ़े बाद
पुशांति' कहे।

अन्त में पुर्वोक्त विधि से सामायिक पारे।

(६) पाक्षिक प्रतिक्रमण की विधि

प्रथम वंदित्तु सूत्रतक देवसिय प्रतिक्रमण की तरह कुल विधि सम-
ना चाहिये। पर इसमें देवसिय प्रतिक्रमण के प्रारम्भ में जो चैत्य-
न (जय तिहुअण की सात गाथाएं) बोली जाती है उसके बदले
जं जय तिहुअण (तीस गाथाएं) चैत्यवन्दन बोले तथा चैत्यवन्दन के
एक-एक नवकार के जो चार काउस्सग्ग किये जाते हैं उनके पारणे
... कि धममप०' अथवा 'अविरल कमल०' की एक-एक
... रों थुइयां कहें।

... खमासमण देकर 'देवसिय आलोइअ पडिक्कंता इच्छा-
... मुंहपत्ति पडिलेहुं ? इच्छं कहकर मुंह-
दिना देवे।

उवसग्गहरं० तथा जयवीयराय० कहे। फिर एक खमासमण देकर 'सिरि थंभणयट्ठिय पाससामिणो०' की दो गाथाएं पढ़े। तदनन्तर 'श्री स्तम्भनपार्श्वनाथ आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं' कह खड़े होकर 'अन्नत्थ ऊससिएणं० पर्यन्त' कह चार लोगस्स या १६ नवकार का काउस्सग्ग करे फिर पार कर प्रगट लोगस्स कहे।

इसके बाद "श्री खरतरगच्छ शृंगारहार जंगम युगप्रधान दादाजी श्री जिनदत्त सूरिजी आराधना निमित्त करेमि काउस्सग्गं' कहकर अन्नत्थ० एक लोगस्स या चार नवकार का काउस्सग्ग कर फिर पारकर प्रगट लोगस्स कहे। इसी तरह दादा जी श्री जिन कुशलसूरि जी का एक लोगस्स अथवा चार नवकारका काउस्सग्ग करे तथा पार कर प्रगट लोगस्स कहे।

बाद प्रमार्जन पूर्वक आसन पर बायां घुटना ऊंचा कर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! चैत्यवन्दन करूँ। इच्छं' कहकर 'चउक्कसाय०, अर्हन्तो भगवन्त० नमुत्थुणं० इत्यादि जयवीयराय तक पढ़े बाद 'सम्पूर्णानि' कहे।

अन्त में पूर्वोक्त विधि से सामायिक पारे।

(६) पाक्षिक प्रतिक्रमण की विधि

प्रथम वंदित्तु सूत्र तक देवसिय प्रतिक्रमण की तरह इस विधि समझना चाहिये। पर इसमें देवसिय प्रतिक्रमण के प्रारम्भ में जो चैत्य-वन्दन (जय तिहुअण की पांच गाथाएं) बोली जाती है उसके बदले सम्पूर्ण जय तिहुअण (तीस गाथाएं) चैत्यवन्दन बोले तथा चैत्यवन्दन के बाद एक-एक नवकार के जो चार काउस्सग्ग किये जाते हैं उनके पारणे के पश्चात् 'दूँ दूँ कि धमधम०' अथवा 'अविरल कमल०' की एक-एक करके क्रमशः चारों थुइयां कहे।

तदनन्तर एक खमासमण देकर 'देवसिय आलोइय पडिक्कंता इच्छाकारेण संदिसह भगवन् पक्खिय मुंहपत्ति पडिलेहुं? इच्छं' कहकर मुंह-पत्ति पडिलेहे फिर द्वादशावर्त वंदना देवे।

इस वंदना के पाठ में 'दिवसो वइक्कंतो' के स्थान पर 'पक्खो वइ-वकंतो' कहना।

फिर गुरु कहे—'पुण्यवन्तो भाग्यवन्तो देवसी के स्थान पर पक्खी कहना, छींक की जयणा करना, मधुर स्वर से प्रतिक्रमण सम्पूर्ण करना, एक बार खांसना या दो बार खांसना, मंडल में सावधान रहना।' (गुरु के कह चुकने के बाद) तहत्ति कहें। पश्चात्—

'इच्छाकारेण॰ संबुद्धा खामणेणं अब्भुट्ठिओमि अब्भितर पक्खिअं खामेउं ? इच्छं, खामेमि पक्खिअं एगपक्खस्स पन्नरसण्हं दिवसाणं पन्न-रसण्हं राईणं जंकिंचि अपत्तिअं परिपत्तिअं भत्ते पाणे॰' कहें। पीछे, 'इच्छाकारेण॰ पक्खिय आलोऊं ? इच्छं, आलोएमि जो मे पक्खिओ अइआरो कओ॰ कहकर 'इच्छाकारेण॰ पक्खिय अतिचार आलोऊं ? इच्छं कहे। फिर बृहद् पाक्षिक अतिचार बोले। बाद में 'सव्वस्सवि पक्खिअ दुच्चितिअ, दुब्भासिअ दुच्चिट्ठिअ इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! इच्छं, तस्स मिच्छामि दुक्कडं कहे। फिर द्वादशावर्त वन्दना देवे, तद-नन्तर 'इच्छाकारेण॰ देवसिय आलोइय पडिक्कंता पत्तेय खामणेणं॰ अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर पक्खिअं खमेउं ? इच्छं खामेमि पक्खिअं॰ फिर द्वादशावर्त वन्दना देवे, तत्पश्चात् 'भगवन् ! देवसिय आलोइय पडिक्कंता इच्छा॰ पक्खियं पडिक्कमु ? इच्छं, सम्म पडिक्कमामि' कहकर करेमिभंते॰ इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे पक्खिओ॰' कहना। पीछे खमासमण दे इच्छाकारेण॰ पक्खि सूत्र पढूं ? इच्छं," कह करेमिभंते॰ इच्छामि ठामि काउस्सग्गं॰ तस्स उत्तरी॰ अन्नत्थ॰ कहकर काउस्सग्ग में सूत्र सुने। यदि साधु हो तो तीन नवकार पढ़कर पक्खीसूत्र कहे साधु न हो तो श्रावक तीन नवकार गिन कर 'वंदित्तु॰' कहे, अन्त में सुयदेवया की स्तुति कहें और जो श्रावक काउस्सग्ग ध्यान में सुन रहे थे वे भी अन्त में 'नमो अरिहंताणं' कहकर काउस्सग्ग पार खड़े होकर तीन नवकार गिनकर बैठ जावें। फिर तीन नवकार, तीन करेमिभंते॰ कह कर इच्छामि पडिक्कमिउ जो मे पक्खिओ

विधि अविधि विचार :-

इससे ऐसी धारणा नहीं बनानी चाहिए कि यदि विधिपूर्वक न हो सके तो सामायिक न करे। सामायिक का नया अभ्यासी यथाविधि न कर सके तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं पर उसका विधि पूर्वक करने का लक्ष्य होने से धीरे धीरे विधिपूर्वक करने का अभ्यास हो जायेगा। अभ्यास से ही कार्य सिद्धि होती है यही कारण है कि ज्ञानियों ने सामायिक को एक शिक्षाव्रत के रूप में कहा है शिक्षाव्रत अर्थात् "साधु धर्माभ्यास शिक्षा" अर्थात् भली प्रकार अभ्यास हो सके ऐसा व्रत।

कई लोग ऐसी धारणा बना लेते हैं कि अविधि से करने से न करना अच्छा, पर ऐसा कहना अनुचित और निरपेक्ष मालूम पड़ता है। क्योंकि हम ऊपर कह आये हैं कि किसी भी कार्य की सिद्धि उसके अभ्यास से ही हो सकती है। दृष्टान्ततः कोई भी भाषा सीखते समय यदि बारहखड़ी

सूत्र' कहे। पडिक्कमे देवसियं के बदले पडिक्कमे पक्खियं बोले। पीछे खमासमण देकर इच्छाकारेण० मूलगुण उत्तरगुण विशुद्धि निमित्त काउस्सग्ग करूं? इच्छं, करेमिभंते० इच्छामि ठामि काउस्सग्गं० तस्स उत्तरी० अन्नत्थ० कहकर बारह लोगस्स का काउस्सग्ग करे, यदि लोगस्स न आता हो तो ४८ नवकार का काउस्सग्ग करे। पारकर प्रगट लोगस्स कहे। फिर नीचे बैठकर पक्खि समाप्त मुंहपत्ति पडिलेह कर द्वादशावर्त वन्दना देवे तत्पश्चात् 'इच्छाकारेण० समाप्त खामणेणं अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर पक्खिअं खामेऊं? इच्छं, खामेमि पक्खिअं०। तदनन्तर खमासमण देकर इच्छाकारेण० पक्खि खामणा खामूं? इच्छं, कहकर चार बार खमासमण पूर्वक मस्तक नमाकर जीमणा (दाहिना) हाथ चरवले पर अथवा आसन पर स्थापन करके खामणा की जगह तीन नवकार गिने। अन्त में एक जना कहे "पक्खियं समत्तं देवसियं भणिज्जाहि" सब कहे "इच्छामि अणुसट्ठि।' फिर एक जन कहे "इच्छकारी भगवन् पसायकरी पक्खि तप प्रसाद कराओ जी—" फिर गुरु, यदि गुरु न हो तो वृद्ध श्रावक अथवा स्वयं ही इस प्रकार कहे— 'चउत्थेणं—एक उपवास, दो आयंबिल, तीन नीवी, चार एकासणा, आठ बेआसणा, दो हजार सज्झाय, यथाशक्ति तप करी पहुंचाडवो।" फिर यदि तप किया हो तो "पइट्ठिओ" कहे, तप करना हो तो "तहत्ति कहे, यदि न करना हो तो मौन रहे। पीछे द्वादशावर्त वन्दना देना।

पीछे की सब विधि देवसिय प्रतिक्रमण के जैसी करना तथा इस से पहले जहां देवसिय प्रतिक्रमण छोड़ा है वहां के आगे से शरू करे।

विशेष में श्रुतदेवता के काउस्सग्ग में "कमलदल०". की स्तुति कहें। तथा भवनदेवता के काउस्सग्ग में "ज्ञानादि गुण युतानां०' की स्तुति कहे और क्षेत्रदेवता की स्तुति में "यस्या क्षेत्रं समाश्रित्य०' की स्तुति कहें। स्तवन में "अजित शांति" कहे। एवं लघुशांति की जगह "नमोऽर्हत् पूर्वक बृहत (बड़ी) शांति" कहे।

सव्वलोए अरिहंत चेइआणं करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तिआए० अन्नत्थ० कह एक नवकार का काउस्सग्ग करके पार कर दूसरी थुइ कहे। फिर पुक्खरवरदी० कहकर; सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं, वंदणवत्तिआए० अन्नत्थ० कह एक नवकार का काउस्सग्ग करके पारे और तीसरी थुइ कहे। फिर सिद्धाणं बुद्धाणं० वेयावच्चगराणं० अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का काउस्सग्ग करे, पारकर नमोऽर्हत्० कहकर चौथी थुइ कहे। बाद में बैठकर नमुत्थुणं० कहकर खड़े होकर अरिहंत चेइआणं० कहकर ऊपर कही विधि के अनुसार चार थुइयों पूर्वक देववन्दन कर नीचे बैठकर नमुत्थुणं कहे फिर जावंति० जावंत० नमोऽर्हत्० स्तवन, जयवीयराय० कहकर नमुत्थुणं० कहकर अन्तमें "सव्वे तिविहेण वन्दामि" कहे।

१५-पच्चक्खाण पारणे का पाठ तथा विधि

पाठ

उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअं, पोरिसिं, साढ पोरिसिं, गंठिसहिअं, मुट्ठिसहिअं पच्चक्खाण कर्युं; चउविहार, आयंबिल, निवि, एकासणा, बेआसणा, पच्चक्खाण कर्युं, तिविहार पच्चक्खाण फासिअं, पालिअं, सोहिअं, तीरिअं, किट्टिअं, आराहिअं जं च न आराहिअं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

विधि

खमासमण देकर इरियावहियं पडिक्कमे। फिर खमासमण० इच्छाकारेण० पच्चक्खाण पारवा मुंहपत्ति पडिलेहुं? इच्छं" कहकर मुंहपत्ति पडिलेहे। फिर खमासमण० इच्छाकारेण० पच्चक्खाण पारुं? यथाशक्ति" बाद में "खमासमण० इच्छाकारेण० पच्चक्खाण पार्युं? तहत्ति कहकर मुट्ठी चरवले अथवा आसन पर रखकर एक नवकार गिने फिर जो

नव निधि, बारह चूडामणा, चोवीस बधामणा, छह हजार गच्छाग —इस प्रकार कहना ।

अब्भुट्ठिओमि के पाठ में बारसण्हं आसणाणं, चउवीसण्हं पयाणं तीसरों पाठ बाद दिवसाणं अंतिमि अभुट्ठिय पक्खिय० कहना ।

(६) छींक तथा बिल्ली दोष निवारण

पक्खी, चौमासी अथवा संवत्सरी प्रतिक्रमण में पक्खी आदि की मुहपत्ति पडिलेहण से लेकर "अतिचार समस्त" आदि कहे वहां तक यदि छींक आ जावे तो क्षुद्रोपद्रव का काउस्सग्ग करें अथवा प्रतिक्रमण के अन्त में खमासमण देकर इच्छाकारेण० संदिसह दुनिमित्तादि ओहडावणत्थं काउस्सग्ग करूं ? इच्छं, संदिसह दुनिमित्तादि ओहडा-वणत्थं करेमि काउस्सग्ग, अन्नत्थ० कहकर एक नवकार का काउस्सग्ग कर पार कर प्रगट नवकार एक कहे । फिर खमासमण देकर उपर्युक्त पूर्वक आदेश मांगकर दूसरी बार दो नवकार का काउस्सग्ग करे, पार कर दो प्रगट नवकार कहे । तीसरा खमासमण देकर इसी प्रकार तीसरा आदेश मांगकर तीसरी बार तीन नवकार का काउस्सग्ग करे, पार कर प्रगट तीन नवकार कहे ।

दैवसिक आदि पांचों प्रतिक्रमण करते हुए स्थापना जी तथा अपने बीच में से बिल्ली निकल जाये तो भी ऊपर कहे अनुसार तीन काउस्सग्ग करे, तीसरा काउस्सग्ग पार कर तीन नवकार प्रगट गिनने के पश्चात् निम्नलिखित गाथा तीन बार बोलें और भूमि को बायें (डाबा) पग से तीन बार दबावें ।

जा सा काली कब्बडी अक्खहि कयकडी यारी ।

मंडल माहे संचरी, हय पडिहय मज्जारी ।

[illegible]

[illegible]

[illegible] पोसह [illegible] १. आहार पोसह (उपवासादि करना) [illegible] (शरीर का सत्कार शृंगार आदि न करना) ३. [illegible] पोसह ([illegible] करना), ४. [illegible] पोसह ([illegible] करना)। इन चार प्रकार के पोसह का देश से [illegible] इस प्रकार [illegible] भेद होने से आठ भेद हुए इनके संयोगी भेद ८० होते हैं। परन्तु पूर्वाचार्यों की परम्परा में वर्तमान में मात्र आहार पोसह ही देश से तथा सर्व से किये गये हैं आहार पोसह में चउविहार उपवास करना यह सर्व से तथा तिविहार उपवासादि करना यह देश से पोसह है। मात्र रात्रि के चार पहर का पोसह करने वाला भी दिन में इनमें से कोई व्रत किए हुए होना चाहिये ऐसा नियम है।

पोसह में अठारह दोष टालना—उनके नाम

१. पोसह में व्रत बिना के किसी दूसरे श्रावक का पानी नहीं लेना।
२. पोसह के निमित्त सरस आहार नहीं लेना।
३. उत्तर पारणा के दिन विविध प्रकार की सामग्री स्वीकार नहीं करना।
४. पोसह में अथवा उसके अगले दिन देह विभूषा नहीं करना।
५. पोसह के निमित्त वस्त्रादि धुलवाने, धोने नहीं।
६. पोसह के निमित्त आभूषण न घड़वाने और न पहनने।
७. पोसह निमित्त वस्त्र नहीं रंगने रंगाने।

पच्चक्खाण किया हो उस पारणे के लिए उपर्युक्त पाठ में दिये गये पच्च-क्खाणों के नामों में से उस पच्चक्खाण का नाम लेकर पारें।

फिर एक नवकार गिनकर खमासमण पूर्वक चैत्यवन्दन का आदेश मांगकर "जयउ सामिय०" से जयवीयराय०" तक चैत्यवन्दन करे। अथवा इरियावहियं पडिक्कम कर चैत्यवन्दन करे पश्चात् मुंहपत्ति पडिलेहण आदि कर लिये हुए पच्चक्खाण के अनुसार पानी आदि जो आहार लेना हो लेवे।

१६–संध्या पडिलेहण विधि

दिन के तीसरे प्रहर में इस विधि को करे—प्रथम खमासमण० इच्छाकारेण० बहु पडिपुन्ना पोरिसी ? इच्छं" फिर "खमासमण० इच्छाकारेण० इरियावहियं पडिक्कमामि ? इच्छं" कहकर इरियावहीयं पडिक्कमे। पश्चात् "खमासमण० इच्छाकारेण० पडिलेहण करुं ? इच्छं" फिर "खमासमण० इच्छाकारेण० पोसहसाला प्रमाजुं ? इच्छं" कह कर मुंहपत्ति पडिलेहे तत्पश्चात् "खमासमण० इच्छाकारेण० अंग पडिलेहण संदिसाहुं ? इच्छं," कहकर मुंहपत्ति, चरवला, आसन, कंदोरा, धोती का पडिलेहण कर पोषधशाला से काजा निकाल कर एकांत में परठवे। बाद में खमासमण पूर्वक इरियावहियं पडिक्कमे, फिर "खमासमण० इच्छकारी भगवन् ! पसायकरी पडिलेहण पडिलेहावो जी, इच्छं" कहकर "शुद्ध स्वरूप धारे०" आदि पाठ से स्थापनाचार्य की पडिलेहणा करे। पश्चात् "खमासमण० इच्छाकारेण० उपधि मुंहपत्ति पडिलेहुं ? इच्छं," कहकर मुंहपत्ति पडिलेहे। फिर "खमासमण० इच्छाकारेण० सज्झाय संदिसाहुं ? इच्छं," खमासमण० इच्छाकारेण० सज्झाय करुं ? इच्छं," कहकर एक नवकार गिने यदि उपवास न हो तो दो वंदना देकर पच्चक्खाण करे, फिर "खमासमण० इच्छाकारेण उपधि थंडिला पडिलेहण संदिसाहुं ? इच्छं," फिर खमासमण० इच्छाकारेण० उपधि पडिले

डिलेहण करूं ? इच्छं," बाद में खमासमण इच्छाकारेण० बेसणे संदिसाहुं ? इच्छं," फिर खमासमण० इच्छाकारेण० बेसणे ठाऊं ? इच्छं," कहकर बाकी के सब वस्त्र और उपकरण पडिलेहे। फिर इरियावहियं पडिक्कमे।

१७–राइय संथारा पोरिसी की विधि

प्रथम खमासमण इच्छाकारेण० बहु पडिपुन्ना पोरिसि, इच्छं" कहकर "खमासमण पूर्वक इरियावहिय पडिक्कमे," फिर खमासमण० इच्छाकारेण० राइअ संथारा मुंहपत्ति पडिलेहे। पश्चात् "खमासमण० इच्छाकारेण० राइअ संथारा संदिसाहुं ? इच्छं," कहकर "खमासमण० इच्छाकारेण० राइअ संथारा ठाउं ? इच्छं," कहे तत्पश्चात् "खमासमण० इच्छाकारेण चैत्यवन्दन करूं ? इच्छं" कहकर चउक्कसाय० चैत्यवन्दन नमुत्थुणं० जावंति० जावंत० नमोऽर्हत्० उवसग्गहरं० जयवीयराय० तक कहे। फिर भूमि प्रमार्जन कर संथारा पर बैठ कर "निसीहि निसीहि निसीहि, नमो खमासमणाणं गोयमाइणं महामुणिणं कह कर तीन नवकार गिने और करेमिभंते कहे, फिर "गुरुगुणरयणेहिं मंडिअ सरीरा बहुपडिपुन्ना पोरिसी, राइअ संथारए ठामि इत्यादि २४ गाथाएं सम्पूर्ण कहे। तत्पश्चात् सात नवकार गिनकर सोवे। नींद न आवे वहां तक स्वाध्याय ध्यान करे।

प्रभात समय राइअ प्रतिक्रमण कर, पडिलेहण कर, देववन्दन तथा गुरुवन्दन कर पोसह पारे।

जिसने दो घड़ी रात में पोसह ली हो उसके दो घड़ी रात बाकी रहे आठ पहर पूरे हो जाते हैं पर पोसह दिन उगने के बाद पारणी चाहिये इसलिये उसे प्रतिक्रमण से पहले सामायिक लेनी चाहिये। दूसरे पोसह वाले जिन्होंने सूर्योदय के बाद पोसह लिया हो उसे सामायिक लेने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि सामायिक का उत्कृष्ट काल आठ पहर कहा है।

११–प्रातःकाल पडिलेहण की विधि

खमासमण देकर इरियावहियं पडिक्कमे, फिर खमासमण दे "इच्छा-कारेण॰ पडिलेहण संदिसाहुं ? इच्छं ।" खमासमण॰ इच्छाकारेण॰ पडिलेहण करूँ ? इच्छं," कहकर मुँहपत्ति पडिलेहे; फिर "खमासमण॰

---

१२. पोसह में राजकथा, युद्धकथा नहीं कहना।
१३. पोसह में देशकथा नहीं कहना।
१४. पोसह में पूंजे पडिलेहे बिना लघुनीति, बड़ीनीति परठवना नहीं ।
१५. पोसह में किसी की निन्दा नहीं करना।
१६. पोसह में गृहस्थ की बातें नहीं करना। अथवा माता, पिता पुत्र, भाई, स्त्री आदि संबंधियों के साथ वार्तालाप नहीं करना।
१७. पोसह में चोर सम्बधि बातें नहीं करना।
१८. पोसह में स्त्री के अंगोपांग रागपूर्वक नहीं देखना।

२. जहाँ जहाँ "इरियावहियं पडिक्कमे ऐसा लिखा हो, वहां वहां सर्वत्र खमासमण देकर इच्छाकारेण संदिसह भगवन्। इरियावहियं पडिक्कमामि? इच्छं, इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए॰ तस्स उत्तरी॰ अन्नत्थ॰ कह कर एक लोगस्स अथवा चार नवकार का काउस्सग्ग करके प्रगट लोगस्स कहना। इतना समझें।

३. गुरु हो तो वे "पडिलेहेह" ऐसा आदेश दें, यदि गुरु हो तो प्रत्येक आदेश उनसे मांगना।

४. पोसह के अन्दर सामायिक का करेमिभंते पाठ उचारणा हो तो "जाव नियम पज्जुवासामी के बदले "जाव पोसह पज्जुवासामी बोलें।
५. यदि राइय प्रतिक्रमण करना बाकी हो तो बहुवेल का आदेश प्रतिक्रमण करने के बाद लेवे।

१८—पोसह सम्बन्धी कुछ विशेष जानने योग्य

संध्या पडिलेहण करने से पहले जिन्होंने रात्रि का पोसह लेना हो उन को पहले पोसह लेकर फिर संध्या पडिलेहण करनी चाहिये। पोसह में मंदिर जी अथवा टट्टी पेशाब जावे तो वापिस आकर एक खमासमण दे इरियावहियं पडिक्कमे। लघुनीति (पेशाब) बड़ीनीति (टट्टी) जयणा पूर्वक परठवते समय पहले "अणुजाणह जस्सुग्गहो" एक बार कहे और परठवे बाद "वोसिरे" तीन बार मन में बोले। श्री मंदिर जी तथा उपाश्रय में प्रवेश करते समय तीन बार "निसीहि" और बाहर निकलते समय तीन बार "आवसीहि" कहे। पोसह में क्रिया करते समय धर्मध्यान सम्बन्धी बातचीत करते तथा दूसरे भी हर किसी समय बोलते समय जयणापूर्वक और मुख के पास मुंहपत्ति रखकर बोलने का व्यवहार रखे। दोपहर आदि के समय प्रमाद वश नींद आई हो तो खमासमण पूर्वक इरियावहियं पडिक्कमे।

आठ पहर का पोसह वाला और संध्या समय रात्रि पोसह लेने वाला प्रतिक्रमण में पहले खमासमण देकर इरियावहियं पडिक्कमे और [illegible] स्थंडिला (अणाढे आगाढे० इत्यादि) पडिलेहे।

पोसह वाला प्रतिक्रमण प्रारम्भ करते समय मात्र "खमासमण देकर इरियावहियं पडिक्कम कर प्रतिक्रमण शुरू करे। जिसने दिन का पोसह लिया है उस दैवसिय प्रतिक्रमण में "जावन्तकेवि०" की जगह "दाणे, हणे, [illegible] पाठ बोलना चाहिए। परन्तु जिसने दिन का पोसह नहीं लिया, पर संध्या में रात्रि का पोसह लिया है उसे दैवसिक प्रतिक्रमण में "जावन्तकेवि" बोलना चाहिए तथा राइअ प्रतिक्रमण में रात्रि पोसह वाले "जावन्तकेवि" की जगह "[illegible]" कहना चाहिए।

[illegible]

परिशिष्ट-३

उपयोगी विषयों का संग्रह

१-मुद्रा के तीन भेद :—योगमुद्रा, जिनमुद्रा, मुक्ताशुक्तिमुद्रा

(१) दोनों हाथों की दस अंगुलियां दोनों बीच अंतरित करके कमल के डोडे के आकार में हाथों को जोड़कर पेट पर दोनों कोहनियाँ स्थापित करना यह योगमुद्रा है।

इस मुद्रा द्वारा चैत्यवन्दन, शक्रस्तव (नमुत्थुणं), स्तवन आदि" कहे जाते हैं।

(२) दोनों पैरों के अगले भाग में चार अंगुल का अंतर तथा दोनों एड़ियों के बीच में चार अंगुल से कुछ कम अंतर रखकर खड़े होना यह जिन मुद्रा है।

इस मुद्रा से खड़े खड़े करने योग्य "कायोत्सर्ग, वंदना आदि" सर्वक्रिया की जाती है। इस में यथासंभव योगमुद्रा का भी उपयोग किया जाता है।

(३) दो हाथ कमल के डोडे के समान बीच में से पोले रखकर मस्तक पर लगाना यह मुक्ताशुक्ति मुद्रा है।

इस मुद्रा से "जय वीयराय" किया जाता है।

२-स्थापना :—छत्तीस गुणों सहित आचार्य महाराज के समीप सामायिक प्रतिक्रमण, आदि क्रियाएं की जाती हैं। उन के अभाव में अक्षादि की स्थापना करना, यदि न हो तो ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र के उपकरणों की स्थापना कर लेनी चाहिये।

(३) निर्वेद— अर्थात् विषयों में आसक्ति का कम होना ।
(४) अनुकम्पा—अर्थात् दुःखी प्राणियों के दुःख दूर करने की इच्छा ।
(५) आस्तिक्य— अर्थात् आत्मादिक परोक्ष किन्तु युक्ति प्रमाण से सिद्ध पदार्थों का स्वीकार करना ।

प्रश्न—सामायिक के श्रुत सामायिक आदि चार भेद किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं सो कहिए ।

उत्तर— (१) श्रुत सामायिक — ये शास्त्रों के अभ्यास से हो सकती है। (२) समकित सामायिक—प्रशम, संवेग, निर्वेद अनुकम्पा और आस्तिक्य लक्षण सम्यक्त्व से होती हैं। (३) देशविरति सामायिक — स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी आदि त्यागने से होती है (४) सर्वविरति सामायिक :— सर्वथा अर्थात् पूर्णरूप से हिंसादिक पापवृत्ति का त्याग करने से साध्य दृष्टिवंत जीव को प्राप्त होती है ।

प्रश्न—सच्चा सुख किसको कहते हैं ?

उत्तर—आध्यामिक और आत्मिक शान्ति ही वास्तविक और शाश्वत शान्ति है अर्थात् वही सुख है। तथा जो संसार के विलासी पदार्थों से सुख मिलता है वह शुद्ध सच्चा एवं वास्तविक सुख नहीं हैं। इनसे उत्पन्न हुए सुख क्षणिक है। विलासी पदार्थों के सेवन से तथा उनकी आसक्ति से जन्म, जरा और मरण के असह्य दुःख भोगने पड़ते हैं और वे भवबन्धन के कारण हैं। जबकि आध्यात्मिक जीवन से जन्म, जरा और मरण के बन्धन टूटते हैं तथा उनसे उत्पन्न असह्य वेदनायें भी नष्ट हो जाती हैं और उससे भव का निस्तार सुलभ हो जाता है ।

प्रश्न—संसार के सुख कैसे है ?

उत्तर—इस जगत में पुद्गल के संयोग से जो सुख रूप मालूम होते है वे तो आरोप मात्र हैं। वे वास्तविक सुख नहीं है। इस संसार में स्त्री, चन्दन, शरीर आदि के योग से जो सुख मिलता है वे सब दुःख रूप

८. अब ऊपरकी क्रियासे विपरीत कोनी से मुहपत्तीको तीन बार कोनीसे अंगुलीके अग्रभाग तक ले जाओ और कुछ निकाल रहे हो उस तरह बोलो कि—

कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, परिहरूं।

[यह एक प्रकारकी प्रमार्जन—विधि हुई। इसलिये इसकी क्रिया इसी ही तरह की गयी है।]

९. इसी प्रकार तीन बार कोनीसे कोनी तक मुहपत्तीको ऊपर रखकर अन्दर लो और बोलो कि—

ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदरूं।

[ये तीनों वस्तुएं अपने अंदर लाने के लिये इनका व्यापक न्यास किया जाता है।]

१० अब ऊपरकी क्रिया से विपरीत तीन बार कोनीसे हाथकी अंगुली तक मुहपत्ती ले जाओ और बोलो कि—

ज्ञान-विराधना, दर्शन-विराधना, चारित्र-विराधना परिहरूं

[ये तीन वस्तुएं बाहर निकालनेकी हैं, तदर्थ उसका पिसकर प्रमार्जन किया जाता है।]

११. अब मुहपत्तीको तीन बार अंदर लो और बोलो कि—

मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति आदरूं।

[ये तीनों वस्तुएं अपने अंदर लानेके लिये इसका व्यापक न्या[illegible] किया जाता है।]

१२. अब तीन बार मुहपत्तीको कोनीसे हाथकी अंगुली तक ले जाओ और बोलो कि—

मनो-दण्ड, वचन-दण्ड, काय-दण्ड परिहरूं

[ये तीनों वस्तुएं बाहर निकालनेकी हैं इसलिए इनका प्र[illegible] जाता है।]

२४-चार प्रकार के पाप कर्म :—

(१) निधत्त पापकर्म—सूइयों का ढेर हाथ आदि लगाने से बिखर जाता है। वैसे निन्दा, गर्हा से नाश होने वाले पाप।

(२) बद्ध पापकर्म—धागे से बांधी हुई सूइयां धागा तोड़ देने या खोल देने से अलग-अलग होकर बिखर जाती हैं। वैसे ही आलोचना प्रतिक्रमण से क्षय होने वाले पाप।

(३) स्पृष्ट पापकर्म—धागे से बंधी हुई सूइयों को जंग लगगया हो, उन्हें तैल आदि लगाकर ताप देने से तथा अन्य लोहे आदि के घिसने से महामेहनत से अलग किया जा सकता है; वैसे ही जो पाप तीव्र गर्हा तथा उग्रतप से क्षय होते हैं।

(४) निकाचित पापकर्म—सूइयों के समूह को आग में तपाकर फिर हथौड़े आदि से कूटकर एक साथ मिला दिया जावे वह समूह किसी भी उपाय से जुदा नहीं किया जा सकता, वैसे ही जो कर्म उग्रतप द्वारा भी क्षय नहीं हो पाते पर रस-विपाक द्वारा अवश्य भोगने पड़ते हैं।

इन उपर्युक्त चार प्रकार के पाप कर्मों में से पहले दो प्रकार के पापकर्म प्रतिक्रमण द्वारा क्षय हो जाते हैं।

२५-चरण सत्तरी :—

वय-समणधम्म-संजम-वेयावच्चं अ बंभगुत्तीओ।
नाणाइ तिअं तव कोह-निग्गहाइं चरणमेअं ॥१॥

५—प्राणातिपात विरमण आदि पांच महाव्रत।
१०—दस प्रकार का साधुधर्म।
१७—सत्रह प्रकार का संयम।

१०—दस प्रकार का वैयावच्च।

९—नव प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्ति।

३—ज्ञान आदि त्रिक।

१२—बारह प्रकार का तप।

४—क्रोधादि चार कषाय निग्रह।

इस प्रकार चारित्र के कुल सत्तर (७०) भेद हैं।

२६ पच्चक्खाण के मुख्य दो भेद हैं—मूलगुण पच्चक्खाण और उत्तर-गुण पच्चक्खाण। मूलगुण पच्चक्खाण भी दो प्रकार का है—सर्व से और देश से।

(१) सर्व से मूलगुण पच्चक्खाण पंच-महाव्रत रूप साधु को होता है।

(२) देश से मूलगुण पच्चक्खाण पंच-अनुव्रत रूप श्रावक को होता है।

उत्तरगुण पच्चक्खाण के भी भेद हैं:—सर्व से और देश से।

(३) इनमें पिंडविशुद्धि, पांच समिति, तीन गुप्ति, बारह प्रकार का तप, बारह प्रतिमा और अभिग्रह आदि अनेक प्रकार से साधु को सर्व से उत्तरगुण पच्चक्खाण होता है।

(४) तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत आदि श्रावक को देश से उत्तरगुण पच्चक्खाण होता है।

अब साधु और श्रावक को देश से उत्तरगुण पच्चक्खाण अनागत आदि दस प्रकार का यथायोग्य रीति से होता है; वह इस प्रकार है :—

१-अनागत पच्चक्खाण—पर्यूषणादि पर्व में अथवा और किसी विशेष कारण से गुरु ग्लान आदि की वैयावच्च (सेवा-शुश्रूषा) करने के उसमें करने वाले अट्ठमादि तप पर्व आने से पहले कर लेना।

क्रोध परिहरूँ ।

७. इसी प्रकार मुहपत्ती वाँयें हाथमें रखकर बाँये कन्धेपर प्रमार्जन करो और बोलो कि—

मान परिहरूँ ।

८. इसी तरह मुहपत्ती वाँये हाथमें रखकर दाँयी कोखमें प्रमार्जना ो और बोलो कि—

माया परिहरूँ ।

९. फिर मुहपत्ती दाँये हाथमें पकड़कर वाँयी कोखमें प्रमार्जन करते हुए बोलो कि—

लोभ परिहरूँ ।

१०. फिर दाँये पैरके बीचमें दोनों भागोंमें चरवलेसे तीन वार ना करते हुए बोलो कि—

पृथ्वीकाय, अप्‌काय, तेउकायकी रक्षा करूँ ।

११. इसी प्रकार वाँये पैरके बीचमें और दोनों भागोंमें प्रमार्जना ते हुए बोलो कि—

वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकायकी जयणा करूँ ।

सूचना

(१) 'मुहपत्तीका पडिलेहण' वस्तुतः अनुभवी व्यक्तिके पाससे सीखना चाहिये । यहाँ तो दिग्दर्शन मात्र कराया है ।

(२) दसवें नियममें दाँया पैर बतलाया है, वहाँ वाँया पैर औ ग्यारहवें नियममें वाँया पैर बतलाया है, वहाँ दायां पैर, ऐसा विधि अन्य ग्रन्थोंमें मिलता है ।

( ) साध्वीजी को छातीकी ३ और कन्धे तथा कोखक मिलकर कुल ७ नहीं होती और शेष १८ होती हैं । सि

को मस्तककी तीन भी नहीं होती हैं। अतः कुल १५ होती है।

ध्यान रहे कि मुहपत्ती पडिलेहणकी इस विधिका सामायिक करते समय तथा पूर्ण करते समय बराबर उपयोग हो।

[२]

सामायिक-प्रतिक्रमण सम्बन्धी उपयोगी सूचनाएँ

१-समय

सामायिक हर समय कर सकते हैं। इस समय कम से कम ४८ मिनट का है।

दैवसिक प्रतिक्रमण दिनके अंतिम भागमें अर्थात् सूर्यास्त समयमें करना चाहिये। शास्त्रोंमें कहा है कि—

"अद्ध निबुड्डे बिंबे, सुत्तं कड्ढंति गीयत्था।
इअ वयण—पमाणेणं, देवसियावस्सए कालो॥

सूर्यबिम्बका अर्धभाग अस्त हो तब गीतार्थ प्रतिक्रमण—सूत्र कहते हैं। इस वचन—प्रमाणसे दैवसिक—प्रतिक्रमणका समय जानना। तात्पर्य यह है कि प्रतिक्रमण सूर्यास्तके समय करना चाहिये।

शास्त्रमें **'उभओ-कालमावस्सयं करेइ'** ऐसा जो पाठ आता है वह भी प्रतिक्रमण सन्ध्या—समयमें करनेका सूचन करता है।

अपवाद—मार्गसे दैवसिक—प्रतिक्रमण दिनके तीसरे पहरसे अर्द्ध-रात्रि होनेसे पूर्व तक हो सकता है और योगशास्त्र [illegible] सार मध्याह्नसे [illegible] हो सकता है।

रात्रिक—प्रतिक्रमण मध्यरात्रिसे मध्याह्न तक हो सकता है। कहा है कि—

[illegible]
[illegible]

भी पच्चक्खाण चालू रहता है। तात्पर्य यह है कि ऐसे पच्चक्खाण से विरति का अभ्यास वृद्धि पा कर दृढ़-दृढ़तर होता जाता है। इस पच्चक्खाण के आठ भेद हैं :—

(१) अंगुट्ठ सहियं—मुट्ठी में अंगूठा रखना वहाँ तक (२) मुट्ठी सहियं—मुट्ठी बंद रखना वहाँ तक, (३) गंठि सहियं—गांठ बांध रखने तक। (४) घर सहियं—घर पहुँचने तक। (५) प्रस्वेद सहियं—शरीर का पसीना निकले वहाँ तक। (६) उस्सास सहियं—श्वासोच्छ्वास लूँ अथवा जीवित रहूँ वहाँ तक। (७) थिबुक सहियं—भाजन में लगा हुआ जलादि का बिन्दु सूखे वहाँ तक। (८) जोइक्ख सहियं—दीपक आदि की ज्योति रहे वहाँ तक।

१०-अद्धा पच्चक्खाण—काल के परिमाणवाला पच्चक्खाण-नवकारसी, पोरसी आदि। इस के नवकारसी आदि दस भेद इस प्रकार हैं :—

(१) नवकार सहियं[1], (२) पोरसी, (३) पुरिमड्ढ, (४) एकासन, (५) एगट्ठाण, (६) आयंबिल, (७) अभत्तट्ठ (उपवास) (८) चरिम, (९) अभिग्रह, और (१०) विगई।

जन्म सूतक विचार

१—पुत्र जन्मे तो दस दिन का; पुत्री जन्मे तो ग्यारह दिन का; [illegible]

१ नवकार सहित पच्चक्खाण—रात्रि भोजनादि दोष निवारण के लिये किया जाता है इसकी काल मर्यादा सूर्योदय से (कम से कम) दो घड़ी (४८ मिनट) की मानी है अर्थात् दो घड़ी दिन चढ़े पच्चक्खाण पारना चाहिये।

आवश्यक चूर्णिके अभिप्रायसे रात्रिक—प्रतिक्रमण उग्घाडपोरिसी तक अर्थात् सूत्र—पोरिसी पूरी हो वहां तक और व्यवहार—सूत्रके अभिप्रायसे मध्याह्न तक कर सकते हैं।

पाक्षिक—प्रतिक्रमण पक्षके अन्तमें अर्थात् चतुर्दशीके दिन किया जाता है। चातुर्मासिक—प्रतिक्रमण चातुर्मासके अन्तमें अर्थात् कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी, फाल्गुण शुक्ला चतुर्दशी और आषाढ शुक्ला चतुर्दशीके दिन किया जाता है तथा सांवत्सरिक—प्रतिक्रमण संवत्सरके अन्तमें अर्थात् भाद्रपद शुक्ला चतुर्थीके दिन किया जाता है।

२—स्थान

गुरु महाराजका योग हो तो प्रतिक्रमण उनके साथ करना, अन्यथा उपाश्रयमें या अपने घरपर करना। आ. चू. में कहा है कि—असइ-साहु-चेइयाणं पोसहसालाए वा सगिहे वा सामाइयं वा आवस्सयं वा करेइ।" साधु और चैत्यका योग न हो तो श्रावक पौषधशालामें अथवा अपने घरपर भी सामायिक अथवा आवश्यक (प्रतिक्रमण) करे।"

चिरन्तनाचार्यकृत प्रतिक्रमण—विधिकी गाथामें कहा है कि—

"पंचविहायार-विसुद्धि-हेउमिह साहु सावगो वा वि।
पडिक्कमणं सह गुरुणा, गुरु-विरहे कुणइ इक्को वि॥"

साधु और श्रावक पांच प्रकारके आचारकी विशुद्धिके लिये गुरुके साथ प्रतिक्रमण करे और वैसा योग न हो तो अकेला भी करे।" (परन्तु उस समय गुरुकी स्थापना अवश्य करे। स्थापनाचार्यकी विधि पहले बतला चुके हैं।)

३—शुद्धि

शुद्धिपूर्वक की हुई क्रिया अत्यन्त फलदायक होती है इसलिये सामायिक-प्रतिक्रमण करनेवालेको शरीर, वस्त्र, और उपकरणकी शुद्धि-[illegible]न रखना चाहिये।

को जन्मे तो ग्यारह दिन तथा बारह दिन का सूतक जानना।

२—उस के घर के मनुष्य बारह दिन तक जिनपूजा, प्रतिक्रमण सामायिक न करें। जपमाला, पुस्तक, स्थापना आदि का स्पर्श न करे।

३—प्रसूतिवाली स्त्री को ३० दिन तक सूतक, वह एक महीने तक मंदिर जी में जिनेश्वर देव के दर्शन न करे और ४० दिन तक देव का पूजन न करे। सामायिक प्रतिक्रमण भी न करे तथा साधु को वहरावे भी नहीं।

४—प्रसूति वाली स्त्री की परिचर्या (सेवा) करने वाली स्त्री भी ३० दिन तक जिन पूजन न करे तथा मुनिराज को वहरावे भी नहीं, सामायिक, प्रतिक्रमण भी न करे, नमस्कार मंत्र भी न गुणे।

५—गाय, भैंस, घोड़ी, सांडनी (ऊंटनी) इत्यादि घर में प्रसवे तो तीन दिन का सूतक, वन में प्रसवे तो एक दिन का सूतक।

६—अपनी निश्राय में रही हुई दासी प्रमुख के पुत्र-पुत्री का जन्म हो तो तीन दिन का सूतक।

७—भैंस के प्रसूत होने के १५ दिन बाद, गाय के प्रसव के १० दिन पीछे, बकरी के प्रसव होने से ८ दिन पीछे, उंटनी के प्रसव होने के १० दिन के पीछे उनका दूध काम में लाना कल्पता है।

मृत्यु सूतक विचार

१—जिसके घर मृत्यु हो उसे १२ दिन का सूतक। उस के घर का आहार, पानी साधु न ले तथा उस घर वाले सामायिक, प्रतिक्रमण, जिन पूजन न करें। मृतक के घर का जो मृत सांधिया (कंधा देने वाला) हो वह १० दिन और अन्य घर का ३ दिन देव पूजा न करे।

२—मृतक को छूने वाला, पास सोने वाला, कंधा देने वाला ३ दिन (चौबीस पहर) तक देव पूजा आदि उपर्युक्त कार्य न करे।

द मदा का अखंड नियम हो तो समता भाव से संथार में
। परन्तु मुख से नवकारमंत्र का उच्चारण भी न करे।
ापनाचार्य भी न छुए।
। मृतक को न छुआ हो आठ प्रहर सामायिक, प्रतिक्रमण
जन आदि न करे। यदि किसी को भी न छुआ हो तो दो
नान से शुद्ध होकर पूजन, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि कर
सकता है।
जिस के घर जन्म-मरण हुआ हो उन के घर भोजन करने वाले
को १२ दिन का सूतक।
बालक जन्मे और उसी दिन मरे तो एक दिन का सूतक।
देशांतर में किसी का मरण हो तो एक दिन का सूतक।
-आठ वर्ष के अन्दर की आयु वाला बालक मरे तो जितने वर्ष
का हो उतने दिन का सूतक।
-परदेश में मृत्यु हो तो एक दिन का सूतक।
—गर्भपात जितने महीने का हो उतने दिन का सूतक।
—अपनी निश्राय में रहे हुए दास-दासी की अथवा उसके पुत्र-
पौत्रादि की मृत्यु हो तो तीन दिन का सूतक।
—गाय, भैंस, घोड़ा अथवा अन्य भी कोई पंचेन्द्रीय जीव घर में
मरे तो उस का कलेवर उठाने तक सूतक, बाद में शुद्ध है।

ऋतुवंती स्त्री सम्बन्धी सूतक

१—ऋतुवंती स्त्री चार दिन भांडादि को नहीं छुए, चार दिन प्रति-
क्रमण न करे। पांच दिन देव पूजा न करे।
२—रोगादि के कारण किसी स्त्री को चार दिन पीछे रक्त बहता
दीखे तो असज्झाय नहीं, विवेक पूर्वक पवित्र होकर ५ दिन
पीछे स्थापना पुस्तक छुए, जिन दर्शन करे, साधु को वोहरावे।
... तो सनाही नहीं।

परिशिष्ठ—४

प्रभुदर्शन नमस्कार स्तोत्राणि

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनं ।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्ष साधनं ॥१॥

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वंदनेन च ।
न तिष्टति चिरं पापं, छिद्र हस्ते यथोदकं ॥२॥

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसार ध्वान्तनाशनं ।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थ प्रकाशकं ॥३॥

दर्शनं जिनचंद्रस्य, सद्धर्म्मामृतवर्पणं ।
जन्मदाघ विनाशाय, वृंहणं सुखवारिधेः ॥४॥

जिने भक्तिर्जिनेभक्ति र्जिनेभक्तिः दिने दिने ।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे ॥१॥

नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतराग समो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥१॥

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥१॥

वीतरागमुखं दृष्ट्वा, पद्मराग समप्रभं ।
नैक जन्म कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यते ॥१॥

अद्य मे सफलं जन्म, अद्य मे सफला क्रिया ।
अद्य में सफलं गात्रं, जिनेन्द्र ! तव दर्शनात् ॥१॥

नेत्रानन्दकरी भवोदधितरी, श्रेयस्तरोर्मञ्जरी;
श्री सद्धर्ममहानरेन्द्रनगरी, व्यापल्लताधूमरी ।
हर्षोत्कर्षशुभप्रभावलहरी, रागद्विषां जित्वरी
मूर्तिः श्री-जिन-पुङ्गवस्य भवतु श्रेयस्करी देहिनाम् ॥१॥

प्रशमरसनिमग्नं दृष्टियुग्मं प्रसन्नं,
वदनकमलमङ्कः कामिनीसंगशून्यः ।
करयुगमपि यत्ते शस्त्रसम्पर्क-वन्ध्यं,
तदसि जगति देवो वीतरागस्त्वमेव ॥१॥

सरस-शांति-सुधारस-सागरं, शुचितरं गुणरत्नमहाकरम् ।
भविक पंकजबोधदिवाकरं, प्रतिदिनं प्रणमामि जिनेश्वरम् ॥१॥

प्रभु दर्शन सुखसंपदा, प्रभु दर्शन नवनिध
प्रभु दर्शन थी पामीये, सकल पदारथ सिद्ध ॥१॥

श्री शांतिनाथ चैत्यवन्दन

सकल-कुशल-वल्ली-पुष्करावर्त-मेघो,
दुरित-तिमिर-भानुः, कल्प-वृक्षोपमानः ।
भवजल-निधि-पोतः, सर्व-संपत्ति-हेतुः,
स भवतु सततं वः, श्रेयसे शांतिनाथः ॥१॥

श्री समेतशिखर चैत्यवन्दन

पूरब देशे दीपतो, गिरओ गिरिवर नित्य ।
तीर्थ शिखरसम्मेत को, चाहूँ दर्शन नित्य ॥१॥
प्रथम चरम बारम प्रभु, बावीस के विण वीस ।
गसण करी इन गिरिवरे, शिव पहुँता सुजगीस ॥२॥

श्री शांतिनाथ चैत्यवन्दन

नम जिनवर शांतिनाथ, सेवो सिर नामी ।
कनकवरण शरीर कांति, अतिशय अभिरामी ॥१
अचिरा अंगज विश्वसेन, नरपति कुलनंद ।
मृगलंछन जिन पद्मासन, सेवे सुरनर इन्द ॥२
नामे अमृत लहरी ए, जास अखंडित आण,
एक मने आराधता लहिये कोडी कल्याण ॥३

श्री पार्श्वनाथ चैत्यवन्दन

सुखदायी पासनाह, नमिये मनरंग ।
नीलवरण अश्वसेन नंद, निरमल निःशंक ॥१
वांछित पूरण कल्प साख, वामासुत सार ।
श्री गोड़ीपुर-स्वामी नाम, जपिये निरधार ॥२
त्रिभुवनपति त्रेवीसमो ए, अमृतसम जसु वाण ।
ध्यान धरंतां एहनु प्रगटे परम कल्याण ॥३

श्री महावीर स्वामी चैत्यवन्दन

वन्दु जगदाधार, शिव संपत्ति कारण ।
जन्म जरा मरणादि रूप, भवताप निवारण ॥१॥
श्री सिद्धारथ तात मात त्रिशला तनु जात ।
सोवन वरण शरीर वीर, त्रिभुवन विख्यात ॥२
अमृत रूपे राजतो ए, चोवीसमो जिनराय ।
क्षमा प्रमुख "कल्याण मुनि", आपो करि सुपसाय ॥३

स्तवन संग्रह

(१)

देवासिय प्रतिक्रमण में कहने के लिये वड़ा स्तवन

भविका श्री जिनविम्ब जुहारो, आतम परम आधारो रे ॥ भवि
जिनप्रतिमा जिन-सारखी जानो, न करो शंका कांई ।
आगम-वाणी ने अनुसारे, राखो प्रीत सवाई रे ॥ भवि० १
जे जिनविम्ब स्वरूप न जाने, ते कहिये किम जाने ।
भूला तेह अज्ञाने भरिया, नहीं तिहां तत्त्व पिछान रे ॥ भवि०
अंवड श्रावक श्रेणिक राजा, रावण प्रमुख अनेक ।
विविध परे जिनभक्ति करंता, पाम्या धर्मविवेक रे॥ भवि० ३
जिनप्रतिमा वहु भक्ते जोतां, होय निश्चय उपगार ।
परमारथ गुण प्रगटे पूरण, जो जो आर्द्रकुमार रे ॥ भवि० ४
जिनप्रतिमा आकारे जलचर, छे वहु जलधि मंझार ।
ते देखी वहुला मच्छादिक, पामे विरति प्रकार रे ॥भवि०५
पंचम अंगे जिनप्रतिमा नो, प्रगट पने अधिकार ।
सूर्याभ सुरे जिन पूज्या, रायपसेणी मझार रे ॥ भवि० ६
दशमे अंगे अहिंसा दाखी, जिन पूजा जिनराज ।
एहवा आगम अरथ मरोड़ी,करिये केम अकाज रे॥ भवि० ७
समकितधारी सतीय द्रोपदी, जिन पूज्या मन रंगे ।
जोजो एहनो अर्थ विचारी, छठे ज्ञाता अंगे रे ॥ भवि० ८
विजय सुरे जिम जिनवर पूजा, कीधी चित्त थिर राखी ।
द्रव्य भाव विहु भेदे कीनी, जीवाभिगम छे साखीं रे ॥भवि० ९

आसू मास मनोहर तिम वलि । चैत्रक मास जगीशे जी ।
उजवाली सातम थी करिये, नव आंविल नव दिवसेजी ॥
तेरे सहस वलि गुणिये गुणणूं, नवपद केरो सारोजी ।
इणि पर निर्मल तप आदरिये; आगमसाख उदारोजी ॥३
विमल कमल दल लोयण सुन्दर, श्रीचक्केसरी देवीजी ।
नवपद सेवक भविजन केरा, विघ्न हरो सुर सेवीजी ॥
श्रीखरतरगच्छ नायक सद्गुरु, श्रीजिनभक्ति मुणिंदाजी ।
तासु पसाये इण परि पभणे श्रीजिनलाभसुरिंदाजी ॥४॥

पर्यूषण पर्व की स्तुति

वलि वलि हूँ ध्याऊं गाऊं जिनवर वीर,
जिनपर्व पजूसण दाख्या धर्मनी सीर ।
आषाढ़ चौमासे हूंती दिन पंचास,
पडिक्कमणुं संवच्छरी, करिये त्रण उपवास ॥१॥
चउवीसे जिणवर पूजा सत्तर प्रकार;
करिये भले भावे भरिये पुण्य भंडार ।
वलि चैत्यप्रवाड़े फिरता लाभ अनंत,
इम पर्व पजूसण सहू में महिमावन्त ॥२॥
पुस्तक पूजावी नव वाचनाएँ वंचाव,
श्रीकल्पसूत्र जिहां सुणतां पाप पलाय ।
प्रतिदिन परभावना धूप अगर उखेव,
इम भवियण प्राणी पर्व पजूसण सेव ॥३॥
वलि साहम्मीवच्छल करिये वारम्वार,
केई भावना भावे केई तपसी सीलधार ।

[illegible] आगम भाखे, कोई भेद मत [illegible] ।
[illegible] नित [illegible], प्रेम धरो [illegible] ।।अजि० १०
[illegible] प्रभु [illegible], [illegible] ।
[illegible] गुरु उपदेशे, श्री जिनचंद्र [illegible] रे ।।अजि० ११

श्री सिद्धाचल तीर्थेश्वर का स्तवन

१

(राग—आसणी मारवाड़ी)

आज दिन हर्षे, जिनवर दर्शन करशूं रे ।। आज० टेक
विमलगिरि पर शोभे जिनेश्वर, अद्भुत रचना भारी रे ।
प्रथम जिनन्द की मोहन मुद्रा, लागे प्यारी रे ।। आज० १
उग्र अभिग्रह के वश होकर, दुस्तर में यहाँ आया रे :
पूर्ण हुई अभिलाषा मेरी, आनन्द छाया रे ।। आज० २
पूरव नवाणु वार जिनन्दजी, ए गिरिवर तुम आये रे ।
पुण्य प्रभावे योग मिला तब, दरशन पाये रे ।। आज० ३
वीतराग सर्वज्ञ निरंजन, जगन्नाथ पद धारी रे० ।
तुम सम अवर न कोई जग में, जग उपकारी रे ।। आज० ४
शिव सुख करता सब दुःख हर्ता, अचल अकल अविकारी रे ।
विश्व विख्याता जग सब त्राता, प्रभु बलिहारी रे ।।आज० ५
कृष्ण सप्तमी मास अषाढे, यात्रा शिव सुखकारी रे ।
वीर चौबीसे वर्ष छयालीसे, जय—जयकारी रे ।।आज० ६
गुणसागर भगवान कृपालु, त्रैलोक्य गुरु जस धारी रे ।
रत्नाकर आनन्द से भरिया, आनन्द कारी रे ।।आज० ७

२

(राग—प्रभात)

[illegible] तीर्थराज हितकारी रे।। टेक
[illegible] रे।

[illegible]
[illegible] ॥ ५ ॥

चतुर्दशी की स्तुति

प्रथम तीर्थंकर आदि जिनेश्वर जाकी कीजो सेव,
गच्छ चोरासी तेहने भाख्या जाकी करणी एह ।
तेहने पाखी चौदस कीजे कीजे अंग कहाय,
पाखी सूत्र प्रथम तुम देखो जिम जिम संशय जाय ॥ १ ॥
चउवीसे जिन पूजा कीजे मानो जिनकी आण ।
कल्पसूत्रनी पाखी चौदस, जोवो चतुर सुजाण ।
इण पर ठाम ठाम तुम देखो, चौदस पाखी होय ।
भूला कांई भमो तुम प्राणी साचो जिनधर्म जोय ॥२॥
चउदश के दिन पाखी कीजे, सूत्रे केरी साख ।
भविक जीव इणपरे आराधो टीका चूर्णी भाष्य ।
आवश्यकसूत्र इण पर बोले, चउदसके दिन पाखी ।
चउद-पूरवधर इण पर बोले ते निश्चय मन राखी ॥३॥
श्रुतदेवी इक मन आराधो मन वांछित फल होय,
जे जे आज्ञा सूधी पाले, ज्यानो विघन हरेय ।
सेवक इण पर करे वीनती सूधो समकित पाय,
खरतरगच्छमंडन कुमतिविहंडण माणिक्यसूरि गुरुराय ॥४॥

सीमंधर जिन स्तुति

श्री सीमंधर जिनवर, सुखकर साहेब देव;
[illegible]रिहंत सकलनी, भाव धरी करूं सेव;

[illegible] ॥ १
ऋषभ जिनेश्वर [illegible], [illegible] रे ।
आदिनाथ आदि तीर्थंकर, जिन गुण के धारी रे ॥ सिद्धा० २
तीर्थक्षेत्र की यात्रा करके, दर्शन निर्मल होता रे ।
तीर्थपति श्री[illegible] [illegible], [illegible] रे ॥ सिद्धा० ३
सुखकारी भगवान् जिनेश्वर, तीन लोक सुख-कर्ता रे ।
आनन्दो आनन्द-रत्नाकर, गावो गुण-रस समतारे ॥ सिद्धा० ४

श्री भद्रेश्वर तीर्थ का स्तवन

[राग माड़ तर्ज—वासुपूज्य विलासी चम्पा ना वासी]

भद्रेश्वर स्वामी—त्रिभुवन नामी, तारो हो वीर जिनन्द ।
अब मोय तारो वीर जिनन्द, हो भद्रेश्वर स्वामी ॥टेक॥
कच्छदेश में सब तीर्थों में तीर्थराज कहवाय ।
भद्रेश्वर है नाम शुभंकर, वीर प्रभु चित्त भाय ॥ हो० भ० १
प्राचीन तीर्थ मनोहर सुन्दर, महिमा वरणी न जाय ।
बावन देवल जिनवर राजे, इन्द्र भुवन शरमाय ॥ हो० भ० २
बीच में शासन नायक शोभे, दिव्य देवालय माँय ।
दर्शन कर दिल हर्ष भराया, आनंद रंग उछलाय ॥ हो० भ० ३
हृदय हमारा निवास तुमारा, लुटेरे घुस आवें ।
जो न करो प्रभु यत्न भुवन का, यश कीर्ति सब जावे ॥ हो० भ०
शान्त क्षमादि सुगुण तुमारे, स्वान्त सदन जो विराजे
सर्व त्याग की उत्कट भावना, गर्जे
शुद्ध साध्य तुमको जो जाने,
नेक नजर जो तुम्हारी

शीतल मुक्ति पद को पाये, वीज दिवस सुखकार
अतीत अनागत गिनते भविजन। फल अनंत अपार जी।। म०४
वीर प्रभु ने धर्म दिखाया, श्रावक और अनगार।
धर्म शुक्ल दोय ध्यान निरंतर,ध्यावो जय-जयकार जी ।। महा०५
वीज दिवस के चन्द्रोदय के, दर्शन करे संसार।
चडती कला दिन दिन वधे भवि, वीज दिवस जग सारजी ।।६
दो महीने लघु से आराधो, जावजीव उत्कृष्ट ।
दोय वर्ष दोय मास से, वीज करो शुभ दृष्ट जी ।। महा ०७
वीज पर्व के तप करने से, नष्ट होय दोय वंध ।
राग द्वेष शत्रु हटे रे मिट जावे भव फंद जी ।। महा० ८
चौविहार उपवास करी ने, आराधे शुभ पर्व ।
मन वांच्छित सव ही फले भवि, पावे सुख निधि सर्व जी ।।६
धन शासन जिनराज का रे, जग जीवन आधार ।
वर्धमान जिनराज को रे, वन्दुं वारम्वार जी ।। महा० १०
सुखसागर भगवान् हो, त्रैलोक्यनाथ हितकार।
आनन्द रत्नाकर कहे रे, वीज दिवस मनहार जी ।। महा०११

नवपदजी का स्तवन

धरलो निर्मल ध्यान भविकजन, धरलो निर्मल ध्यान।
शिव सुखके सनेही भविकजन, धरजो निर्मल ध्यान ।।टेर।।
चार कर्मों को छय करीने, होते अरिहंत रूप।
वारे गुणके धारक जिनवर, सेवो शुद्ध स्वरूप।।
सेवो शुद्ध स्वरूप, भविक० ।।१।।
अगम अगोचर अलख निरंजन, वीजे पदमें सिद्ध ।

	४	छट्ठे-द्विक्	छट्ठे-दिक्
	५	वचमे	वचने
	२	गन्धर्य	गन्धर्व
	२४	वालू	वालू
	७	आयन	आसन
	६	गीमुख	गोमुख
	५	देदेन्द्र	देवेन्द्र
३	१२	विविय रंगों	विविध रंगों
	२६	पच्छन्न-कालेर्ण	पच्छन्न कालेणं
	२२	सध्वओ	सव्वओ
८	६	मूर्य	सूर्य
	१	हा ता	हो ती
३	१	दन	दिन
८	३	अथ	अर्थ
८	२२	प्रमुखचौ की	प्रमुख में चौकी
२	१६	अमिनय	अभिनय
३	१८	विम्रम	विभ्रम
६	७	कुंदिदुज्ज	कुंदिदुज्जल
३	१३	च्छित्ता	च्छित्ती
७	१५	तिण्णु०हेवु	तिण्हुण्हंवु
६	३	भगयन्तों	भगवंतों
१	७	सुर-रमणीहि	सुर-रमणीहिं
४	११	चडामणि	चूडामणि
८	१३	परिच्छड	परिच्छूड
३	१	यिदीर्ण	विदीर्ण
४	१५	ास	पास
७	६	पर्श्वनाथ	पार्श्वनाथ

[illegible]

श्री महावीर प्रभु का स्तवन

([illegible])

महावीर जिनजी [illegible] ॥ टेक

निर्मल गुण के भंडारा, [illegible] जग [illegible] ।
तुम [illegible] ॥ महावीर० १

कर्मों को मार हटाया, [illegible] मन मेरे भाया ।
उपकारी–हितकारी–[illegible] ॥ महावीर० २

तुम नाथ अलौकिक भारी, आनन्द को आनन्दकारी
हम आनन्दा–[illegible]–प्रभुनन्दा ॥ महावीर० ३

बीज पर्व का स्तवन

(राग—गोपीनन्द)

महावीर जिनन्दा, नमन करुं रे सच्चे भाव से ॥ टेक

बीज दिवस सुन्दर जिनराया, श्री मुख से फरमावे ।
जे नर शुध मन से आरावे परमानंद पद पावे जी ॥ महा० १

बीज दिने उत्तम कल्याणक, पंच हुए श्रीकार ।
वर्त्तमान शासन जिनराया, बोले आनंदकार जी ॥ महा० २

सुमतिनाथ अरनाथ के रे, च्यवन कल्याणक जान ।
वासुपूज्य शीतल जिनन्द रे पाये केवलज्ञान जी ॥ महा० ३

रोग शोक संताप विपति सब, कष्ट वियोग हो दूर ॥
कष्ट वियोग हो दूर, भविक० ॥ १० ॥
विधि संयुक्त गुरु मुख से पढ़के, आराधो शुभ भाव।
आसोज चैत्री दोय वर्षमें करिये हर्ष उच्छाव ॥
करिये हर्ष उच्छाव, भविक० ॥ ११ ॥
ओड़ा चार वर्ष में होवे, इक्यासी आंबिल सार।
अंत ऊजमणो करिये भविजन, तरिये भवजल पार ॥
तरिये भवजल पार, भविक० ॥ १२ ॥
संवत् उन्नीसे इक्यासी वर्षे, जोधनगरके मांय।
चैत सुदी नवमी रवि पुष्ये, हरि गावे हरपाय ॥
हरि गावे हरपाय, भविक० ॥ १३ ॥

—:o.—

स्तुति (थुई) संग्रह

नवपद की स्तुति

निरुपम सुखदायक जगनायक लायक शिवगति गामीजी।
करुणासागर निज-गुण-आगर, शुभ समतारस धामीजी ॥
श्री सिद्धचक्र शिरोमणि जिनवर, ध्यावे जे मनरंगेजी
ते मानव श्रीपाल तणी परे, पामे सुख सुरसंगेजी ॥१॥
अरिहंत सिद्ध आचारिज पाठक, साधु महागुणवंता जी।
दरिसण नाण चरण तप उत्तम, नवपद जग जयवंताजी।
एहनुं ध्यान धरंता लहिये अविचल पद अविनाशीजी।
ते सघला जिन नायक नमिये जिण ए नीति प्रकाशीजी ॥२॥

	५	छट्ठे-ढिन	छट्ठे-दिन
	५	यचगे	यचने
	२	गन्धर्य	गन्धर्व
	२४	वालू	वालू
	७	सागन	आसन
३	६	गीमुख	गोमुख
७	५	देदेन्द्र	देवेन्द्र
४	१२	त्रिविय रंगों	विविध रंगों
६	२६	पच्छन्न-कालेणं	पच्छन्न कालेणं
६	२२	गध्यओ	गब्भओ
८	६	मूर्य	सूर्य
४	१	हा ता	हो ती
३	१	दन	दिन
८	३	अय	अर्थ
८	२२	प्रमुखचौ की	प्रमुख में चौकी
२	१६	अमिनय	अभिनय
	१८	विग्रम	विभ्रम
	७	कुंदिदुज्ज	कुंदिदुज्जल
३	१३	च्छित्ता	च्छित्ती
७	१५	तिण्णु०हेवु	तिण्हुण्हंवु
६	३	भगयन्तों	भगवंतों
३१	७	नुर-रमणीहि	सुर-रमणीहि
७४	११	चडामणि	चूडामणि
७८	१३	परिच्छड	परिच्छूड
८३	१	यिदीर्ण	विदीर्ण
८४	१५	स	पास
८७	६	पदर्वनाय	पार्श्वनाथ

दीवाली[1] होली नी राति अग्नि उजाल्यां थी परभाति।
वली विशेष उड़े खेह, तिहां जाणयो असजाझय तेह ॥१७॥
पुत्रजन्म दिन सात वखाणी, पुत्री आठ दिवस वली जाणी।
पशु जन्मे जे घर मांय, तिण घर आठ पहर असज्झाय ॥१८॥
जंबुपण्णत्ती कल्प मंझार, दशा निसीथ सूत्र व्यवहार।
उत्तराध्ययन आदि कहवाय, तेहनो थोड़ो काल कहवाय ॥१९॥
पहिलो पहुर अने पाछलो, निसादिवस धुरिं लो छेहलो।
कालिकसूत्र कह्या जिनराय, भवियण! भणिज्यो मन उछाय ॥२०
शुक्ल पक्ष धुरि त्रिणें रात, पडिवा बीज तीज विख्यात।
पहिलो सांजि पहर ते टाली, कालिक सूत्र गुणोजे काली ॥२१॥
आदि नक्षत्र आद्रा रुयडो, चित्रा नक्षत्र जाणि छेहडो।
ते वरजीने शेषे काली, गाज बीज असज्झाइ टाली ॥२२॥
असज्झाय आगम कही, केतो प्रकरण हुँति लही।
उभय अक्षर जोइ अणुसार, संक्षेपे मैं कह्यो विचार ॥२३॥
सांझ प्रह प्रतिलेखउ काल, तारासु दिसि चार विशाल।
तेह विना ममकरो सज्झाय, जिन की आज्ञा ए कहवाय ॥२४॥
दया सहित जे क्रिया प्रधान, आज्ञा सहित आराधे ज्ञान।
सद्गुरु सेवा नित करो, जिम भवसायर लीला तरो ॥२५॥

॥ इति शुभम् ॥

पुस्तक समाप्त

---

१ दीवाली की असज्झाय किसी शास्त्र में नहीं तो भी कर्ता ने दीवाली की असज्झाय किस अभिप्राय से ली है यह बहुश्रुत जानें।

शुद्धि पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	४	प्रचारित्रधर्मं	चारित्रधर्मं
१०	५	पवननमाता	प्रवचन माता
१४	२०	अब्मुट्टियो	अब्भुट्ठिओ
२१	१६	वूंदू	वूंदों
२७	२५	दिट्ठि	दिट्ठ
२६	२४	चत-या	च-तथा
२८	२	मूर्या से	सूर्यों से
३०	३	स्वण	स्वर्ण
३१	८	मासियं	भासियं
३१	१६	नसि-इनष्ट होते हैं	नासेइ-नष्ट होते है
३३	१८	द्वप	द्वेप
४१	२४	नयकोर्टहि	नवकोडिहि
६३	१२	भावाच्चिए	भावच्चिए
७१	९	अवग्रहु	अवग्रह
७१	२६	दोप	दोप
७७	९	थ्रथवा	अथवा
७८	९	द्रध्य	द्रव्य
७९	१३	आलोजना	आलोचना
८०	१४	मुहुमो	सुहुमो
८१	१३	सम्पन्धी	सम्बन्धी
८२	११	देसिअ सव्व	देसिअं
८३	९	सम्पत्तस्स	सम्मत्त
८६	४	वंघ	बंध

परिशिष्ट—१

परिशिष्ट—२
विधियां

शुद्धि पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	४	प्रशारित्रधर्म	चारित्रधर्म
१०	५	पवनमाता	प्रवचन माता
१२	२०	अब्भुट्टियो	अब्भुट्ठिओ
२१	१६	मूंदूं	मूंदों
२४	२५	दिट्ठी	दिट्ठि
२६	२४	चत-या	च-तया
२८	३	मूर्यों से	मूर्यों मे
३०	३	स्वण	स्वर्ण
३१	८	मासियं	भासियं
३१	१६	नशि-इनष्ट होते हैं	नासेइ-नष्ट होते हैं
३३	१८	द्वप	द्वेप
५१	२४	नयकोडहि	नवकोडहि
६३	१२	भावाच्चिए	भावच्चिए
७१	९	अवग्रहु	अवग्रह
७१	२६	दोप	दोप
७७	९	श्रथवा	अथवा
७८	९	द्रष्य	द्रव्य
७९	१३	आलोजना	आलोचना
८०	१४	मुहुमो	सुहुमो
८१	१३	सम्पन्धी	सम्बन्धी
८२	११	देसिम सव्व	देसिअं सव्वं
८३	९	सम्यत्तस्स	सम्मत्तस्स
८६	४	वंघ	वंघ

शब्दार्थ

र हो
अरिहंत भगवन्तों को
द्ध भगवन्तों को
आचार्य महाराजों को
उपाध्याय महाराजों को
में (ढाई द्वीप में)
--सब साधुओं को

ारो– पांच नमस्कार
ो किया हुआ नमस्कार)

सव्व-पाव-प्पणासणो सब पापों
का नाश करने वाला
च और
सव्वेसिं सब
मंगलाणं मंगलों में
पढमं -पहला, मुख्य
हवइ—है
मगलं—मंगल

ार्थ – अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार हो। सिद्ध भगवन्तों को
र हो। आचार्य महाराजों को नमस्कार हो। उपाध्याय महाराजों
स्कार हो। ढाई द्वीप में वर्तमान सब साधुओं को नमस्कार हो।
व (परमेष्ठियों को किया हुआ) नमस्कार सब पापों (अशुभ
को नाश करने वाला तथा सब प्रकार के लौकिक-लोकोत्तर
में प्रथम (प्रधान-मुख्य) मंगल है।

इन पांच परमेष्ठियों के एक सौ आठ (१०८) गुण हैं, इसके लिये
है—

"बारस गुण अरिहंता, सिद्धा अट्ठेव सूरि छत्तीसं।
उवज्झाया पणवीसं, साहू सगवीस अट्ठसयं॥"

"अरिहन्त के बारह, सिद्ध के आठ, आचार्य के छत्तीस, उपाध्याय
पच्चीस और साधु के सत्ताईस गुण हैं। सब मिल कर पंचपरमेष्ठियों
के १०८ गुण है।" वे इस प्रकार हैं—

८६	७	भत-पाण-पुन्नोए	भत-पाण-पुन्नोए
८९	२	निग	नीग
८९	११	नीग	नीग
९०	२१	अणुन्नत	अणुव्रत
९१	१८	आदत्तादान	अदत्तादान
९४	२१	मोयरा	भोंयरा
९६	३	बुद्धी सद्द	बुद्धिसद्द
९६	७	पढमम्मि	पढमम्मि
९६	९	उड्ढं	उड्ढं
९८	२४	विसाविसयं	विसविसयं
९९	१३	अगार	अंगार
११७	८	हू	हु
११९	२	भंत्रों	मंत्रों
१२९	१२	सघस्स	संघस्स
१३६	१५	ताम्रलिप्त में	ताम्रलिप्ता में
१३७	१९	वह ां	वहां
१४२	३	ससार-सागर	संसार-सागर
१५६	१३	मह रउ वलु मद्दउ	मह रिउ वलुं मद्द
१८८	१६	श्री स्तम्भनक	श्री स्तम्भनक
१९०	६	सरल	सरस
१९७	१४	सम्यत्ति	सम्पत्ति
२०१	१	सत्त्वनाम्	सत्त्वानाम्
२०५	१९	शंतिपदं	शांतिपदं
२०८	१५	यहां रोगों	महारोगों
२०८	१८	पतगे	पतंगे
२१०	१३	कीपी	कीधी
२११	१७	[illegible]	

६. भामंडल—भगवान् के मुखमंडल के पीछे शरद् ऋतु के सूर्य-समान उग्र तेजस्वी भामंडल की रचना देवता करते हैं इस भामंडल में भगवान् का तेज संक्रमित होता है। यदि यह भामंडल न हो तो भगवान् का मुख दिखाई न दे, क्योंकि भगवान् का मुख इतना तेजस्वी होता है कि जिसके सामने कोई देख नहीं सकता।

७. दुंदुभि—भगवान् के समवसरण के समय देवता—देवदुंदुभि बजाते हैं। वे ऐसा सूचन करते हैं कि हे भव्य प्राणियो! तुम मोक्ष नगर के सार्थवाह तुल्य इन भगवान् की सेवा करो उन की शरण में जाओ।

८-छत्र—समवसरण में देवता भगवान के मस्तक के ऊपर शरदचन्द्र समान उज्ज्वल तथा मोतियों की मालाओं से सुशोभित ऊपरा-ऊपरी क्रमशः तीन-तीन छत्रों की रचना करते हैं। भगवान स्वयं समवसरण में पूर्व दिशा की तरफ़ मुख करके बैठते हैं और अन्य तीन (उत्तर, पश्चिम, दक्षिण) दिशाओं में देवता भगवान के ही प्रभाव से प्रतिबिंब रचकर स्थापन करते हैं। इस प्रकार चारों तरफ़ प्रभु विराजमान हैं ऐसा समवसरण में मालूम पड़ता है। चारों तरफ़ प्रभु पर तीन-तीन छत्रों की रचना होने से बारह छत्र होते हैं। अन्य समय मात्र प्रभु पर तीन छत्र ही होते हैं।

समवसरण न हो तब भी ये आठ प्रातिहार्य अवश्य होते हैं।

ये प्रातिहार्य भगवान को केवलज्ञान होने से लेकर निर्वाण समय-शरीर छोड़ने से पहले तक सदा साथ रहते हैं।

चार मूल अतिशय (उत्कृष्ट गुण)

१. अपायापगमातिशयः—अपाय अर्थात् उपद्रवों का; अपगम अर्थात् नाश। वे स्वाश्रयी और पराश्रयी दो प्रकार के हैं।

	४	छट्ठे-िकग्	छट्ठे-दिक्
	५	वचमे	वचने
	२	गन्धयं	गन्धर्व
	२४	वालू	वालू
	७	आयन	आसन
	९	गीमुख	गोमुख
	५	देदेन्द्र	देवेन्द्र
	१२	विविय रंगों	विविध रंगों
	२६	पच्छन्न-कालेर्ण	पच्छन्न कालेणं
	२२	सघ्वओ	सव्वओ
	९	मूर्य	सूर्य
	१	हा ता	हो ती
	१	दन	दिन
	३	अय	अर्थ
	२२	प्रमुखचौ की	प्रमुख में चौकी
	१९	अमिनय	अभिनय
	१८	विभ्रम	विभ्रम
	७	कुंदिदुज्ज	कुंदिदुज्जल
३	१३	च्छित्ता	च्छित्ती
७	१५	तिण्णु०हेवु	तिण्हुण्हंवु
९	३	भगयन्तों	भगवंतों
१	७	सुर-रमणीहि	सुर-रमणीहि
४	११	चडामणि	चूडामणि
८	१३	परिच्छड	परिच्छूड
८३	१	यिदीर्ण	विदीर्ण
८४	१५	ास	पास
८७	९	पर्श्वनाथ	पार्श्वनाथ

वसुदेव, बलदेव, चक्रवर्ती-देवता तथा इन्द्र गण इनको पूजते हैं अथ
इनको पूजने की अभिलाषा करते हैं।

१२. वचनातिशय—श्री तीर्थंकर भगवान की वाणी को देव, मनु
और तिर्यंच सब अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं। क्योंकि उनकी वाण
संस्कारादि गुण वाली होती है। यह वाणी पैंतीस गुणों वाली हो
है, सो ३५ गुण नीचे लिखते हैं -

१. सब स्थानों में समझी जाय। २. योजन प्रमाण भूमि में स
सुनाई दे। ३. प्रौढ़। ४. मेघ जैसी गंभीर। ५. स्पष्ट शब्दों वाली
६. संतोष देनेवाली। ७ सुननेवाला प्रत्येक प्राणी ऐसा जाने कि भगव
मुझे ही कहते हैं। ८. पुष्ट अर्थवाली। ९. पूर्वापर विरोध रहित
१०. महापुरुषों के योग्य। ११. संदेह रहित। १२. दूषणरहित अ
वाली। १३. कठिन और गहण विषय भी सरलतापूर्वक समझ में
जाय ऐसी। १४. जहाँ जैसा उचित हो वैसी बोली जाने वाली। १
छह द्रव्यों तथा नवतत्त्वों को पुष्ट करने वाली। १६. प्रयोजन सहित
१७. पद रचनावाली। १८. छह द्रव्य और नवतत्त्व की पटुतावाली
१९. मधुर। २०. दूसरों का मर्म न भेदाय ऐसी चातुर्यवाली। २
धर्म तथा अर्थ इन दो पुरुषार्थों को साधने वाली। २२. दीपक सम
अर्थ का प्रकाश करने वाली। २३. पर-निन्दा और आत्मश्लाघा रहित
२४. कर्त्ता, कर्म, क्रियापद, काल और विभक्ति वाली। २५. श्रोता
आश्चर्य उत्पन्न करे ऐसी। २६. सुनने वाले को ऐसा स्पष्ट भान
जाय कि वक्ता सर्व-गुण-सम्पन्न है। २७. धैर्यवाली। २८. वि
रहित। २९. भ्रांति रहित। ३०. सब प्राणी अपनी-अपनी भाषा
समझें ऐसी। ३१. अच्छी बुद्धि उत्पन्न करे ऐसी। ३२. पद के, शब्द
अनेक अर्थ हों ऐसे शब्दों वाली। ३३. साहसिक गुणवाली। ३४.
रुक्ति दोष रहित। ३५. सुननेवाले को खेद न उपजे ऐसी।

सिद्ध भगवान में ऐसी स्वाभाविक शक्ति रहती है कि जिससे चाहें तो अलोक और लोक को लोक कर सकें। परन्तु सिद्ध भगवान ने भूत काल में कदापि ऐसा वीर्य स्फोट (शक्ति का प्रयोग) किया नहीं, वर्तमान में करते नहीं और भविष्य में कदापि करेंगे भी नहीं। क्योंकि उनको पुद्गल के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। इस अनन्त वीर्य गुण से वे अपने आत्मिक गुणों को जिस स्वरूप में है वैसे ही स्वरूप में अवस्थित रखते हैं। इन गुणों में परिवर्तन नहीं होने देते।

आचार्य जी के छत्तीस गुण

जो पांच आचार को स्वयं पालें और अन्य को पलावें तथा धर्म के नायक हैं, श्रमण-संघ में राजा समान हैं उनको 'आचार्य' कहते हैं। आचार्य महाराज के छत्तीस गुण होते हैं :—

१ से ५—पांच इन्द्रियों के विकारों को रोकने वाले अर्थात् (१) स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा-शरीर) (२) रसनेन्द्रिय (जीभ) (३) घ्राणेन्द्रिय (नाक), (४) नेत्रेन्द्रिय (आंखें), और श्रोत्रेन्द्रिय (कान), इन पांच इन्द्रियों के २३ विषयों में अनुकूल पर राग और प्रतिकूल पर द्वेष न करें।

६ से १४—ब्रह्मचर्य की नव गुप्तियों को धारण करने वाले अर्थात् शियल (ब्रह्मचर्य) की रक्षा के उपायों को सावधानी से पालन करने वाले जैसे कि—(१) जहां स्त्री, पशु अथवा नपुंसक का निवास हो वहां न रहे। (२) स्त्री के साथ राग पूर्वक बातचीत न करे (३) जहां स्त्री बैठी हो उस आसन पर न बैठे, उसे उठकर चले जाने के बाद भी दो घड़ी तक न बैठे। (४) स्त्री के अंगोपांग को रागपूर्वक न देखे। (५) जहां स्त्री-पुरुष शयन करते हों अथवा काम-भोग की बातें करते हों वहां दीवार अथवा पर्दे के पीछे सुनने अथवा देखने के लिए न रहे (६) ब्रह्मचर्य व्रत लेने पर साधु होने से पहले की हुई काम-क्रीड़ा को,

[illegible]

[illegible]

(१) ईर्यासमिति — [illegible] आगे साढ़े तीन हाथ भूमि [illegible] देखकर चले। (२) भाषा समिति — निरवद्य-पापरहित और किसी जीव को दुःख न हो ऐसा वचन बोले। (३) एषणा समिति — अन्न, पान, [illegible] आदि [illegible] पूर्वक और निर्दोष ग्रहण करे। (४) आदान और भाण्ड निक्षेपण समिति — जीवों की रक्षा के लिये वस्त्र-पात्र आदि यतना पूर्वक ग्रहण करना और यतना से रखना। (५) पारिष्ठापनिका समिति — जीव रक्षा के लिए यतना पूर्वक मल, मूत्र, श्लेष्म आदि शुद्ध भूमि में परठे। इस प्रकार पांच समिति का पालन करे।

तीन गुप्ति —(१) मन गुप्ति—पाप कार्य के विचारों से मन को रोके अर्थात् आर्तध्यान रौद्रध्यान न करे। (२) वचन गुप्ति—दूसरों को दुःख हो ऐसा दूषित वचन नहीं बोले, निर्दोष वचन भी बिना कारण न बोले। (३) काय गुप्ति — शरीर को पाप कार्य से रोके, शरीर को बिना प्रमार्जन किये न हलावे-चलावे।

यह आचार्य के छत्तीस गुणों का संक्षिप्त वर्णन किया है।

उपाध्याय जी के पच्चीस गुण

जो स्वयं सिद्धान्त पढ़े तथा दूसरों को पढ़ावे और पच्चीस गुण

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः

खरतरगच्छीय

श्री पंचप्रतिक्रमण-सूत्र

(अर्थ सहित)

[1]नवकार (नमस्कार) सूत्र

णमो अरिहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्व-साहूणं।
एसो पंच-नमुक्कारो, सव्व-पाव-प्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥१॥

पद ९, संपदा ८, गुरु ७, लघु ६१, सर्व वर्ण ६८

१. इस सूत्र में अरिहन्त और सिद्ध इन दो प्रकार के देव को तथा ...ार्य, उपाध्याय और साधु इन तीन प्रकार के गुरु को नमस्कार किया ...े पांच परमेष्ठी परमपूज्य हैं।

२. क्रोध, मान परिहरूँ।
(ये दो बोल बाईं भुजा के पीछे पडिलेहन समय चिंतन करना)

२. माया, लोभ परिहरूँ।
(ये दो बोल दाहिनी भुजा के पीछे पडिलेहन समय चिंतन करना)

३. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय की रक्षा करूँ।
(ये तीन बोल चरवले से बाँयें पैर पर पडिलेहन के समय चिंतन करना)

३. वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय की यतना करूँ।
(ये तीन बोल चरवले से दाएं पैर पर पडिलेहन के समय चिंतन करना)

(नोट) पुरुषों को ये शरीर पडिलेहन के पचीस बोल ही कहने चाहियें, परन्तु स्त्रियों को तीन लेश्या, तीन शल्य और चार कषाय इन दस बोलों के सिवाय पंदरह ही कहने चाहिये। ये सब बोल मन में ही चिंतन करना चाहिये बोलना नहीं। क्योंकि सामायिक में बोलते समय मुंहपत्ति मुख के आगे रखकर बोलना चाहिए पर पडिलेहन करते समय मुंहपत्ति मुख के आगे नहीं रखी जा सकती।

८. सामायिक (करेमिभंते) सूत्र

करेमि भंते ! सामाइयं[1], सावज्जं जोगं पच्चक्खामि। जाव नियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं,

---

१. सम अर्थात् मध्यस्थभाव का, आय अर्थात् लाभ जिसमें हो उसे सामायिक कहते हैं। अथवा सम अर्थात् समान भाव—सब जीवों को मित्रवत मानने रूप, आय अर्थात्—लाभ जिसमें हो उसे सामायिक कहते हैं। अथवा—सम समान है मोक्ष की साधना के प्रति सामर्थ्य जिनका ऐसे ज्ञान-दर्शन चारित्र का, आय—लाभ है जिसमें उसे सामायिक कहते हैं।

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः

खरतरगच्छीय

श्री पंचप्रतिक्रमण-सूत्र

(अर्थ सहित)

[1]नवकार (नमस्कार) सूत्र

णमो अरिहंताणं । णमो सिद्धाणं । णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्व-साहूणं ।
एसो पंच-नमुक्कारो, सव्व-पाव-प्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥१॥

पद ९, संपदा ८, गुरु ७, लघु ६१, सर्व वर्ण ६८

---

१. इस सूत्र में अरिहन्त और सिद्ध इन दो प्रकार के देव को तथा आचार्य, उपाध्याय और साधु इन तीन प्रकार के गुरु को नमस्कार किया है ये पांच परमेष्ठी परमपूज्य हैं ।

अरि+हन्त=अरिहन्त=अरि अर्थात् रागद्वेष आदि अभ्यंतर शत्रुओं को हंत अर्थात् हनन करने वाले। इनका दूसरा नाम जिन है। जिन का अर्थ है जीतने वाले। अर्थात् रागद्वेष को जीत कर कर्म शत्रुओं का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त करने वाले अरिहंत कहलाते हैं। केवल ज्ञान पाकर भव्य जीवों को प्रतिबोध देते हैं और प्रतिबोध देने के लिये विचरते हैं। भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं इसलिये तीर्थंकर भी कहे जाते हैं।

अरिहन्त भगवान के १२ गुण

(१) अरिहन्त के आठ प्रातिहार्य तथा चार मूल अतिशय कुल बारह गुण इस प्रकार हैं :

आठ प्रातिहार्य

१. अशोक वृक्ष जहाँ भगवान् का समवसरण रचा जाता है, वहाँ उनकी देह से बारह गुणा बड़ा अशोक वृक्ष (आसोपालव के वृक्ष) की रचना देवता करते हैं उसके नीचे भगवान् बैठकर देशना (उपदेश) देते हैं।

२. सुरपुष्पवृष्टि—एक योजन प्रमाण समवसरण की भूमि में देव सुगन्धित पंचवर्ण वाले सचित पुष्पों की घुटनों प्रमाण वृष्टि करते हैं। वे पुष्प जल तथा स्थल में उत्पन्न होते हैं और भगवान् के अतिशय से उनके जीवों को किसी प्रकार की बाधा-पीड़ा नहीं होती।

३. दिव्य-ध्वनि—भगवान् की वाणी को देवता मालकोश राग, वीणा, बंसी आदि से स्वर पूरते हैं।

स्वाश्रयी दो प्रकार के हैं—द्रव्य से तथा भाव से। द्रव्य से स्वाश्रयी अपाय अर्थात् सब प्रकार के रोग—अरिहंत भगवान को सब प्रकार के रोगों का क्षय हो जाता है, वे सदा स्वस्थ रहते हैं। भाव से स्वाश्रयी अपाय—अर्थात् अठारह प्रकार के अभ्यंतर दोषों का भी सर्वथा नाश हो जाता है। वे १८ दोष ये हैं—

१. दानान्तराय, २. लाभान्तराय, ३. भोगांतराय, ४. उपयोगांतराय, ५. वीर्यान्तराय (अन्तराय कर्म के क्षय हो जाने से ये पांचों दोष नहीं रहते) ६. हास्य, ७. रति, ८. अरति, ९. शोक, १०. भय, ११. जुगुप्सा (चारित्र मोहनीय की हास्यादि छह कर्म प्रकृतियों के क्षय हो जाने से ये छह दोष नहीं रहते), १२. काम (स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद-चारित्र मोहनीय की ये तीन कर्म प्रकृतियां क्षय हो जाने से काम-विकार का सर्वथा अभाव हो जाता है) १३. मिथ्यात्व (दर्शन मोहनीय कर्म प्रकृति के क्षय हो जाने से मिथ्यात्व नहीं रहता), १४. अज्ञान (ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय हो जाने से अज्ञान का अभाव हो जाता है) १५. निद्रा (दर्शनावरणीय कर्म के क्षय होने से निद्रा-दोष का अभाव हो जाता है), १६. अविरति (चारित्र मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाने से अविरति दोष का अभाव हो जाता है) १७. राग, १८ द्वेष, (चारित्र मोहनीय कर्म में कषाय के क्षय होने से ये दोनों दोष नहीं रहते)।

पराश्रयी अपाय अपगम अतिशय—जिससे दूसरों के उपद्रव नाश हो जावें अर्थात्—जहाँ भगवान विचरते हैं वहाँ प्रत्येक दिशा में मिलाकर सवासौ योजन तक प्रायः रोग, मरी, वैर, अवृष्टि, अतिवृष्टि, आदि नहीं होते।

१०. **ज्ञानातिशय**—भगवान केवलज्ञान द्वारा सब लोकालोक का संपूर्ण स्वरूप जानते हैं।

सिद्ध भगवान के आठ गुण

जिन्होंने आठ कर्मों का सर्वथा क्षय कर लिया है और मोक्ष प्राप्त कर लिया है। जन्ममरण रहित हो गये हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं। इनके आठ गुण हैं—

१. अनन्तज्ञान—ज्ञानावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से केवल ज्ञान प्राप्त होता है, इससे सब लोकालोक का स्वरूप जानते हैं।

२. अनन्त दर्शन—दर्शनावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय हो जा से केवलदर्शन प्राप्त होता है। इससे लोकालोक के स्वरूप को देखते हैं

३. अव्याबाध सुख—वेदनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से स प्रकार की पीड़ा रहित निरुपाधिपना प्राप्त होता है।

४. अनन्त चारित्र—मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से यह गु प्राप्त होता है। इसमें क्षायिक सम्यक्त्व और यथाख्यात चारित्र का समावे होता है; इससे सिद्ध भगवान आत्मस्वभाव में सदा अवस्थित रहते हैं यही यही चारित्र है।

५. अक्षय स्थिति—आयुष्य कर्म के क्षय होने से कभी नाश न ह (जन्म-मरण रहित) ऐसी अनंत स्थिति प्राप्त होती है। सिद्ध की स्थि की आदि है मगर अन्त नहीं है, इससे सादि अनन्त कहे जाते हैं।

६. अरूपिपन—नामकर्म के क्षय होने से वर्ण, गंध, रस तथा स्प रहित होते हैं, क्योंकि शरीर हो तभी वर्णादि होते हैं। मगर सिद्ध क शरीर नहीं है इससे अरूपी होते हैं।

७. अगुरुलघु—गोत्र कर्म के क्षय होने से यह गुण प्राप्त होता है इससे भारी-हल्का अथवा ऊंच-नीच का व्यवहार नहीं रहता।

८. अनन्तवीर्य—अंतराय कर्म का क्षय होने से अनन्तदान, लाभ, अन

वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥
एवं मए अभिथुआ, विहुय-रय-मला पहीण-जर-मरणा ।
चऊवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥
कित्तिय-वंदिय-महिया, जे ए लोगस्सउत्तमा सिद्धा ।
आरुग्ग-बोहि-लाभं, समाहिवरमुत्तमं दितु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

पद २८ संपदा २८ गुरु २७ लघु २२९ सर्व वर्ण २५६

शब्दार्थ

लोगस्स—लोक में, चौदह राज लोक में
उज्जोअगरे—उद्योत-प्रकाश करने वालों को
धम्मतित्थयरे—धर्मरूप तीर्थ के स्थापन करने वालों को
जिणे—जिनों को, राग-द्वेष को जीतने वालों को
अरिहंते—अरिहन्तों को, त्रिलोक पूज्यों को
कित्तइस्सं—मैं स्तुति करूंगा
चउवीसंपि—चौबीसों
केवली—केवल ज्ञानियों की
उसभं—१-श्री ऋषभदेव को
च—था

अजिअ—२-श्री अजितनाथ को
वंदे—वन्दन करता हूँ
संभव—३-श्री संभवनाथ को
अभिणंदण—४-श्री अभिनन्दननाथ को
च—तथा
सुमइं च—५-श्री सुमति नाथ स्वामी को तथा
पउमप्पहं—६-श्री पद्मप्रभ को
सुपासं—७-श्री सुपार्श्वनाथ को
जिणं च—तथा रागद्वेष को जीतने वाले
चंदप्पहं—८-श्री चन्द्रप्रभ को
वंदे—वन्दन करता हूँ
सुविहिं च—९-श्री सुविधिनाथ

विषय भोगों की याद न करे। (७) रस पूर्ण आहार न करे। (८) भोजन आहार करे पर भूख से अधिक न खाए। (९) शरीर की शोभा-शृंगार-विभूषा न करे।

१५ से १८—चार कषायों का त्याग करने वाले। संसार की परम्परा जिससे बढ़े उसे कषाय कहते हैं। कषाय के चार भेद हैं—क्रोध (गुस्सा), मान (अभिमान), माया (कपट) और लोभ (लालच)।

१९ से २३—पाँच महाव्रतों को पालने वाले। महाव्रत बड़े व्रत को कहते हैं जो पालने में बहुत कठिन हैं। महाव्रत पांच हैं—(१) प्राणातिपात विरमण अर्थात् कोई जीव वध न करना (२) मृषावाद विरमण अर्थात् चाहे जितना भी कष्ट सहन करना पड़े तो भी असत्य वचन नहीं बोलना। (३) अदत्तादान विरमण - मालिक के दिये बिना साधारण अथवा मूल्यवान कोई भी वस्तु ग्रहण न करना। (४) मैथुन विरमण—मन, वचन और काया से ब्रह्मचर्य का पालन करना। (५) परिग्रह विरमण - कोई भी वस्तु का संग्रह न करना। वस्त्र, पात्र, धर्मध्वज, ओघा आदि संयम पालनार्थ उपकरण आदि जो-जो वस्तुएं अपने पास हों उन पर भी मोह-ममता नहीं रखना।

२४ से २८—पाँच प्रकार के आचारों का पालन करने वाले। पांच आचार ये हैं—(१) ज्ञानाचार-ज्ञान पढ़े और पढ़ावे, लिखे और लिखावे, ज्ञानभंडार करे और करावे तथा ज्ञान प्राप्त करने वालों को सहयोग दे। (२) दर्शनाचार-शुद्ध सम्यक्त्व को पाले और अन्य को सम्यक्त्व उपार्जन करावे। सम्यक्त्व से पतित होने वालों को समझा बुझाकर स्थिर करे। (३) चारित्राचार—स्वयं शुद्ध चारित्र को पाले, अन्य को चारित्र में दृढ़ करे और पालने वाले की अनुमोदना करे।

चौबीस तीर्थङ्करोंके लांछन आदिका कोष्टक

लाञ्छन	शरीर-प्रमाण	वर्ण	आयु
बैल	५०० धनुष	सुवर्ण	८४ लाख पूर्व
हाथी	४५० धनुष	सुवर्ण	७२ लाख पूर्व
घोड़ा	४०० धनुष	सुवर्ण	६० लाख पूर्व
बन्दर	३५० धनुष	सुवर्ण	५० लाख पूर्व
क्रौंच	३०० धनुष	सुवर्ण	४० लाख पूर्व
पद्म	२५० धनुष	लाल	३० लाख पूर्व
स्वस्तिक	२०० धनुष	सुवर्ण	२० लाख पूर्व
चन्द्र	१५० धनुष	सफेद	१० लाख पूर्व
मगर	१०० धनुष	सफेद	२ लाख पूर्व
श्रीवत्स	९० धनुष	सुवर्ण	१ लाख पूर्व
गेंडा	८० धनुष	सुवर्ण	८४ लाख वर्ष
भैंसा	७० धनुष	लाल	७२ लाख वर्ष
सूअर	६० धनुष	सुवर्ण	६० लाख वर्ष
बाज	५० धनुष	सुवर्ण	३० लाख वर्ष
वज्र	४५ धनुष	सुवर्ण	१० लाख वर्ष
हरिण	४० धनुष	सुवर्ण	१ लाख वर्ष
बकरा	३५ धनुष	सुवर्ण	९५ हजार वर्ष
नन्दावर्त्त	३० धनुष	सुवर्ण	८४ हजार वर्ष
कुम्भ	२५ धनुष	नीला	५५ हजार वर्ष
कछुआ	२० धनुष	काला	३० हजार वर्ष
नीलकमल	१५ धनुष	सुवर्ण	१० हजार वर्ष
सङ्ख	१० धनुष	काला	१ हजार वर्ष
साँप	९ हाथ	नीला	१०० वर्ष
सिंह	७ हाथ	सुवर्ण	७२ वर्ष

युक्त हो उसे उपाध्याय कहते हैं। साधुओं में आचार्य जी राजा समान हैं और उपाध्याय जी प्रधान के समान है। उपाध्याय जी के पच्चीस गुण इस प्रकार हैं:—

११ अंगों तथा १२ उपांगों को पढ़े और पढ़ावें। १. चरण सित्तरि को और १. करण सित्तरी को पालें।

१ से ११ अंग—(१) आयारांग, (२) सूयगडांग, (३) ठाणांग, (४) समवायांग, (५) विवाह-पण्णत्ति, (६) णायाधम्मकहा, (७) उवासगदसांग, (८) अंतगड़, (९) अणुत्तरोववाई, (१०) प्रश्न व्याकरण, (११) विवाय। ये ग्यारह अंग।

१२ से २३ उपांग—(१२) उववाई, (१३) रायपसेणी, (१४) जीवाभिगम, (१५) पन्नवणा (१६) जंबूदीव पण्णत्ति, (१७) चंद-पण्णत्ति (१८) सूरपण्णत्ति, (१९) कप्पिया, (२०) कप्पविडिंसिया, (२१) पुप्फिया, (२२) पुप्फचूलिया और (२३) वह्निदसांग—ये बारह उपांग पढ़ें और पढ़ावें। (२४) चरण सित्तरि और (२५) करण सित्तरि को पालें। इस प्रकार उपाध्यायजी के पच्चीस गुण होते हैं।

साधु महाराज के २७ गुण

जो मोक्षमार्ग को साधने का यत्न करे, सर्वविरति चारित्र लेकर सत्ताईस गुण युक्त हों, उसे साधु कहते हैं। साधु महाराज के २७ गुण ये हैं:—

१ से ६—(१) प्राणातिपात-विरमण, (२) मृषावाद-विरमण, (३) अदत्तादान-विरमण, (४) मैथुन-विरमण, (५) और परिग्रह-विरमण; ये पांच महाव्रत तथा (६) रात्रि भोजन का त्याग—इन छह व्रतों का पालन करे।

७ से १२—७ पृथ्वीकाय, (८) [illegible]

नाणमाइण — [illegible]	[illegible]
इडमणो — [illegible]	कारण [illegible]
मुडमणो — [illegible]	[illegible]
किंचिम — [illegible]	सामाइय [illegible]
मित्त पि — मात्र भी	पोसह [illegible]
संभरइ — याद कर सकता है	(देसावगासिय) [illegible]
जीवो — जीव	[illegible]
जं — जो	जीवस्स [illegible]
च — और	जाइ [illegible]
न — नहीं	जो — जो
संभरामि — मैं स्मरण कर सकता हूं	कालो — समय
मिच्छा-मि — मेरा मिथ्या हो	सो — वह
दुक्कड — पाप	सफलो — सफल
तस्स — उसका	बोधव्वो — जानना चाहिये
मणेण-चिंतियं — मन से चिन्तन किया हो	सेसो — बाकी का समय
असुहं — अशुभ	संसार — संसार के
वायाइ-भासियं — वचन से बोला हो	फलहेउ — फल का कारण है

अर्थ - हे भगवन् ! दशार्णभद्र, सुदर्शन, स्थूलिभद्र और व स्वामी ने घर का त्याग (साधु दीक्षा) वास्तव में सफल किया है साधु इन के समान होते हैं ॥१॥

ऐसे साधुओं को वन्दन करने से निश्चय ही पापकर्म नष्ट होते शंका रहित भाव की प्राप्ति होती है, मुनिराजों को शुद्ध आहार अ देने से निर्जरा होती है, तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र सम्बन्धी अभिग्रह ... प्राप्ति होती है ॥२॥

घाति कर्म सहित छद्मस्थ मूढ मन वाला यह जीव किंचित् मात्र स्मरण

उं, खामेमि देवसिअं (खामेमि राइयं[3]) ।

जं किंचि अपत्तिअं, परपत्तिअं भत्ते, पाणे, विणए, वच्चे, आलावे, संलावे, उच्चासणे, समासणे, रभासाए, उवरिभासाए ।

जं किंचि मज्झ विणय-परिहिणं सुहुमं वा वायरं तुब्भे जाणह, अहं न जाणामि, तस्स मिच्छा मि कडं ।

गुरु १५, लघु १११, सर्व वर्ण १२६ ।

शब्दार्थ

इच्छाकारेण संदिसह इच्छापूर्वक आज्ञा प्रदान करें ।
वन् हे गुरु महाराज !
भुट्ठिओऽहं मैं उपस्थित हुआ हूँ ।
अभिंतर-देवसिअं – दिन में किये हुए अतिचारों को ।
अभिंतर-राइअं) – रात में किये हुए अतिचारों को ।
मेउं—खमाने के लिये । क्षमा मांगने के लिये ।
इच्छं—चाहता हूँ । आपकी आज्ञा प्रमाण है ।
खामेमि—मैं क्षमा मांगता हूँ-खमाता हूँ ।
देवसिअं दिवस सम्बन्धी अतिचार
जं किंचि—जो कुछ ।
अपत्तिअं—अप्रीतिकारक
परपत्तिअं – विशेष अप्रीतिकारक ।
भत्ते आहार में ।
पाणे पानी में ।
विणये—विनय में ।
वेयावच्चे-वैयावृत्यमें, सेवा सुश्रूपामें
आलावे—बोलने में ।

इयं खामेउं' कहें । ३. शाम को 'खामेमि देवसिअं' प्रातःकाल, 'खामेमि

था उसकी पत्नी का नाम अर्हद्दासी था। दोनों दृढ़ जैन धर्मी थे। इनके एक पुत्र था उसका नाम सुदर्शन था। सुदर्शन की पत्नी मनोरमा थी। ये दोनों सम्यक्त्व सहित बारह व्रतधारी दृढ़ श्रावक धर्मी थे।

कपिला नामक एक स्त्री जो सुदर्शन के मित्र की पत्नी थी, सुदर्शन पर मोहित हो गई। इसने कपट से सुदर्शन को एकान्त में बुलाकर अपने साथ विषयभोग भोगने के लिये अत्यन्त आग्रह किया। सुदर्शन ने अपने आपको नपुंसक बतलाकर इससे पीछा छुड़ाया।

एकदा सुदर्शन सेठ के अत्यन्त सुन्दर छह पुत्रों को राजमहल के पास से जाते हुए देखकर कपिला ने राजा की अभया नामक रानी से पूछा कि ये अत्यन्त रूपवान बालक किसके हैं? अभया ने उत्तर दिया, "ये सुदर्शन सेठ के पुत्र हैं।" कपिला ने कहा—"वह तो अपने आप को नपुंसक कहता है।" अतः यदि तुम उसे अपने वश में करलो तो तुम्हारी चतुराई जानूं।

रानी ने कहा—"यह कौनसी बड़ी बात है, मैं इसे अपने वश में अवश्य कर दिखलाऊँगी।"

एक दिन सारे नगरवासी उत्सव मनाने के लिये उद्यान में गये पर अभया रानी सिरदर्द का बहाना बनाकर अपने महल में रही। पर्व दिन होने के कारण इस दिन सेठ सुदर्शन अपने घर पर पौषध में काउस्सग्ग-ध्यान में तल्लीन था। रानी ने उसे अपने अन्तःपुर में ले आने के लिये एक उपाय किया। इसने अपनी पंडिता नाम की दासी को कहा कि रथ में यक्ष की मूर्ति बिठलाकर देवमंदिर में ले जाओ और उस मूर्ति को मंदिर में रखकर खाली रथ में सेठ को उठवा कर मेरे पास ले आओ।

पौषध में रहे हुए काउस्सग्ग में तल्लीन सेठ को रथ में डालकर दासी अन्तःपुर में ले आई। रानी ने अनेक चेष्टाएं कीं, अनेक प्रलोभन दिये, धमकियां भी दीं पर सेठ अपने व्रत में दृढ़ रहा। जब रानी का कोई बस

शब्दार्थ

इच्छं—चाहता हूँ, आपकी यह आज्ञा स्वीकृत करता हूँ
इच्छामि—चाहता हूँ, अन्तःकरण की भावनापूर्वक प्रारम्भ करता हूँ
पडिक्कमिउं—प्रतिक्रमण करने को
इरियावहियाए—ईर्यापथ-संबंधिनी क्रिया से लगे हुए अतिचार से, मार्ग में चलते समय हुई जीव-विराधना का
विराहणाए—विराधना-दोष
गमणागमणे—आने जाने में
पाण-क्कमणे—प्राणियों को दबाने से
बीय-क्कमणे—बीजों को दबाने से
हरिय-क्कमणे—हरी वनस्पति को दबाने से
ओसा—ओस की बूंद को
उत्तिंग—चींटियों के बिलों को
पणग—पांच वर्ण की काई (नील फूल)
दग—पानी
मट्टी—मिट्टी
दग-मट्टी—कीचड़
मक्कडा-संताणा—मकड़ी के जाले आदि को
संकमणे—खूंद व कुचलकर
जे जीवा—जो प्राणी, जो जीव
मे विराहिया—मुझ से पीड़ित दुःखित हुए हों
एगिंदिया—एक इन्द्रिय वाले जीव
बेइंदिया—दो इन्द्रियोंवाले जीव
तेइंदिया—तीन इन्द्रियोंवाले जीव
चउरिंदिया—चार इन्द्रियों वाले जीव
पंचिंदिया—पांच इन्द्रियोंवाले जीव
अभिहया—पांव से मरे हों, ठोकर से मरे हों
वत्तिया—धूल से ढके हों
लेसिया—आपस में अथवा जमीन पर मसले हों
संघाइया—इकट्ठे किये हों, परस्पर शरीर द्वारा टकराये हों।
संघट्टिया—छुआ हो
परियाविया—कष्ट पहुँचाया हो
किलामिया—थकाया हो
उद्दविया—भयभीत किया हो
ठाणाओ ठाणं—एक स्थान से दूसरे स्थान पर
संकामिया—रखे हों
जीवियाओ ववरोविया—प्राणों से रहित किया हो
तस्स—उन सब अतिचारों का
मिच्छा मि दुक्कडं—पाप- मेरे लिये मिथ्

अट्ठावीस सहस्सा—अट्ठाइस हजार
अट्ठासीया—अट्ठासी
पडिमा—प्रतिमाओं को

भावार्थ—शत्रुंजय पर्वत पर प्रतिष्ठित हे श्री ऋषभदेव प्रभो ! आपकी जय हो। श्री गिरनार पर्वत पर विराजमान हे नेमिनाथ भगवन ! आपकी जय हो। साचोर नगर के भूषणरूप हे श्री महावीर प्रभो ! आपकी जय हो। भरुच में रहे हुए हे मुनिसुव्रत स्वामी ! आपकी जय हो। टिंटोई गांव अथवा मथुरा में विराजित हे पार्श्वनाथ प्रभो ! आपकी जय हो। ये पांचों जिनेश्वर दुःखों तथा पापों का नाश करनेवाले हैं। पांचों महाविदेह में विद्यमान जो तीर्थंकर हैं एवं चार दिशाओं तथा चार विदिशाओं में अतीतकाल, अनागतकाल और वर्तमानकाल संबन्धि जो कोई भी तीर्थंकर हैं उन सबको मैं वन्दन करता हूं। वे सब दुःखों और पापों का नाश करने वाले हैं।

सब कर्मभूमियों में (जिन भूमियों में असि, मसी, कृषिरूप कर्म होते हैं। ऐसे पांच भरत, पांच ऐरवत, और पांच महाविदेह क्षेत्र में [illegible] प्रत्येक में बत्तीस-बत्तीस विजय होने से कुल १६० विजय हैं; कुल मिलाकर ५ भरत, ५ ऐरवत तथा पांच महाविदेहों के १६० विजय = [illegible] १७० कर्म भूमियों में) प्रथम संघयण (वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन) [illegible] १७० तीर्थंकरों की संख्या पायी जाती है। सामान्य

शब्दार्थ

तस्स — उस पाप की	विसल्ली-करणेणं — शल्य रहित करने के लिए
उत्तरी-करणेणं — विशेष शुद्धि के लिए	पावाणं — पाप
पायच्छित्त-करणेणं — प्रायश्चित्त करने के लिए	कम्माणं — कर्मों को
विसोहीकरणेणं — आत्मा के परिणामों की विशेष शुद्धि करने के लिए	निग्घायणट्ठाए — नाश करने के लिए
	काउस्सग्गं — कायोत्सर्ग
	ठामि — मैं करता हूँ

भावार्थ — ईर्यापथिकी क्रिया में पाप-मल लगने के कारण आत्मा मलिन हुआ, उसकी शुद्धि मैंने 'मिच्छा मि दुक्कडं' द्वारा की है। तो भी आत्मा के परिणाम पूर्ण शुद्ध न होने से वह अधिक निर्मल न हुआ हो तो उसको अधिक निर्मल बनाने के लिए उस पर बार-बार अच्छे संस्कार डालने चाहिए। इसके लिए प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। प्रायश्चित्त भी परिणाम की विशुद्धि के सिवाय नहीं हो सकता, इसलिये परिणाम विशुद्धि आवश्यक है। परिणाम की विशुद्धता के लिये शल्यों का त्याग करना जरूरी है। शल्यों का त्याग और अन्य सब पाप कर्मों का नाश काउस्सग्ग से ही हो सकता है इसलिए मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

११. अन्नत्थ ऊससिएणं सूत्र

अन्नत्थ ऊससिएणं नीससिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डूएणं वाय-निसग्गेणं, भमलीए पित्तमुच्छाए,

सुहुमेहिं अंग-संचालेहिं सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठि-संचालेहिं; एवमाइएहिं आग

उत्तम चक्रवर्तियों को

अप्पडिहय-वर-नाण-दसण-धराणं—जो नष्ट न हो ऐसे श्रेष्ठ केवल ज्ञान तथा केवलदर्शन को धारण करने वालों को

वियट्ट-छउमाणं—घाती कर्मों से रहित होने से जिनकी छद्मस्थावस्था चली गई है उनको। छद्मस्थता से रहितों को

जिणाणं जावयाणं—स्वयं राग-द्वेष जीतने वालों को और दूसरों को राग-द्वेष जिताने वालों को। जो स्वयं जिन बने हैं तथा दूसरों को भी जिन बनाने वालों को

तिन्नाणं तारयाणं—स्वयं संसार समुद्र से पार हो गये हैं तथा दूसरों को भी पार पहुँचाने वालों को

बुद्धाणं बोहयाणं—स्वयं बुद्ध हैं और दूसरों को भी बोध देने वालों को

मुत्ताणं मोअगाणं—स्वयं मुक्त हैं और दूसरों को मुक्त कराने वालों को

सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं—सर्वज्ञों को, सर्वदर्शियों को

[illegible] उपद्रवों से रहित

[illegible], स्थिर

अरुअं—रोग रहित, व्याधि और वेदना रहित

अणंतं—अन्त रहित

अक्खयं—क्षय रहित

अव्वाबाहं—कर्म जन्य बाधा पीड़ाओं से रहित

अपुणराविति—जहाँ जाने के बाद वापिस आना नहीं रहता ऐसा

सिद्धिगइ-नामधेयं—सिद्धि गति नाम वाले

ठाणं—स्थान को, मोक्ष को

संपत्ताणं—प्राप्त किये हुओं को

नमो—नमस्कार हो

जिणाणं—जिनों को

जिअ-भयाणं—भय जीतने वालों को

जे—जो

अ—और

अईआ—भूतकाल में, अतीतकाल में

सिद्धा—सिद्ध हुए हैं

भविस्संति—होंगे

अणागए—भविष्य

काले—काल में

संपइ—वर्तमान काल में

अ—तथा

वट्टमाणा—विद्यमान हैं

सव्वे—उन सब को

तिविहेण—त्रिविध, मन-वचन-काया से

वंदामि—मैं वंदन करता हूँ

भावार्थ —अब मैं कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा करता हूँ, उसमें नीचे लिखे आगारों (अपवादों) के सिवाय दूसरे किसी भी कारण से मैं इस कायोत्सर्ग का भंग नहीं करूँगा। ये आगार ये हैं—श्वास लेने से, श्वास छोड़ने से, खांसी आने से, छींक आने से, जम्हाई आने से, डकार आने से, अपान वायु सरने से, चक्कर आने से, पित्त विकार के कारण मूर्च्छा आने से, सूक्ष्म अंग संचार होने से, सूक्ष्म रीति से शरीर में कफ तथा वायु का संचार होने से, सूक्ष्म दृष्टि-संचार (नेत्र-स्फुरण आदि) होने से (ये तथा इन के सदृश अन्य क्रियाएं जो स्वयमेव हुआ करती है और जिनको रोकने से अशांति का संभव है) (इनके सिवाय अग्नि स्पर्श, शरीर छेदन अथवा सम्मुख होता हुआ पचेन्द्रिय वध, चोर अथवा राजा के कारण, सर्प दश के भय से) ये कारण उपस्थित होने से जो काय व्यापार हो उससे मेरा कायोत्सर्ग भंग न हो, ऐसे ज्ञान तथा सावधानी के साथ खड़ा रहकर वाणी-व्यापार सर्वथा बन्द करता हूँ तथा चित्त को ध्यान में जोड़ता हूँ और जब तक 'णमो अरिहंताण' यह पद बोलकर कायोत्सर्ग पूर्ण न करूं तब तक अपनी काया का सर्वथा त्याग करता हूँ।

१२. लोगस्स (नामस्तव) सूत्र।

लोगस्स उज्जोअगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ॥१॥
उसभमजिअं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल-सिज्जंस-वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।

रहता) ऐसी सिद्धि गति नामक स्थान को पाये हुओं को, ऐसे जिनों को, भय जीतने वालों को मेरा नमस्कार हो ९

(शक्रस्तव से भाव जिनको वंदन किया है) जब जिनदेव अर्थात् तीर्थंकर भगवान देवलोक से च्यवकर माता के गर्भ में आते हैं तब शक्र (इन्द्र) इस सूत्र के द्वारा उनका स्तवन करते हैं। इसलिये शक्रस्तव कहलाता है।

जो भूतकाल में सिद्ध हो गये हैं, जो भविष्यकाल में सिद्ध होनेवाले है तथा जो वर्त्तमान काल में सिद्ध विद्यमान हैं, उन सब (सिद्धों-द्रव्य तीर्थंकरों) को मैं शुद्ध मन, वचन और काया-त्रिविध योग से वन्दन करता हूं—१० (इस गाथा से द्रव्य जिनको वंदन किया है)।

स्थापना जिनको अर्थात् सब चैत्यों को नमस्कार

१७—जावंति चेइआइं सूत्र

जावंति चेइआइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअ-लोए अ।
सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ॥१॥

संपदा ४, गाथा १, पद ४, गुरु ३, लघु ३२, सर्व वर्ण ३५

शब्दार्थ

जावंति—जितने
चेइआइं—चैत्य, जिन बिम्ब
उड्ढे—ऊर्ध्व लोक में
अ—और
अहे अधोलोक में
अ तथा
तिरिअलोए तिर्यग् लोक में
अ—एवं
सव्वाइं ताइं—उन सबको
वंदे - मैं वन्दन करता हुं
इह—यहाँ
संतो—रहता हुआ
तत्थ - वहाँ
संताइं—रहे हुओं को

भावार्थ—ऊर्ध्व लोक, अधोलोक, और तिरछे लोक में जितने भी चैत्य-(तीर्थंकरों की मूर्तियां) हैं उन सबको मैं यहाँ रहता हुआ वन्दन करता हूं।

१३. सामायिक तथा पौषध पारणे का सूत्र

भयवं ! दसण्णभद्दो सुदंसणो थूलिभद्द-वयरो य ।
सफली-कय-गिहचाया, साहू एवं विहा हुंति ॥१॥
साहूण वंदणेण नासइ पावं, असंकिया भावा ।
फासुअ-दाणे निज्जर, अभिग्गहो नाणमाइणं ॥२॥
छउमत्थो मूढमणो, कित्तिय मित्तं पि संभरइ जीवो ।
जं च न संभरामि अहं, मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥३॥
जं जं मणेण चिंतियं, असुहं वायाइ भासियं किंचि ।
असुहं काएण कयं, मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥४॥
सामाइय पोसह संठ्ठियस्स, जीवस्स जाइ जो कालो ।
सो सफलो बोधव्वो, सेसो संसार-फल-हेउ ॥५॥

शब्दार्थ

भयवं — हे भगवन्, पूज्य
दसण्णभद्दो — दशार्णभद्र
सुदंसणो — सुदर्शन सेठ
थूलिभद्द — स्थूलिभद्र
य — और
वयरो — वज्रस्वामी ने
सफलिकय — सफल किया है
गिहचाया — घर का त्याग (दीक्षा) जिन्होंने
साहू — साधु
एवं विहा — इस प्रकार के
हुंति — होते हैं।
साहूण — साधुओं को
वंदणेण — वन्दन करने से
नासेइ — नष्ट होते हैं
पावं — पाप
असंकिया-भावा — शंकारहित भाव, निश्चय से
फासुअ — प्रासुक आहार आदि को
दाणे — देने से
निज्जर — निर्जरा
अभिग्गहो — अभिग्रह

२०—उवसग्गहरं स्तोत्र

उवसग्गहरं पासं, पासं वंदामि कम्म-घण-मुक्कं ।
विसहर-विस-निन्नासं, मंगल-कल्लाण-आवासं ॥१॥
विसहर-फुलिंग-मंतं, कंठे धारेइ जो सया मणुओ ।
तस्स गह-रोग-मारी-दुट्ठजरा जंति उवसामं ॥२॥
चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ ।
नर तिरिएसु वि जीवा, पावंति न दुक्ख-दोगच्चं ॥३॥
तुह सम्मत्ते लद्धे चिंतामणि-कप्पपायव-ब्भहिए ।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ॥४॥
इअ संथुओ महायस ! भत्ति-भर-निब्भरेण हिअएण
ता देव ! दिज्ज बोहिं, भवे भवे पास-जिणचंद ॥५॥

गुरु २१, लघु १६४, सर्ववर्ण १८५, गाथा ५,

शब्दार्थ

उवसग्गहरं—उपसर्गों को दूर करने वाले

पासं—पार्श्व नामक यक्ष के स्वामी

पासं—तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान को

वंदामि—मैं वन्दन करता हूँ

कम्म-घण-मुक्कं—कर्मों के समूह से छूटे हुए

विसहर-विस-निन्नासं—सांप के जहर का नाश करने वाले

मंगल-कल्लाण-आवासं—मंगल और कल्याण के स्थान

विसहर-फुलिंग-मंतं—विषधर

प्रकार के मुख्यों बाजे-गाजों सहित ठाट-माठ के साथ प्रभु को वन्दन करने के लिये चल पड़ा। रास्ते में याचकों को चांदी सोना तथा रत्नों का दान देता हुआ पर्वत के समीप आ पहुँचा।

हाथी पर से उतर कर पांच अभिगम पूर्वक राजा ने प्रभु को बड़े भावपूर्वक वन्दन किया और उनके सम्मुख योग्य स्थान पर बैठ गया।

राजा को गर्व था कि "ऐसी समृद्धि के साथ मैंने प्रभु को वन्दन किया है ऐसा वन्दन करने को चक्रवर्ती तथा शक्रेन्द्र भी समर्थवान नहीं हैं अतः मैं धन्य हूं।

शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान द्वारा यह सब वृत्तांत जाना। राजा के प्रभु को वन्दन करने की प्रशंसा की परन्तु ऐसा गर्व उचित नहीं इसलिये इसके गर्व को दूर करना मेरा कर्तव्य है; ऐसा सोचकर इसने अपने सब परिवार तथा अपार ऋद्धि-समृद्धि के साथ आकर प्रभु को वन्दन किया। इन्द्र की समृद्धि को देखकर दशार्णभद्र का गर्व चिकनाचूर हो गया।

गर्व के चिकनाचूर होते ही उसे अपने दुष्पतन पर बहुत पश्चाताप हुआ। उत्कट वैराग्य पाकर सब ऋद्धि-समृद्धि का तृणवत त्यागकर तत्काल सर्वविरति रूप सामायिक व्रत ग्रहण कर मुनि दीक्षा ले ली।

यह देखकर शक्रेन्द्र ने दशार्णभद्र मुनि को वन्दन कर उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की।

"हे महामुने ! प्रभु को अद्‌भुत रूप में वन्दन करने की आपने जो प्रतिज्ञा की थी वह सत्य हुई है। क्योंकि मैं भी इस प्रकार चारित्र लेकर वन्दन करने में असमर्थ हूँ।

ऐसी स्तुति कर इन्द्र अपने स्थान पर चला गया और दशार्णभद्र राजर्षि ने शुद्ध चारित्र पालकर अन्त में मोक्ष प्राप्त कि

२. सुदर्शन सेठ—

राजा दधिवाहन के राज्यकाल में चंपापुरी में

पभावओ—प्रभाव से, सामर्थ्य से
भयवं—हे भगवन्
भव-निव्वेओ—संसार के प्रति वैराग्य
मग्गाणुसारिया—मोक्षमार्ग में चलने की शक्ति
इट्ठ-फल-सिद्धी—इष्ट-फल की सिद्धि
लोग-विरुद्ध-च्चाओ—लोक निन्दा हो ऐसी प्रवृत्ति का त्याग
गुरुजण-पूआ—गुरुजनों धर्माचार्य, विद्या गुरु, माता-पिता भाई बहन आदि बड़े व्यक्तियों के प्रति परिपूर्ण आदर भाव
परत्थकरणं—दूसरों का भला करने की तत्परता
च—और
सुहगुरु-जोगो—सद्गुरु का संयोग, समागम
तव्वयण-सेवणा—उस सद्गुरु के वचन का पालन
आभवं—जहाँ तक संसार में परिभ्रमण करना पड़े वहाँ तक अर्थात् मुक्ति पाने तक
अखंडा—अखण्डित हों। जन्म-जन्म में मिलें।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो ! हे जगद्गुरो ! तेरी जय हो। हे भगवन् ! आपके प्रभाव—सामर्थ्य से मुझे संसार से वैराग्य, मोक्ष मार्ग में चलने की शक्ति की प्राप्ति हो तथा वांछित फल की सिद्धि हो (जिससे मैं धर्म का आराधन सरलता से कर सकूं)।—१

हे प्रभो ! (मुझे ऐसा सामर्थ्य प्राप्त हो कि जिससे) मैं ऐसा कोई भी कार्य न करूँ जिससे लोक निन्दा हो अर्थात् लोक विरुद्ध व्यवहार का त्याग करूं, धर्माचार्य, विद्यागुरु, माता-पिता, भाई-बहन आदि बड़े व्यक्तियों के प्रति बहुमान रखूं तथा सेवा करूं, दूसरे की भलाई करने में सदा तत्पर रहूँ; और हे प्रभो ! मुझे सद्गुरु का समागम मिले तथा उनकी आज्ञानुसार चलने की शक्ति प्राप्त हो, ये सब बातें आपके प्रभाव से मुझे जन्म-जन्म में मिलें।—२

२२—आचार्य आदि वन्दन सूत्र

आचार्यजी मिश्र—१, उपाध्यायजी मिश्र—२, वर्तमान गुरु (नाम लेकर) मिश्र—३, सर्वसाधुजी मिश्र—४।

न चला तो उसने जोर जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया—"पकड़ो-पकड़ो इस लम्पट धूर्त सुदर्शन को, मुझे अकेला देखकर मेरी इज्जत लूटने के लिये मेरे महल में घुस आया है।

सेठ को राजपुरुषों ने पकड़कर राजा के दरबार में ला हाज़िर किया। सेठ काउस्सग्ग में ध्यानारूढ़ हो गया। राजा ने सेठ को मृत्यु-दंड दिया और शूली पर चढ़ाने के लिये जल्लादों को हुक्म दे दिया।

सेठ की पत्नी मनोरमा को जब पति पर कलंक लगाये जाने तथा मृत्युदंड के समाचार मिले तो वह अपने पति के मंगल के लिये और कलंक की मुक्ति के लिए काउस्सग्ग में ध्यानारूढ़ हो गयी। सेठ को शूली पर चढ़ा दिया गया। शासनदेव ने शूली को सिंहासन के रूप में वदल दिया। राजा ने चमत्कृत होकर सेठ से क्षमा मांगी। सेठ के चारित्र की सर्वत्र मुक्तकंठ से प्रशंसा होने लगी। सुदर्शन सेठ तथा मनोरमा ने सर्व विरति सामयिक रूप दीक्षा ग्रहण कर ली और निरातिचार चारित्र का पालन करते हुए अन्त में मोक्षगामी हुए।

३. स्थूलभद्र—

यह नवम नन्दराजा के मंत्री शकटाल का पुत्र था इसकी सात वहनें तथा श्रीयक नाम का एक छोटा भाई था।

यह युवा होने पर कोश्या वैश्या के यहां कला सीखने के लिये गया और उस पर आसक्त हो गया वैश्या भी इस पर अत्यन्त रागवती थी। इसे वहां रहते वारह वर्ष वीत गये।

राज्य खटपट के कारण मंत्री शकटाल की मृत्यु हो गयी। नन्द ने श्रीयक को मंत्री बनाना चहा पर उसने इनकार कर दिया और अपने बड़े भाई स्थूलभद्र को मंत्री बनाने के लिये कहा। राजा ने स्थूलभद्र को बुलाकर मंत्री पद स्वीकार करने को कहा। इसने भी राजकीय खट-पट में पड़ने के वदले त्यागी जीवन स्वीकार कर स्वपर कल्याण करने का मन में निश्चय किया और संभूति विजय आचार्य से सर्वविरति रूप

२४—इच्छामि ठामि सूत्र

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं ।

जो मे देवसिओ अइयारो कओ, काइओ वाइओ माणसिओ, उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो, दुज्झाओ दुव्विचिंतिओ, अणायारो अणिच्छिअव्वो असावगपाउग्गो, नाणे दंसणे चरित्ताचरित्ते, सुए सामाइए । तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं, चउण्हं सिक्खावयाणं बारस-विहस्स सावगधम्मस्स जं खंडिअं, जं विराहिअं, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

गुरु २९ लघु १३८ सर्व वर्ण १६७

लोगो जत्थ पइट्ठिओ जगमिणं तेल्लुक्क-मच्चासुरं,
धम्मो वड्ढउ सासओ विजयओ धम्मुत्तरं वड्ढउ ॥४॥

सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं, वंदण-वत्तियाए०

गाथा-४, पद-१६, सम्पदा-१६, गुरु-३४, लघु १८२ सर्ववर्ण २१६

शब्दार्थ

पुक्खरवर-दीवड्ढे—अर्द्धपुष्कर वर द्वीप में
धायइसंडे अ तथा धातकी खंड मे
जंबुदीवे अ—और जम्बुद्वीप में
भरहेरवय-विदेहे-भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्रों में
धम्माइगरे धर्म की आदि करने वाले तीर्थंकरों को
नमंसामि—मैं नमस्कार करता हूं
तम-तिमिर-पडल-विद्धंसणस्स—अज्ञानरूपी अंधकार के समूह का नाश करने वालों को
सुरगण-नरिंद-महियस्स—देव समूह तथा राजाओं के समूह से पूजित
सीमाधरस्स—सीमा धारण करने वाले को, मर्यादा युक्त

वंदे मैं वन्दन करता हूँ
पप्फोडिय-मोहजालस्स—मोहजाल को सर्वथा तोड़ने वाले को
जाई-जरा-मरण-सोग-पणासणस्स—वृद्धावस्था, मृत्यु जन्म, तथा शोक को नाश करने वालों को
कल्लाण-पुक्खल-विसाल सुहावहस्स—कल्याण कारक तथा अत्यन्त विशाल सुख को अर्थात् मोक्ष देने वालों को
को—कौन, कौन सचेतन प्राणी
देव-दाणव-नरिंद-गणच्चियस्स—देवेन्द्रों, दानवेन्द्रों तथा चक्रवर्तियों के समूह से पूजितों को
धम्मस्स—धर्म का, श्रुत धर्म का
सारं—सार को
उवलब्भ—प्राप्त करके
करे—करे

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अरिट्ठनेमि — श्री अरिष्टनेमि भगवान के लिए

नमंसामि — मैं नमस्कार करता हूं

चत्तारि — चार

अट्ठ — आठ

दस — दस

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सिद्धा — सिद्ध

सिद्धिं — सिद्धि

मम — मुझे

दिसन्तु — प्रदान करें

अ — और

भावार्थ — जिन्होंने सर्व कार्य सिद्ध किये हैं, तथा सर्वभाव जाने हैं ऐसे सर्वज्ञ, संसार समुद्र को पार पाये हुए, गुणस्थानों के अनुक्रम से मोक्ष पाये हुए तथा जो लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं उन सब सिद्ध परमात्माओं को मेरा निरंतर नमस्कार हो ॥१॥

जो देवों के भी देव हैं, जिनको देव दोनों हाथ जोड़कर अंजलिपूर्वक नमस्कार करते हैं तथा जो इन्द्रों से भी पूजित हैं, उन श्री महावीर स्वामी को मैं मस्तक झुका कर वन्दन करता हूं ॥२॥

१—इस सूत्र के द्वारा सिद्ध की स्तुति की है इसलिए यह सिद्धस्तव कहलाता है। इसकी पहली गाथा में सब सिद्धों की स्तुति की है। दूसरी और तीसरी गाथा में वर्तमान तीर्थ के अधिपति श्री वर्धमान स्वामी की स्तुति की गई है। चौथी गाथा में गिरनार में विराजित श्री नेमिनाथ प्रभु की स्तुति की है और पांचवीं गाथा में अष्टापद पर्वत पर प्रतिष्ठित [illegible]ीस तीर्थंकरों की स्तुति की है।

भावार्थ - नमस्कार हो अरिहंत भगवन्तों को—१

श्रुतधर्म (द्वादशांगी) की आदि करने वालों को, चतुर्विध संघ की स्थापना करने वालों को, स्वयं आप बोध प्राप्त किये हुओं को —२

अरिहंत भगवान के चौतीस अतिशय इस प्रकार हैं :

१. शरीर अनन्त रूपवाला, सुगन्धित, रोगरहित, पसीना तथा मल रहित होता है।
२. रुधिर तथा मांस गाय के दूध समान सफेद और दुर्गन्ध रहित होता है।
३. आहार और निहार चर्मचक्षु द्वारा दिखलाई नहीं पड़ता।
४. श्वासोच्छ्वास कमल जैसा सुगन्धित होता है।
(ये चार अतिशय जन्म से होते हैं—इसलिये इन्हें सहजातिशय कहते हैं।)
५. योजन प्रमाण समवशरण की भूमि में कोटाकोटी देव, मनुष्य तथा तिर्यंच बाधारहित समा जाते हैं।
६. चारों दिशाओं में पच्चीस पच्चीस योजन तक सब प्राणियों के सब प्रकार के रोग शांत हो जाते हैं तथा नये रोग होते नहीं हैं।
७. सब प्राणियों का वैर-भाव नाश हो जाता है।
८. ईति अर्थात् धान्यादि का नाश करने वाले जीवों की उत्पत्ति नहीं होती।
९. मरकी-महामारी नहीं होती।
१०. अति वृष्टि नहीं होती।
११. अनावृष्टि नहीं होती।
१२. दुष्काल-दुर्भिक्ष नहीं होता।
१३. स्वचक्र तथा परचक्र का भय नहीं होता।
१४. भगवन्त की योजन गामिनी वाणी देव, मनुष्य तथा तिर्यंच सब अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं।

२६—सुगुरु वंदन सूत्र

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए, निसीहिआए ॥

अणुजाणह मे मिउग्गहं ॥

निसीहि अहोकायं, काय-संफासं खमणिज्जो भे ! किलाभो, अप्पकिलंताणं वहुसुभेण भे ! दिवसो वइ-वक्कंतो ? जत्ता भे ? जवणिज्जं च भे ?

खामेमि खमासमणो ! देवसिअं वइक्कमं । आवस्सिआए पडिक्कमामि । खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए, तित्तीसन्नयराए, जं किंचि मिच्छाए, मण-दुक्कडाए वय-दुक्कडाए काय-दुक्कडाए, कोहाए माणाए मायाए लोभाए, सव्वकालियाए सव्वमिच्छो-वयाराए, सव्वधम्माइक्कमणाए, आसायणाए, जो मे अइयारो कओ, तस्स खमासमणो ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

पद ५८, गुरु २५, लघु २०१, सर्व वर्ण २२६

शब्दार्थ

इच्छामि - मैं चाहता हूँ
खमासमणो—हे क्षमाश्रमण गुरुदेव
वंदिउं—वन्दन करना
[illegible] न के

अनुसार
निसीहिआए—अन्य सब प्रकार के कार्यों को छोड़कर
अणुजाणह —आज्ञा प्रदान करो

१८—जावंत के वि साहू

(सर्व साधुओं को नमस्कार)

जावंत के वि साहू, भरहेरवय-महाविदेहे अ।
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंड-विरयाणं ॥१॥

पद ४, संपदा ४, गाथा १, गुरु १, लघु ३७, सर्ववर्ण ३८

शब्दार्थ

जावंत जो
के कोई
वि भी
साहू—साधु
भरहेरवय-महाविदेहे—भरत, ऐरवत, और महाविदेह क्षेत्र में
अ और
सव्वेसिं तेसिं—उन सब को
पणओ नमन करता हूं
तिविहेण करना, कराना, और अनुमोदन करना इन तीन प्रकारों से
तिदंड-विरयाणं—जो तीन दंड से विराम पाये हुए हैं, उनको
तिदंड—मन से पाप करना यह मनोदंड, वचन से पाप करना यह वचनदंड, काया से पाप करना यह कायदंड

भावार्थ भरत-ऐरवत और महाविदेह क्षेत्र में स्थित जो कोई भी साधु मन, वचन और काया से पाप-प्रवृत्ति करते नहीं, कराते नहीं, करते हुए का अनुमोदन नहीं करते उनको मैं नमन करता हूँ।

१९. पंचपरमेष्ठि नमस्कार

नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यः

नमो नमस्कार हो
अर्हत् - सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्व-साधुभ्यः -अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा सर्व साधुओं को

की हो उसकी मैं क्षमा मांगता हूँ । और जो कोई अतिचार मिथ्याभाव के कारण हुई आशातना से हुआ हो, मन, वचन, काया की दुष्ट प्रवृति से

---

९. गुरु महाराज के बहुत नजदीक अथवा सटकर खड़े रहना-दोष लगे (यदि खास कारण से ऐसा करना पड़े तो आसन्न सुख होने से तथा अधिक लाभ के कारण से आशातना का दोष नहीं लगता)

१०. गुरु महाराज के पहले भोजन समय कुल्ली अथवा आचमन करना-दोष लगे ।

११. बाहर से गुरु के साथ आने पर यदि गुरु से पहले गमणागमण को आलोये अर्थात् इरियावही पडिक्कमे तो गुरु का अनादर होने से दोष लगे ।

१२. रात्रि का संथारा करने के बाद गुरु महाराज कुछ पूछें अथवा बुलावें तब सुन लेने पर भी उत्तर न दे और मौन रहे तो दोष लगे ।

१३. गुरु के पास आये हुए गृहस्थ को अपना रागी बनाने के लिये गुरु के पहले उसे स्वयं बुला लेवे तो दोष लगे ।

१४. भिक्षा वृत्ति से लाया हुआ आहार पानी आदि प्रथम गुरु के सामने लाकर रखना चाहिये और गोचरी भी वहीं आलोनी चाहिए यदि ऐसा न करके अपनी इच्छा से गुरु से पहले उतावल से लाई हुई गोचरी किसी दूसरे साधु के पास आलो कर बाद में गुरु के पास आलोवे तो आशातना लगे ।

१५. अन्न आदि लाकर प्रथम दूसरे साधुओं को दिखलाकर बाद में गुरु को दिखावे तो आशातना लगे ।

१६. अशन आदि लाकर पहले दूसरे साधु को निमंत्रित कर बाद में गुरु को निमंत्रण करे तो आशातना लगे ।

१७. गुरु को पूछे बिना दूसरे साधुओं को उनकी इच्छानुसार अशनादि देवे तो आशातना लगे ।

स्फुलिंग नामक मंत्र को
कंठे धारेइ — कंठ में धारण करता है, स्मरण करता है
जो — जो
सया — नित्य
मणुओ — मनुष्य
तस्स — उसके
गह-रोग-मारी-दुट्ठजरा — ग्रहचार, रोग, मारी (हैजा-प्लेग आदि) और कुपित ज्वर

१. गह — शनि आदि अनिष्ट ग्रहों का कुप्रभाव
२. रोग — सोलह महारोग तथा अन्य रोग भी
३. मारी — जिन रोगों से बहुत जन-संहार हो अथवा अभिचार या मारण प्रयोग से सहसा फूट निकलने वाले रोग।
४. दुट्ठज्वर — विषमज्वर, सन्निपात आदि

जंति — हो जाते हैं।
उवसामं — शांत
चिट्ठउ दूरे — दूर रहे
मंतो — यह विषधर स्फुलिंग नामक मंत्र
तुज्झ — आपको किया हुआ
पणामो — प्रणाम
वि — भी

बहुफलो — बहुत फल देने वाला
होइ — होता है।
नर-तिरिएसु वि जीवा — मनुष्य तथा तिर्यंच जीव भी
पावंति न — नहीं पाते हैं।
दुक्खदोगच्चं — दुःख तथा दुर्दशा को
तुह — आपका
सम्मत्ते लद्धे — सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर
चिंतामणि-कप्पपाय-वब्भहिए — चिंतामणि रत्न और कल्पवृक्ष से भी अधिक
पावंति — प्राप्त करते हैं।
अविग्घेणं — सरलता से विघ्नरहित होकर
जीवा — जीव
अयरामरं ठाणं — अजरामर स्थान को, मुक्ति को
इअ संथुओ — इस प्रकार स्तुति की है
महायस — हे महायशस्विन
भत्ति-भर-निब्भरेण — भक्ति से भरपूर
हियएण — हृदय से
ता — इसलिए
देव — हे देव
दिज्ज बोहिं — सम्यक्त्व प्रदान करो
भवे-भवे — प्रत्येक भव में
पास जिणचंद — हे पार्श्व जिनचन्द्र

किसी जीव का मैंने हनन किया, कराया हो या करते हुए का अनुमोदन किया हो वह सब मन वचन काया करके मिच्छामि दुक्कढं ।

३२—अठारह पाप स्थान

पहला प्राणातिपात, दूसरा मृषावाद, तीसरा अदत्तादान, चौथा मैथुन, पांचवां परिग्रह, छठा क्रोध, सातवां मान, आठवां माया, नवमा लोभ, दसवां राग, ग्यारहवां द्वेष, बारहवां कलह, तेरहवाँ अभ्याख्यान, चौदहवां पैशुन्य, पन्द्रहवां रति-अरति, सोलहवां पर-परिवाद, सत्रहवां माया-मृषावाद, अठारहवां मिथ्यात्व-शल्य; इन अठारह पाप स्थानों में से किसी को मैंने सेवन किया, कराया या करते हुए का अनुमोदन किया हो, वह सब मिच्छामि दुक्कडं ।

हों ये सब मिलकर एक ही स्थानक कहा जाता है ।

इन की गिनती इस प्रकार है—पृथ्वीकाय के मूल ३५० भेद, इन को ५ वर्ण से गुणा करने से १७५० भेद, इनको २ गंध से गुणा करने से ३५०० भेद, इनको ५ रस से गुणा करने से १७५०० भेद, इनको ८ स्पर्श से गुणा करने से १४०००० भेद, इनको ५ संस्थान से गुणा करने से ७००००० सात लाख भेद पृथ्वीकाय के होते हैं। इस प्रकार सबकी गिनती करनी चाहिए। उपर्युक्त ८४००००० चौरासी लाख योनियों में उत्पन्न हुए किसी भी जीव का हनन किया हो, हनन कराया हो अथवा हनन करने वाले को अनुमति दी हो तत्सम्बन्धी मन, वचन, काया द्वारा मिथ्या दुष्कृत इस पाठ द्वारा दिया जाता है ।

शब्दार्थ

आचार्यजी मिश्र—पूज्य आचार्यजी को वंदन। उपाध्यायजी मिश्र—उपाध्यायजी को वंदन। वर्त्तमान गुरुजी पूज्य मिश्र—वर्त्तमान धर्म गुरु पूज्य को वन्दन। सर्वसाधुजी मिश्र—सर्वसाधुजी को वंदन।

भावार्थ—पूज्य आचार्य महाराज को वंदन करता हूँ। पूज्य उपाध्यायजी महाराज को वन्दन करता हूँ। वर्त्तमान पूज्य धर्मगुरुजी को वन्दन करता हूँ। सर्वसाधुजी पूज्यों को वन्दन करता हूँ।

२३—सव्वस्सवि सूत्र

इच्छाकारेण संदिसह भगवन! देवसिअ पडिक्कमणे ठाउं? इच्छं सव्वस्स वि देवसिअ दुच्चिंतिअ दुब्भासिअ दुच्चिट्ठिअ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

इच्छाकारेण—अपनी इच्छा से
संदिसह—आज्ञा प्रदान करो
भगवन्—हे भगवन्
देवसिअ पडिक्कमणे—दैवसिक प्रतिक्रमण में
ठाउं—स्थिर होने की
इच्छं—मैं भगवन्त के इस वचन को स्वीकार करता हूँ
सव्वस्स—सबका
वि—भी
देवसिअ—दिवस सम्बन्धी, दिन में
दुच्चिंतिअ—दुष्ट चिंतन किया हो
दुब्भासिअ—दुष्ट भाषण किया हो
दुच्चिट्ठिअ—दुष्ट चेष्टा की हो
तस्स—उनका
मिच्छा—मिथ्या हो
मि दुक्कडं—मेरा दुष्कृत

भावार्थ—हे भगवन्! स्वेच्छा से मुझे दैवसिक प्रतिक्रमण में स्थिर होने की आज्ञा प्रदान करो। मैं भगवन्त के इस वचन को स्वीकार करता हूँ।

सारे दिन में यदि मैंने कोई भी दुष्ट चिंतन किया हो, दुष्ट वचन कहा हो तथा शरीर द्वारा दुष्ट चेष्टा की हो उन सब पापों का मिथ्या दुष्कृत्य द्वारा मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

[सामान्य व्रतातिचारों की आलोचना]

जो मे वयाइआरो, नाणे तह दंसणे चरित्ते अ ।
सुहुमो व बायरो वा तं निंदे तं च गरिहामि ॥२॥

शब्दार्थ

जो—जो
मे—मुझे
वयाइआरो—व्रतों के विषय में अतिचार लगा हो
नाणे—ज्ञान के विषय में
तह—तथा
दंसणे—दर्शन के विषय में
चरित्ते—चारित्र के विषय में
अ—और (तप)
सुहुमो-सूक्ष्म—शीघ्र ध्यान में न आवे ऐसा छोटा
व—अथवा
बायरो—शीघ्रध्यान में आवे ऐसा बड़ा—बादर
वा—अथवा
तं—उसकी
निंदे—निन्दा करता हूं-आत्मा की साक्षी से बुरा मानता
तं—उसकी
च—और
गरिहामि—गुरु की साक्षी में प्रकट करता हूँ, गर्हा करता हूँ

भावार्थ—मुझे व्रतों के विषयमें और ज्ञान, दर्शन और चरित्र तथा तप की आराधना के विषय में छोटा अथवा बड़ा जो अतिचार लगा हो उसकी मैं अपनी आत्मा की साक्षी से निन्दा करता हूँ एवं गुरु की साक्षी में गर्हा करता हूँ ॥२॥

दुविहे परिग्गहम्मी, सावज्जे बहुविहे अ आरंभे ।
कारावणे अ करणे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥३॥

इस तरह विचारने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि ज्ञान गुण की मलिनता या उसके कारणभूत कषाय उदय को ही अतिचार कहना चाहिये ।

भावार्थ—अप्रशस्त (विकारों के वश हुई) इंद्रियों, क्रोधादि चार कषायों द्वारा तथा उपलक्षण से मन, वचन, काया के योग से राग और द्वेष के वश होकर जो (अशुभ कर्म) बंधा हो उसकी मैं निन्दा करता हूं, उसकी मैं गर्हा करता हूँ ॥४॥

आगमणे निग्गमणे, ठाणे चंकमणे अणाभोगे
अभिओगे अ निओगे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥५॥

शब्दार्थ

आगमणे—आने में
निग्गमणे—जाने में
ठाणे—एक स्थान पर खड़े रहने से
चंकमणे—वहीं पर इधर-उधर फिरने से
अणाभोगे—उपयोग न होने से
अभिओगे—दबाव से
अ—और
निओगे—नौकरी आदि के कारण
पडिक्कमे देसिअं सव्वं—दैनिक इन सब दोषों से निवृत्त होता हूँ।

भावार्थ—उपयोग न होने से अर्थात् ध्यान न रहने से, राजा आदि के दबाव[1] से, अथवा मंत्री, सेठ आदि अधिकारी की परतंत्रता के कारण मिथ्यादृष्टि के रथ यात्रा आदि उत्सव देखने के लिये आने में, घर में से बाहर जाने में, मिथ्यादृष्टि के चैत्य आदि में खड़े रहने में अथवा वहीं पर इधर उधर फिरने में; दर्शन-सम्यक्त्व संबंधी जो कोई अतिचार दिन में लगे हों उन सब दोषों से मैं निवृत्त होता हूँ ॥५॥

---

१ राजा १, गण अर्थात् स्वजनादि समूह २, बल अर्थात् [illegible] बलवान, ३, क्रूर देवता ४, माता पिता आदि ५; इनके [illegible] अनुसार से अथवा दुष्काल से अथवा अरण्यादि में [illegible]।

पाखंडियों का परिचय करना यह कुलिगिसंस्तव अतिचार है। इन पांच में से दिन सम्बन्धी जो छोटे अथवा बड़े अतिचार लगे हों उनसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥६॥

[चारित्राचार में आरंभजन्य दोषों की आलोचना]

छक्काय समारंभे, पयणे अ पयावणे अ जे दोसा।
अत्तट्ठा य परट्ठा, उभयट्ठा चेव तं निंदे ॥७॥

शब्दार्थ

छक्काय-समारंभे[1] पृथ्वीकाय आदि छहकाय जीवों की विराधना हो ऐसी प्रवृत्ति से
पयणे – रांधते हुए
अ – और
पयावणे – रंधाते हुए
अ – तथा
जे – जो
दोसा – दोष
अत्तट्ठा – अपने लिये
य – अथवा
परट्ठा – दूसरों के लिये
उभयट्ठा – दोनों के लिये
चेव – साथ ही निरर्थक द्वेषादि के लिये
तं निंदे – उनकी मैं निन्दा करता हूँ

भावार्थ—अपने लिये, दूसरों के लिये, अपने तथा दूसरों (दोनों) के लिये अथवा निरर्थक रागद्वेष के लिये स्वयं पकाने, दूसरों से पकवाने, अथवा पकाने आदि की अनुमोदना करने से पृथ्वीकाय आदि छह

---

१. इस गाथा में समारंभ मात्र लिखा है तो भी संरम्भ, समारम्भ, तथा आरम्भ ये तीनों समझें। इनमें प्राणी के वधादि का जो संकल्प करना वह संरम्भ-१, उसे परिताप देना समारम्भ २ तथा उसके प्राणों का वियोग करना वह आरम्भ ३ कहलाता है।

श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी तथा मनः पर्यवज्ञानी आदि जो जिन हैं उनसे भी प्रधान सामान्य केवलज्ञानी जिन हैं ऐसे सामान्य केवलियों से भी श्रेष्ठ तीर्थंकर पदवी को पाये हुए श्री वर्धमान स्वामी को शुद्ध भावों से किया हुआ नमस्कार पुरुषों अथवा स्त्रियों को संसार रूपी समुद्र से तार देता है ॥३॥

जिन के दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण गिरनार – पर्वत के शिखर पर हुए हैं, उन धर्मचक्रवर्ती श्री अरिष्टनेमि भगवान के लिये मैं नमस्कार करता हूं ॥४॥

चार, आठ, दस और दो ऐसे क्रम से वन्दन किये हुए चौबीसों जिनेश्वर तथा जो मोक्ष सुख को प्राप्त किये हुए हैं, ऐसे सिद्ध मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥५॥

२८ – वेयावच्चगराणं सूत्र

वेयावच्चगराणं, संतिगराणं, सम्मद्दिट्ठि—समाहिगराणं करेमि काउस्सग्गं । (अन्नत्थ० इत्यादि)

शब्दार्थ

वेयावच्चगराणं—वैयावृत्य करने वाले, सेवा शुश्रूषा करने वाले
संतिगराणं—शांति करने वाले
सम्मद्दिट्ठि-समाहिगराणं—सम्यग्दृष्टि-जीवों को समाधि पहुंचाने वाले देवों की आराधना करने के लिए
करेमि काउस्सग्गं—मैं कायोत्सर्ग करता हूं

अर्थ—श्री जिनशासन की वैयावृत्य—सेवा शुश्रुषा करने वालों, उपद्रवों अथवा उपसर्गों की शांति करने वालों, सम्यग्दृष्टि जीवों को समाधि पहुँचाने वालों [ऐसे देवों की आराधना] के निमित्त मैं कायोत्सर्ग करता हूँ ।

वह-बंध-छविच्छेए, अइभारे भत्त-पाण-वुच्छेए ।
पढम-वयस्स इआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१०॥

शब्दार्थ

इत्थ—इस
थूलग—स्थूल
पाणाइवाय-विरईओ—प्राणातिपात विरति रूप
पढमे—प्रथम, पहले
अणुव्वयम्मी—अनुव्रत के विषय में
पमाय-प्पसगेणं—प्रमाद के प्रसंग से
अप्पसत्थे—अप्रशस्त
आयरिअं—आचरण किया हो
वह—वध
बंध—बन्धन
छविच्छेए—अंगच्छेद
अइभारे—बहुत बोझा लादना
भत-पाण-वुच्छेए खाने पीने में रुकावट डालना
पढम-वयस्स—पहले व्रत के
अइआरे—अतिचारों के कारण जो कुछ
पडिक्कमे-देसिअं-सव्वं—दैनिक इन सब दोषों से मैं निवृत्त होता हूँ ।

३. सम्यक्त्व की प्राप्ति होने के बाद ये व्रत प्राप्त होते हैं । श्रावक के पहले पांच व्रत महाव्रतों की अपेक्षा छोटे होने के कारण अणुव्रत कहे जाते हैं ये देश मूलगुण रूप हैं । तथा इन पांच व्रतों को गुणकारक अर्थात् पुष्टिकारक होने से छठा-सातवाँ-आठवाँ ये तीन व्रत गुणव्रत कहे जाते हैं । तथा शिष्य को विद्याग्रहण करने के समान जो बार-बार सेवन करने योग्य होने से अथवा पहले के आठ व्रतों में विशेष शुद्धि लाने के कारण होने से नवमे आदि चार व्रत शिक्षाव्रत कहे जाते हैं । गुणव्रत तथा शिक्षाव्रत "देश उत्तरगुण रूप" हैं ।

पहले आठ व्रत यावत्कथित हैं अर्थात् जितने काल के लिये ये व्रत लिये जाते हैं उतने काल तक इनका पालन निरन्तर किया जाता है । पिछले चार जो शिक्षा व्रत हैं वे इत्वरिक हैं अर्थात् जितने काल के लिये ये व्रत लिये जावें उतने काल तक उनका पालन निरन्तर नहीं किया जाता-अमुक काल में ही इनका पालन करना होता है परन्तु ये बार-बार अभ्यास करने योग्य हैं ।

मे—मुझे

मिउग्गहं—परिमित अवग्रह में आने के लिये, मर्यादित भूमि में प्रवेश करने के लिये

निसीहि—अशुभ व्यापारों के त्याग पूर्वक

अहोकायं—आपके चरणों को

काय-संफासं—मैं उत्तमांग (मस्तक) से स्पर्श करता हूँ उससे

खमणिज्जो—क्षमा करें

भे—आप

किलामो—खेद

अप्पकिलंताणं—अल्प ग्लानि वाले आपका

बहुसुभेण—बहुत शुभ भाव से

भे—आपका

दिवसो—दिन

वइक्कंतो—बीता, व्यतीत हुआ

जत्ता—यात्रा, संयम यात्रा

भे—आपकी

जवणिज्जं—मन तथा इन्द्रियों की

वइक्कमं—व्यतिक्रम, अपराध को

आवस्सिआए—आवश्यक क्रिया के अतिचारों का,

पडिक्कमामि—प्रतिक्रमण करता हूँ

खमासमणाण—आप क्षमाश्रमण की

देवसिआए—दिवस सम्बन्धी

आसायणाए—आशातना

तित्तीसन्नयराए—तेंतीस में से किसी भी

जं किंचि—जो कोई

मिच्छाए—मिथ्याभाव से की हुई

मण-दुक्कडाए—मन के दुष्कृत वाली

वय-दुक्कडाए—वचन के दुष्कृत द्वारा

काय-दुक्कडाए—काया-शरीर के दुष्कृत द्वारा

कोहाए—क्रोध से हुई

माणाए—मान से हुई

मायाए—माया से हुई

५. भत्त—पाणी[1]-वुच्छेए-खाने-पीने में रुकावट पहुंचाना ।[3]

इन उपर्युक्त विषयों में से छोटे-बड़े दिन में जो अतिचार लगे हों उन सबसे मैं निवृत्त होता हूं ॥९-१०॥

(दूसरे अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना)

बीए अणुव्वयम्मी परिथूलग-अलिय-वयण विरइओ ।
आयरिअमप्पसत्थे, इत्थ पमाय—प्पसंगेणे ॥११॥

---

३. यहां कोई यदि शंका करे कि वध-बन्ध आदि ऊपर लिखे हुए पांचों कारणों मे प्राणी की हिंसा नहीं होती और श्रावक ने तो प्राणी की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है, तो ये वध-बन्धनादि अतिचार क्यों ? इसका उत्तर यह है कि – प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करने वाले श्रावक ने वास्तविक रूप से देखें तो अपेक्षारहित (निरर्थक) वध-बन्ध आदि का भी प्रत्याख्यान किया हुआ ही है, क्योंकि वह वध-बंधनादि प्राणातिपात का कारण हैं ।

प्रश्न – यदि ऐसा ही है तो वधादि करने से व्रत का भंग हुआ ऐसा [illegible] है । अतः इसे अतिचार क्यों माना जाय ? क्योंकि व्रत का [illegible] नहीं हुआ ।

उत्तर – प्रत्येक व्रत दो प्रकार का होता है—आभ्यंतर १ और बाह्य [illegible] व्रत की अपेक्षा रखे बिना क्रोधादि से कोई वध-बन्धनादि करने [illegible] नहीं, इससे बाह्यवृत्ति का व्रत कायम [illegible] वधादि किया इस लिये आभ्यंतर वृत्ति [illegible] भंग हुआ । इससे एक देश का भंग और एक देश का [illegible] व्रत की अपेक्षा रखते हुए [illegible] अतिचार और अनाचार में [illegible] अतिचार [illegible] से आभ्यंतर वृत्ति से भंग नहीं [illegible] भी अतिचार लगता है ।

हो उसकी मुझे क्षमा प्रदान करें। आप का दिन शुभ भाव से सुख पूर्वक व्यतीत हुआ है ?[३]

हे पूज्य ! आपका तप, नियम, संयम और स्वाध्याय रूप यात्रा निराबाध चल रही है ?[४]

आपका शरीर, इन्द्रियां तथा नोइन्द्रिय (मन) कषाय आदि उपघात-पीड़ा रहित है ?[५]

हे गुरुमहाराज ! सारे दिन में जो कोई मैंने अपराध किया हो उसकी मैं क्षमा मांगता हूं।[६]

आवश्यक क्रिया के लिये अब मैं अवग्रह से बाहर आता हूं। दिन में आप क्षमाश्रमण की तेतीस आशातनाओं में से कोई भी आशातना

३—यहाँ गुरु कहे 'तहत्ति'—ऐसा है

४—यहाँ गुरु कहे—"तुब्भं पि वट्टए"—क्या तुम्हारी भी संयम यात्रा चल रही है ?

५—यहाँ गुरु कहे—"एवं" ऐसा ही है।

६—यहाँ गुरु कहे—"अहमवि खामेमि तुब्भं"—मैं भी तुम से क्षमा चाहता हूं।

७—गुरु की तेतीस आशातनाओं से अवश्य बचना चाहिये—वे इस प्रकार हैं—

१. गुरु महाराज के आगे चलना—दोष लगे।
२. गुरु महाराज के आगे खड़ा रहना—दोष लगे।
३. गुरु महाराज के आगे बैठना-दोष लगे।
४. गुरु महाराज के बराबर (अगल-बगल) चलना-दोष लगे।
५. गुरु महाराज के बराबर खड़े रहना-दोष लगे।
६. गुरु महाराज के बराबर बैठना-दोष लगे।
७. गुरु महाराज के बहुत नजदीक अथवा सटकर बैठना-दोष लगे।
८. गुरु महाराज के बहुत नजदीक अथवा सट कर चलना-दोष लगे।

(१) [illegible]

(तीसरे अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना)

तइए अणुव्वयम्मी, थूलग परदव्व-हरण विरईओ ।
आयरियमप्पसत्थे, इत्थ पमाय-प्पसंगेणं ॥१३॥
तेनाहड-प्पओगे, तप्पडिरूवे विरुद्ध-गमणे अ ।
कूडतुल-कूडमाणे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१४॥

शब्दार्थ

इत्थ—यहाँ, अब
तइए—तीसरे
अणुव्वयम्मी—अणुव्रत में
पमाय—प्पसंगेणं-प्रमादवश
अप्पसत्थे—अप्रशस्त भाव से
थूलग—स्थूल
परदव्व-हरण-विरईओ—परद्रव्य हरण की विरति से दूर हो गया
आयरिअं—आचार किया हो

अथवा लालचवश सुशील कन्या को कुशील और कुशील कन्या को सुशील कहना, अच्छे पशु को बुरा और बुरे को अच्छा बतलाना, दूसरे की जायदाद को अपनी और अपनी जायदाद को दूसरे की साबित करना, किसी की रखी हुई धरोहर को दबा लेना या झूठी गवाही देना, इत्यादि प्रकार के झूठ का त्याग करता है। यही दूसरा अणुव्रत है। इस व्रत में जो बातें अतिचार रूप हैं उनको दिखाकर इन दो गाथाओं में उनके दोषों की आलोचना की गई है।

हुई आशातना से हुआ हो, क्रोध मान, माया लोभ की प्रवृत्ति से हुआ हो अथवा सर्वकाल सम्बन्धी, सर्व प्रकार के मिथ्या उपचारों से अर्थात् कूट कपट से, अष्ट प्रवचन माता रूप सर्वधर्म कार्य के अतिक्रमण के

---

१८. गुरु के साथ अशनादि खाते हुए स्वयं अच्छा आहार ग्रहण करे तो आशातना लगे।

१९. गुरु के बुलाने पर उत्तर न देवे तो आशातना लगे।

२०. गुरु के बुलाने पर कहे कि मुझे ही बुलाते हो दूसरे किसी को क्यों नहीं बुलाते इत्यादि कटुक वचन बोले तो आशातना लगे।

२१. गुरु के बुलाने पर उनके पास जाकर नम्रतापूर्वक जवाब न देकर अपने आसन पर बैठा-बैठा उत्तर दे अथवा उद्दंडता से उत्तर दे तो आशातना लगे।

२२. गुरु बुलावे तब-क्या है ? कहो तो क्या कहते हो ? इत्यादि अविनीत वचन बोले तो आशातना लगे।

२३. गुरु कोई काम करने को कहें तो सामने उत्तर दे—तुम स्वयं क्यों नहीं कर लेते मुझे क्यों कहते हो—ऐसा बोलने से आशातना लगती है।

२४. गुरु को तू करके बुलावे तो आशातना लगे।

२५. गुरु धर्म कथा कहें तो शिष्य का मन हर्षित न हो अथवा गुरु के किसी भगत को देखकर राजी न हो तो आशातना लगे।

२६. गुरु सूत्रादि का व्याख्यान करता हो तब तुम भूल गये हो, यह बात तुम्हें याद नहीं—ऐसा कहने से आशातना लगे।

२७. गुरु व्याख्यान करते हों तब बीच में उनकी बात काटकर स्वयं सभा समक्ष बोलने लगे तो आशातना लगे।

२८. गुरु की पर्षदा बैठी हो उसी समय अपनी विद्वता बतलाने के लिये गुरु महाराज ने व्याख्यान में जो बात कही हो उसे ही बार-बार विस्तार से कहे तो आशातना लगे।

शब्दार्थ

इच्छाकारेण—इच्छापूर्वक	आलोउं—आलोचना करूं
संदिसह—आज्ञा दीजिये	[आलोएह—आलोचना करो]
भगवन्—हे भगवन्	इच्छं—चाहता हूं
देवसिअं—दिवस सम्बन्धी	आलोएमि—आलोचना करता हूं

भावार्थ—हे भगवन् ! इच्छापूर्वक आज्ञा प्रदान करो। मैं दिवस संबंधी आलोचना करूं ?

[गुरु कहे—आलोचना करो]

[शिष्य—इसी प्रकार चाहता हूं।]

दिवस सम्बन्धी मुझ से जो अतिचार हुआ हो उसकी आलोचना करता हूं।

३१—आलोयण—सात लाख

आज के चार प्रहर-दिन में मैंनें जिन जीवों की विराधना की हो—

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख दो इन्द्रिय वाले, दो लाख तीन इंद्रिय वाले, दो लाख चार इंद्रिय वाले, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यञ्च पंचेंद्रिय, चौदह लाख मनुष्य। कुल चौरासी लाख जीव-योनियों में से

१—योनि अर्थात् जीव का उत्पत्ति स्थान। कुल मिलाकर जीवों के ८४००००० चौरासी लाख उत्पत्ति स्थान हैं। यद्यपि स्थान तो इससे भी बहुत अधिक हैं; परन्तु वर्ण, गंध, रस, स्पर्श से जितने स्थान समान

[illegible]

(पांचवें अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना)

इत्तो अणुव्वए पंचमम्मि, आयरियमप्पसत्थम्मि।
परिमाण-परिच्छेए, इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥१७॥

धण[1]-धन्न[2]-खित्त[3]-वत्थू[4]-रुप्प सुवन्ने अ कुविअ परिमाणे
दुपए चउप्पयम्मि य, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१८॥

---

१. धन चार प्रकार का है—गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य। जिन्हें गिनकर लेन-देन किया जाता है जैसे नारियल, आम, सुपारी, नारंगी आदि गणिम धन है। गुड़, केसर आदि तोलकर लेन-देन किया जाए वह धरिम धन है। घी, तेल, कपड़ा आदि मापकर लेन देन मेय धन है। सोना, रत्न आदि जो घिसकर, काटकर परीक्षा करके लिया जाए वह परिच्छेद्य धन है।

२. धान्य—गेहूँ, मूंग, उड़द, जौ, चावल आदि धान्य।

३. क्षेत्र तीन प्रकार का है—सेतु, केतु और उभय। जिस खेत में कुएं आदि से अनाज पके वह सेतु, वर्षा के जल से पके वह केतु तथा कुए और वर्षा के जल से पके तो उभय कहलाता है।

४. वास्तु-घर, दुकान आदि—यह भी तीन प्रकार का है—खात, उच्छ्रित, खातोच्छ्रित। इसमें भोयरा आदि खात, उपरांपरी मंजिलें बनाना उच्छ्रित और जिनमें दोनों हों वह खातोच्छ्रित कहलाता है।

भावार्थ १. पर जीव के प्राणों का नाश—जीव हिंसा का विचार—प्राणातिपात।

२. असत्य बोलने का परिणाम—झूठ बोलने का विचार—मृषावाद।

३. दूसरे की वस्तु उसके मालिक की सम्मति बिना लेने की इच्छा करना—चोरी का विचार करना—अदत्तादान।

४. विषय भोग की वांछा करना—मैथुन।

५. नव प्रकार के बाह्य तथा चौदह प्रकार के आभ्यंतर वस्तुओं आदि की इच्छा अथवा मूर्छा करना—परिग्रह।

६. दूसरे पर तीव्र परिणामों से मुख आदि अवयवों को तपाना—गुस्सा-क्रोध।

७. प्राप्त अथवा अप्राप्त वस्तु का अहंकार—गर्व-घमण्ड करना—मान।

८. गुप्त रूप से स्वार्थवृत्ति सिद्ध करने की वांछा—कपट—माया।

९. धनादि संपत्ति को इकट्ठी करके संग्रह करने की मनोवृत्ति—लालच—लोभ।

१०. पौद्गलिक वस्तु पर प्रीति—राग।

११. अप्रिय जीवादि पदार्थों पर अप्रीति—द्वेष।

१२. पर के साथ क्लेश करना—कलह।

१३. दूसरे प्राणी को न देखा हुआ न सुना हुआ झूठा दोष देना—अभ्याख्यान।

१४. अन्य प्राणी के दोष की दूसरों के पास चुगली करना—पैशुन्य।

१५. सुख पाकर हर्ष करना—रति तथा दुःख पाकर शोक करना—अरति।

१६. गुणी अथवा दुर्गुणी जीव की निन्दा करना—पर परिवाद।

धन, धान्य का; क्षेत्र, वास्तु का; सोने, चांदी का; अन्य धातुओं का अथवा शृंगार सज्जा का, मनुष्य, पक्षी तथा चौपाये पशुओं का परिमाण उल्लंघन करने से दिवस सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥१८॥

(छठे व्रत के अतिचारों की आलोचना)

गमणस्स य परिमाणे, दिसासु उड्ढं अहे अ तिरिअं च।
वुड्ढी सइअंतरद्धा, पढमम्मि गुणव्वए निंदे ॥१६॥

शब्दार्थ

उड्ढं—ऊर्ध्व
अहे अ—अधो तथा
तिरिअं च—तिरछी
दिसासु—इन दिशाओं में
गमणस्स य—जाने के
परिमाणे परिमाण की
वुड्ढी वृद्धि करना
सइअंतरद्धा—स्मृति का लोप होना
पढमम्मि—पहले
गुणव्वए निंदे—गुणव्रत में लगे अतिचारों की निंदा करता हूँ।

इसके अतिचारों की इन दो गाथाओं में आलोचना की गई है। वे अतिचार ये हैं:—

(१) जितना धन-धान्य रखने का नियम किया हो उससे अधिक रखना, (२) जितने घर, दुकान, खेत रखने की प्रतिज्ञा की हो उससे ज्यादा रखना, (३) जितने परिमाण में सोना, चांदी का नियम किया हो उससे अधिक रखकर नियम का उल्लंघन करना, (४) तांबा आदि धातुओं तथा शयन आसन आदि अथवा शृंगार सामग्री आदि नियम से अधिक रखना, (५) द्विपद, चतुष्पद को नियमित परिग्रह से अधिक संग्रह के नियम का अतिक्रमण करना।

शब्दार्थ

दुविहे—दो प्रकार के (वाह्य-अभ्यन्तर)
परिग्गहम्मी—परिग्रह के लिये (जो वस्तु ममत्व से ग्रहण की जावे वह परिग्रह)
सावज्जे—पाप वाले
बहुविहे—अनेक प्रकार के
अ—और
आरंभे—आरम्भों को
कारावणे—दूसरे से करवानें से
अ—और (अनुमोदना से)
करणे—स्वयं करने से
पडिक्कमे—प्रतिक्रमण करता हूं। निवृत्त होता है।
देसिअं—दिवस-सम्बन्धी।
सव्वं—छोटे-वड़े जो अतिचार लगें हों उन सवसे

भावार्थ—वाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह के कारण, पाप वाले अनेक प्रकार के आरम्भ दूसरे से करवाते हुए तथा स्वयं करते हुए एवं अनुमोदन करते हुए दिवस सम्पन्धी छोटे-वड़े जो अतिचार लगे हों उन सवसे मैं निवृत्त होता हूं ॥३॥

जं बद्धमिंदिएहिं, चउहिं कसाएहिं अप्पसत्थेहिं।
रागेण व दोसेण व, तं निंदे तं च गरिहामि ॥४॥

शब्दार्थ

जं—जो
वद्धं—वंधा हो
इंदिएहिं—इन्द्रियों से
चउहिं कसाएहिं—चार कषायों से
अप्पसत्थेहिं—अप्रशस्त
रागेण—रागसे (प्रीति अथवा) आसक्ति से
व—अथवा
दोसेण—द्वेष से (अप्रीति से)
व—अथवा
तं निंदे—उसकी आत्मा की साक्षी से निंदा करता हूँ
तं च—और उसकी
गरिहामि—गुरु की साक्षी में गर्हा करता हूँ

[सम्यक्त्व के अतिचारों की आलोचना]

संका कंख विगिच्छा पसंस तह संथवो कुलिंगीसु ।
सम्मत्तस्स इआरे पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥६॥

शब्दार्थ

संका — वीतराग सर्वज्ञ के वचनों में शंका
कंख — परमत की इच्छा करना
विगिच्छा — धर्म के फल में संदेह होना अथवा साधु-साध्वी का मलिन शरीर या वस्त्र देखकर उनकी निन्दा करना
पसंस — मिथ्यादृष्टियों की अथवा उनकी धर्म क्रिया आदि की प्रशंसा करना
तह — तथा
कुलिंगीसु — मिथ्यादृष्टियों का परिचय करना
सम्मत्तस्स इआरे — सम्यक्त्व के अतिचारों से
पडिक्कमे देसिअं सव्वं — दैनिक इन सब दोषों से निवृत्त होता हूँ।

भावार्थ — सम्यक्त्व में मलिनता करने वाले पांच अतिचार हैं जो लगने संभव हैं उनकी इस गाथा से आलोचना की गई है। वे अतिचार इस प्रकार हैं

(१) वीतराग सर्वज्ञ के वचन पर देश (अल्प) से अथवा सर्वथा शंका करना यह शंका अतिचार है। (२) अन्य अहितकारी मत को चाहना यह कांक्षातिचार है। (३) धर्म का फल मिलेगा या नहीं ऐसा संदेह करना अथवा निस्पृह साधु-साध्वियों के मलिन शरीर वस्त्रादि देखकर उनसे घृणा करना अथवा निंदा करना यह विचिकित्सा अतिचार है। (४) मिथ्यात्वियों की अथवा उनकी धर्म क्रिया आदि की प्रशंसा यह प्रशंसा अतिचार है। (५) तथा मिथ्यादृष्टियों से परिचय करना अथवा बनावटी वेश पहनकर धर्म के बहाने लोगों को धोखा देने वाले

ऊपर की चार गाथाओं में से पहली गाथा में—मदिरा, मांस आदि वस्तुओं के सेवन मात्र की और पुष्प, फल, सुगंधित द्रव्यादि पदार्थों का परिमाण से ज्यादा उपभोग-परिभोग करने की आलोचना की गई है ।२०

दूसरी गाथा में सावद्य आहार का त्याग करनेवाले को जो अतिचार लगते हैं उनकी आलोचना है । वे अतिचार इस प्रकार हैं :-

(१) निश्चित किये हुए परिमाण से अधिक सचित्त आहार के भक्षण में, (२) सचित्त से लगी हुई अचित्त वस्तु के जैसे वृक्ष से लगे हुए गोंद तथा बीज सहित पके हुए फल का अथवा सचित्त बीज वाले खजूर, आम आदि के भक्षण में, (३)अपक्व आहार के भक्षण में, (४) दुपक्व आहार के भक्षण में, (५) तथा तुच्छ औषधी-वनस्पतियों के भक्षण में, दिवस संबंधी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ।२१।

तीसरी और चौथी गाथा में पन्द्रह कर्मादान जो बहुत सावद्य होने के कारण श्रावक के लिये त्यागने योग्य हैं उनको त्याग करने के लिये कहा है ।

(१) अंगार कर्म, (२) वन कर्म, (३) शकट कर्म, (४) भाटक कर्म, (५) स्फोटक कर्म, (६) दंत वाणिज्य, (७) लाक्षा (लाख)वाणिज्य, (८) रस वाणिज्य, (९) केश वाणिज्य, (१०) विष वाणिज्य, (११)यंत्र-पीलन कर्म,(१२) निर्लाञ्छन-कर्म, (१३) दव-दाण-कर्म, (१४) शोषण कर्म, (१५) और असती-पोषण-कर्म का त्याग करता हूँ ।।२२-२३।।

आदि । इसे भोग की वस्तु भी कहा है इस का अर्थ है जो वस्तु एक बार काम में आवे वह भोग की वस्तु है ।

यहाँ परिभोग का अर्थ—'परि' का अर्थ है बार-बार अथवा बाहर ऐसा होता है । अर्थात् जो वस्तु बाहर से काम में ली जावे अथवा बार-बार काम में ली जावे—जैसे वस्त्र, पुष्प, स्त्री, खाट, बिछोना, जूता आदि ये परिभोग की वस्तुएं कही जाती हैं । इन्हें उपभोग की वस्तु भी कहा है । *यहाँ उपभोग का अर्थ है—बार-बार काम में आने वाली वस्तुएं ।*

नाना में जीवों की विराधना के विषय में मुझे जो कोई दोष[2] लगा हो उसकी मैं निन्दा करता हूँ ॥७॥

[सामान्यरूप से बारह व्रतों के अतिचारों की आलोचना]

पंचण्हमणुव्वयाणं, गुणव्वयाणं च तिण्हमइआरे ।
सिक्खाणं च चउण्हं, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥८॥

शब्दार्थ

पंचण्हं—पाँच
अणुव्वयाणं—अणुव्रतों के
गुणव्वयाणं—गुणव्रतों के
तिण्हं—तीन
च—और
अइआरे—अतिचारों से
सिक्खाणं—शिक्षाव्रतों के
च—और
चउण्हं—चार
पडिक्कमे देसिअं सव्वं—दैनिक इन सब दोषों से मैं निवृत्त होता हूँ

भावार्थ—पाँच अणुव्रतों, तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों में (इन बारह व्रतों में[3]) दिन सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों उन सब से मैं निवृत्त होता हूँ ॥८॥

[पहले अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना]

पढमे अणुव्वयम्मी, थूलग-पाणाइवाय-विरईओ ।
आयरियमप्पसत्थे, इत्थ पमाय-प्पसंगेणं ॥९॥

---

२. यहाँ दोष की निन्दा की है, पर अतिचार की निन्दा नहीं की; कारण यह है कि श्रावक-श्राविका को छहकाया के आरम्भ का त्याग नहीं होता, अतः अतिचार नहीं कहला सकता इसलिये यहाँ निन्दा मात्र ही की है। पर इसका प्रतिक्रमण किया नहीं। तथा 'दुविहे परिग्गहम्मी' इस तीसरी गाथा में सावद्य तथा अनेक प्रकार के आरम्भ का प्रतिक्रमण किया है अतः इस गाथा में अतिचारों की आलोचना की गई है।

आभरणे—आभूषण के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो
देसिअं—दिन सम्बन्धी
सव्वं—सब दोषों का
पडिक्कमे प्रतिक्रमण करता हूँ, निवृत्त होता हूँ

भावार्थ—स्नान, उवटन, वर्णक, विलेपन, शब्द, रूप, रस, गंध, वस्त्र, आसन और आभरण के विषय में सेवित अनर्थदंड[1] से दिन संबंधी जो छोटे-बड़े अतिचार लगे हों उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥२५॥

---

१. अनर्थ अर्थात् क्षेत्र, घर, धनधान्य, शरीर तथा स्वजन परिजन आदि के प्रयोजन बिना अपनी आत्मा को जो दंड (दोष) लगे यानी बिना प्रयोजन अपनी आत्मा पापकर्म का उपार्जन करे उसे अनर्थदंड कहते हैं। यह चार प्रकार का है :—

१. अपध्यान, २ पापोपदेश, ३. हिंस्र प्रदान और ४. प्रमादाचरित। इनमें (१) आर्त्त और रौद्र ध्यान अपध्यान कहलाते हैं, (२) पाप कार्यों के लिये उपदेश देना, (३) हिंस्रप्रदान कार्य गाथा २४ में कहे हैं। (४) प्रमादाचरण कार्यों को इस गाथा २५ में कहा है जो इस प्रकार हैं—

(१) अयतना से स्नानादि करना अर्थात् त्रस जीवोंवाली भूमि पर अथवा जीव उड़-उड़कर आकर जिस भूमि पर पड़ते हों ऐसी भूमि पर अथवा जल को वस्त्र से अच्छी तरह छाने बिना स्नान करना, (२) उवटन-त्रस जीव सहित उवटन आदि शरीर पर मल कर मैल उतारा हो अथवा उतारा हुआ मैल और मले हुए उवटन आदि को राख आदि में परठव्या (डाला) न हो (राख में न डालने से इसमें जीवोत्पत्ति होती है; पैरों आदि से कुचले जाने से जीव विराधना भी संभव है), (३) रंग लगाना कस्तूरी चंदन आदि कपोल आदि अवयवों पर यतना बिना लगाने से प्राणियों की विराधना होती है। (४) विलेपन-यतना बिना चन्दन केसर आदि का विलेपन करने से संपातिम (उड़-उड़कर आनेवाले) जीवों की विराधना संभव है। (५) शब्द—रात्रि को शोर मचाने अथवा जोर-जोर से बोलने से दुष्ट जीव जागृत होकर हिंसा करेंगे अथवा अन्य सोते हुए लोगों की नींद हराम होगी; इससे उन्हें क्लेश होगा। (६) स्त्री आदि के रूप शृंगार की बातें करके काम विकार जागृत कराना। इसी प्रकार प्रलोभन में डालने के लिए रस, गंध, वस्त्र, आसन, आभूषणों आदि का

भावार्थ—अब[1] यहाँ प्रथम अणुव्रत के विषय में (लगे हुए अतिचारों का प्रतिक्रमण किया जाता है) यहाँ प्रमाद के प्रसंग से अथवा (क्रोधादि) अप्रशस्त[2] भावों का उदय होने से स्थूल-प्राणातिपात-विरमण-व्रत में जो कोई अतिचार लगा हो उनसे मैं निवृत्त होता हूं।

१. वध—पशु अथवा दास-दासी आदि किसी जीव को भी निर्दयतापूर्वक मारना।

२. बन्ध—किसी भी प्राणी को रस्सी, सांकल आदि से बांधना अथवा पिंजरे आदि में बंद करना।

३. अंगच्छेद—अवयवों (कान, नाक, पूंछ, गलकम्बल आदि) अथवा चमड़ी को काटना-छेदना।

४ अइभारे—बहुत बोझा लादना। परिमाण से अधिक बोझा लादना।

---

१. मृषावाद आदि से भी इस पहले व्रत के अतिचार संभव हैं। जैसे कि स्नेह की परीक्षा करने के इरादे से किसी देव ने "राम मर गया है" ऐसा लक्ष्मण से कहा, यह सुनते ही तुरन्त लक्ष्मण मर गया। कुमारपाल राजा के कौतुकवश धन ले लेने से ही वृद्ध की मृत्यु हो गई। तो इस प्रकार चाहे मृषावाद का अतिचार हो तो भी इनके पहले व्रत में ही आलोचना करना उचित है। ऐसा बताने के लिये इस गाथा में 'इत्थ' शब्द रखा है।

२. भूतादि दोष अथवा बीमारी आदि दोष दूर करने के लिए वध-बंध आदि का आचरण हो अथवा देशविरति में से सर्वविरति में जाना यह भी अतिचार हुआ। पर ये सब प्रशस्त होने से इनका प्रतिक्रमण नहीं होता ऐसा बतलाने के लिये गाथा में 'अप्पसत्थे' शब्द लिया है।

[illegible] (३) [illegible] (४) [illegible] बार-बार करना, (५) [illegible] आवश्यकता से अधिक रखना। ये क्रमशः (१) कन्दर्प, (२) कौत्कुच्य, (३) मौखर्य, (४) संयुक्ताधिकरण, (५) उपभोगपरिभोगातिरिक्त नाम के पांच अतिचार हैं।२६

(नवें (सामायिक) व्रत के अतिचारों की आलोचना)

तिविहे दुप्पणिहाणे, अणवट्ठाणे तहा सइविहूणे।
सामाइय वितह-कए, पढमे सिक्खावए निंदे ॥२७॥

शब्दार्थ

तिविहे—तीन प्रकार के
दुप्पणिहाणे—दुष्ट-प्रणिधान-अर्थात् मन, वचन और काया का अशुभ व्यापार
अणवट्ठाणे—अनवस्थान
त हा—तथा
सइविहूणे—स्मरण न रहने से
सामाइय—सामायिक
वितहकए—सम्यक प्रकार से पालन न किया हो, वितथ किया हो
पढमे—पहले
सिक्खावए—शिक्षा व्रत
निंदे—मैं निन्दा करता हूं।

भावार्थ—पहले शिक्षाव्रत में सामायिक[1] को निष्फल करने वाले पांच अतिचार हैं—(१) मनो-दुष्प्रणिधान-मन को काबू में न रखना। मन

---

१. सावद्य व्यापार का तथा दुर्ध्यान का त्याग कर समभाव में रहना और मन वचन काया की एकाग्रता रखना सामायिक नाम का पहला शिक्षा व्रत है। यदि राग-द्वेष का निमित्त हो तो भी समभाव में रहना आवश्यक है।

सहसा-रहस्स-दारे, मोसुवएसे अ कुडलेहे अ।
वियवयस्स इआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१२॥

शब्दार्थ

इत्थ—यहाँ, अब
बीए—दूसरे
अणुव्वयम्मी—अणुव्रत के विषय में
पमाय-प्पसंगेणं—प्रमाद वश
अप्पसत्थे—क्रोधादि अप्रशस्त भाव में रहते हुए
परियूलग—अलिय-वयण-विरईओ-स्थूल असत्यवचन की विरति में
आयरिअं—अतिचार लगा हो।
सहसा—विना विचार किये किसी पर दोष लगाना
रहस्स—एकान्त में बातचीत करने वाले पर दोष लगाना
दारे—स्त्री की गुप्त बात को प्रकट करना
मोसुवएसे—मिथ्या उपदेश अथवा झूठी सलाह देने से
कूडलेहे—और बनावटी लेख लिखना
बीय-वयस्स- दूसरे व्रत के विषय में
अइआरे—अतिचारों से
पडिक्कमे देसिअं सव्वं दिन संबंधी लगे हुए सब दोषों से निवृत्त होता हूँ

भावार्थ—अब दूसरे व्रत के विषय में (लगे हुए अतिचारों का प्रतिक्रमण किया जाता है) यहाँ प्रमाद के प्रसंग से अथवा क्रोधादि अप्रशस्त भाव का उदय होने से स्थूलमृषावाद[1]-विरमण व्रत में जो कोई अतिचार लगा हो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥११॥

---

१. सूक्ष्म और स्थूल दो तरह का मृषावाद (झूठ) है। (१) हंसी दिल्लगी में झूठ बोलना मृषावाद है। इसका त्याग करना गृहस्थ के लिये कठिन है। अतः (२) वह स्थूल मृषावाद का त्याग करता है—जैसे कि क्रोध

देसावगासियस्स [illegible] | [illegible]
व्रत के विषय में | [illegible]
बीए—दूसरे |

भावार्थ—श्रावक का दसवाँ व्रत (दूसरा शिक्षाव्रत) देशावकाशिक है। इस व्रत में छठे व्रत में जो गमनागमन का परिमाण और सातवें व्रत में भोग-उपभोग का जो परिमाण किया हो, उसका प्रतिदिन संक्षेप करना होता है।

अथवा सब व्रतों का प्रतिदिन संक्षेप भी इस व्रत में किया जाता है। इस व्रत के पाँच अतिचार हैं।

(१) आनयन प्रयोग—नियम की हुई हद के बाहर से कोई वस्तु मंगवानी हो तो व्रत भंग के भय से स्वयं न जाकर किसी के द्वारा उसे मंगवा लेना। (२) प्रेष्य प्रयोग—नियमित हद के बाहर कोई चीज भेजनी हो तो व्रत भंग होने के भय से उसको स्वयं न पहुँचाकर दूसरे के द्वारा भेजना। (३) शब्दानुपात-नियमित क्षेत्र के बाहर रहे हुए किसी व्यक्ति को अपने कार्य के लिये साक्षात् बुलाया न जा सके तो खांसी खखार आदि जोर से शब्द करके उसे अपने स्वकार्य को बतलाना अथवा बुला लेना। (४) रूपानुपात—नियमित क्षेत्र के बाहर से किसी को बुलाने की इच्छा हुई तो व्रतभंग के भय से स्वयं न जाकर हाथ, मुंह आदि अंग दिखा कर उस व्यक्ति को आने की सूचना दे देना अथवा सीढ़ी आदि पर चढ़कर दूसरे का रूप देखना। (५) पुद्गलक्षेप—नियमित क्षेत्र के बाहर ढेला, पत्थर आदि फेंककर अपना कार्य बतलाना अथवा अभिमत व्यक्ति को बुला लेना।

ये पाँच अतिचार दूसरे शिक्षा-व्रत—देशावकाशिक[1] व्रत के हैं। इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो उनकी मैं निन्दा करता हूँ[2]।२८

---

१. यह देशावकाशिक व्रत गमनादिक व्यापार से प्राणीवध आदि न

[illegible]
पोसह-विहि-विवरीए [illegible]
[illegible]

भावार्थ [illegible] पौषधोपवास [illegible]
[illegible] । पौषधोपवास [illegible] 'पोष'
अर्थात् धर्म की पुष्टि को [illegible]
[illegible] है—[illegible],
उस [illegible] पौषधोपवास [illegible],
चौदस आदि पर्व तिथि में [illegible]
करने को भी पौषधोपवास कहते हैं । इस व्रत में आहार, शरीर सत्कार,
मैथुन तथा सावद्य व्यापार इन चारों का त्याग करना होता है । इसके
पांच अतिचार हैं । —

(१) संथारा तथा वसति आदि चक्षु से नहीं देखने अथवा
सावधानी से ध्यान पूर्वक नहीं देखने से प्रमाद करना । (२) संथारा तथा
वसति आदि को चरवले आदि से प्रमार्जन न करने से अथवा बराबर
सावधानी से प्रमार्जन न करने से प्रमाद करना । (३) लघुनीति (पेशाब)
बड़ी नीति (दस्त) आदि करने की जगह को चक्षु से नहीं देखने से
अथवा सावधानी से ध्यानपूर्वक न देखने से प्रमाद करना । (४) लघु-
नीति आदि करने की जगह को चरवले आदि से प्रमार्जन न करने से
अथवा बराबर प्रमार्जन न करने से प्रमाद करना । (५) भोजन आदि
की चिन्ता करना कि कब व्रत पूरा हो और कब मैं अपने लिये अमुक
चीज़ बनाऊं और खाऊं । उपलक्षण से शरीर सत्कार आदि के विषय में
भी ऐसे विचार करने से प्रमाद करना । इस प्रकार इन पांच अतिचारों
में से पौषधोपवास व्रत में कोई अतिचार लगा हो उसकी मैं निन्दा
करता हूं ॥२९॥

अप्रशस्त भाव के उदय होने से नित्य अपनी विवाहित स्त्री के सिवाय कोई भी दूसरी (अन्य पुरुष से विवाहित-संग्रहित स्त्री, कंवारी अथवा विधवा, वेश्या अथवा पासवान) स्त्री गमन (मैथुन)[1] विरत्ति में अतिचार लगे ऐसा जो कोई आचरण किया हो, उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥१५॥

(१) किसी ने ग्रहण न की हुई अथवा न विवाही हुई हो ऐसी स्त्री से जैसे कन्या विधवा आदि से सम्बन्ध करना, (२) अल्पकाल के लिये ग्रहण करने में आई हुई स्त्री अर्थात् रखात (पासवान) अथवा वेश्या से

---

१. मैथुन दो प्रकार का है—सूक्ष्म और स्थूल (१) काम के उदय से इन्द्रियों को कुछ विकार आदि हो वह सूक्ष्म मैथुन कहलाता है। (२) मन, वचन, शरीर द्वारा औदारिक अथवा वैक्रीय स्त्री के साथ मैथुन करना स्थूल मैथुन कहलाता है। अथवा मैथुन की विरति रूप जो ब्रह्मचर्य व्रत है वह दो प्रकार का है—सर्व से तथा देश से। (१) स प्रकार से मन, वचन तथा शरीर से सब स्त्रियों के संग का त्याग करन यह सर्व से ब्रह्मचर्य कहलाता है। (२) सर्वथा सब स्त्रियों का त्याग करना वह देश से ब्रह्मचर्य कहलाता है, वह इस प्रकार से समझ चाहिये—श्रावक-गृहस्थी सब प्रकार से मैथुन का त्याग न कर सक हो तो अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार के मैथुन त्याग करे—वह देशव्रत ग्रहण करता है। इस व्रत का नाम स्वदा संतोष तथा परदार गमन विरमण व्रत है। पर का अर्थ है अपनी वि हित स्त्री के सिवाय अन्य मनुष्यनी, देवी अथवा तिर्यंचनी ऐसी स्त्रि का फिर वे चाहे विवाहित हों अथवा रखात हों, विधवा हो चाहे कंवा हो, वेश्या हो चाहे कोई अन्य हो उनके सेवन का त्याग करता हूँ।

उपलक्षण से स्त्री को भी अपने विवाहित पति के अतिरिक्त उ र्युक्त अन्य पुरुषों अथवा दूसरे सब प्रकार के मैथुन को त्याग करना हो है, ऐसा समझें।

(१) साधु का देने योग्य अन्न-पानादि वस्तु को नहीं देने की बुद्धि से अथवा अनाभोग से या सहसाकारादि से सचित्त पदार्थ पर रखकर देना अथवा अचित्त वस्तु में सचित्त वस्तु डाल देना यह पहला सचित्त निक्षेपण अतिचार है। (२) अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढांक देना यह सचित्त पिधान अतिचार है। (३) न देने की बुद्धि से अपनी वस्तु को पराई कहना और देने की बुद्धि से पराई वस्तु को अपनी कहना अथवा साधु की मांगी हुई वस्तु अपने घर होने पर भी "यह वस्तु अमुक आदमी की है वहां जाकर माँगो" ऐसा कहना अथवा अवज्ञा से दूसरे के पास से दान दिलावे अथवा मरे हुए या जीवित पिता आदि को इस दान का पुण्य हो इस उद्देश्य से देवे यह तीसरा 'व्यपदेश नामक अतिचार है। (४) मत्सर आदि कषाय पूर्वक दान देना, यह चौथा मत्सरता नामक अतिचार है। (५) समय बीत जाने पर भिक्षा आदि के लिये निमत्रण करना, यह कालातिक्रम नामक पाँचवा अतिचार है। इनमेसे कोई अतिचार लगा हो तो उसकी मैं निन्दा करता हूँ। ३०

१. साधु साध्वी उत्तम सुपात्र, २· देश विरति श्रावक-श्राविका मध्यम सुपात्र, अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक-श्राविका जघन्य सुपात्र हैं। अतिथि-संविभाग सुपात्र का ही किया जाना है।

अनुग्रह की बुद्धि से साधु को दान देना। इसका नियम लेना—यह अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है।

यह व्रत पौषध के पारणे तो अवश्य लेने का है अर्थात् पौषध के पारणे के दिन साधु को दान देने के बाद ही स्वयं भोजन करना चाहिये। यदि साधु का योग न हो तो भोजन समय द्वार की तरफ़ देखकर शुद्ध भाव से भावना करनी चाहिये कि—"यदि साधु महाराज होते तो मुझे आज बहुत लाभ होता। मेरा कल्याण होता।" इत्यादि भावना करके भोजन करना चाहिये। अथवा श्रावक का अतिथि संभाग करके भोजन करना चाहिये।

पौषध के पारणे के सिवाय अन्य दिनों में भी साधु को दान देकर भोजनादि करना अथवा भोजनादि करके बाद में दान देना इसके लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अर्थात् भोजन के बाद अथवा पहले किसी भी समय श्रावक अथवा साधु का "अतिथि संविभाग" ...

शब्दार्थ

इत्तो—इसके बाद, यहाँ से, अब
इत्थ—यह
परिमाण-परिच्छेए—परिग्रह परिमाण करने रूप व्रत में अतिचार लगे ऐसा
पंचमम्मि—पाँचवें
अणुव्वए—अणुव्रत के विषय में
पमाय-प्पसंगेणं—प्रमाद के प्रसंग से
अप्पसत्थम्मि—अप्रशस्त भाव के उदय होने से
आयरिअं—जो कोई अतिचार किया हो
धण-धन्न-खित्त-वत्थू-रुप्प-सुवन्ने—धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु, चांदी, सोना
अ और
कुविअ-कुप्य तांबा, लोहा आदि अन्य धातुओं के अथवा श्रृंगार सज्जा के
परिमाणे परिमाण के विषय में
दुपए—द्विपद, दास, दासी आदि मनुष्य तथा पक्षी आदि
चउप्पयम्मि—चतुष्पाद, चौपाय, गाय भैंस आदि
पडिक्कमे-देसिअं-सव्वं—दिन संबंधी लगे हुए सब दूषणों से मैं निवृत्त होता हूं।

भावार्थ—अब पाँचवें अणुव्रत के विषय में (लगे हुए अतिचारों का प्रतिक्रमण करता हूँ) यहाँ प्रमाद के प्रसंग से अथवा क्रोधादि अप्रशस्त भावों के उदय से परिग्रह[५]—परिमाण-व्रत (पाँचवें अणुव्रत) में जो अतिचार लगे ऐसा जो आचरण किया हो, उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥१७॥

---

५. परिग्रह दो प्रकार का है—बाह्य और आभ्यंतर। इसमें धन, धान्य आदि का संग्रह यह बाह्य परिग्रह है और रागद्वेषादि आभ्यंतर परिग्रह है। इन दोनों का सर्वथा त्याग साधु को होता है। परिग्रह का सर्वथा त्याग करना अर्थात् किसी चीज पर थोड़ी भी मूर्च्छा न रखना या इच्छा का पूर्ण निरोध करना गृहस्थ के लिये असंभव है। इसलिये। गृहस्थ संग्रह की इच्छा का परिमाण कर लेता है कि मैं अमुक चीज इतने परिमाण में ही रखूंगा, इससे अधिक नहीं, यह पाँचवां अणुव्रत है

घृणा पूर्वक या, निन्दा पूर्वक, या रोष पूर्वक अन्न-पान वस्त्र, पानी आदि देकर अनुकम्पा की हो उसकी मैं निन्दा करता हूँ और गुरु की साक्षी से गर्हा करता हूँ ॥३१॥

(जो साधुओं के लिये करने योग्य न किया हो उसकी आलोचना)

साहूसु संविभागो, न कओ तव-चरण-करण-जुत्ते सु ।
संते फासु-अदाणे, तं निंदे तं च गरिहामि ॥३२॥

शब्दार्थ

साहूसु—साधुओं के विषय में
संविभागो—अतिथि संविभाग
न कओ—न किया हो
तव—तप
चरण-करण—चरण-करण से
जुत्तेसु—युक्त
संते—होने पर भी
फासुअदाणे—प्रासुक, अचित्त, साधु को देने योग्य न दिया हो
तं निंदे—उसकी मैं निन्दा करता हूँ
तं च—तथा उसकी
गरिहामि—मैं गुरु की साक्षी से गर्हा करता हूँ

भावार्थ—निर्दोष अन्न-पानी आदि साधु को देने योग्य वस्तुएं अपने पास उपस्थित होने पर भी तपस्वी, चारित्रशील, क्रियापात्र साधु का योग होने पर भी मैंने प्रमादादि के कारण उसे दान न दिया हो, तो ऐसे दुष्कृत्य की मैं निन्दा करता हूँ और गुरु महाराज की साक्षी में गर्हा करता हूँ ।३२।

(संलेखना (अनशन) व्रत के अतिचारों की आलोचना)

इह-लोए पर-लोए, जीविअ-मरणे अ आसंस-पओगे ।
पंचविहो अइयारो, मा मज्झं हुज्ज मरणंते ॥३३॥

लाख, रस, केश और विष सम्बन्धी

वाणिज्जं —व्यापार

तु—निश्चय

जंत-पिल्लण-कम्मं—यंत्र से पीलने पीसने का काम

निल्लंछणं च और निर्लांछन कर्म

दव-दाणं —दवदान, आग लगाने का काम

सर-दह-तलाय-सोसं— सरोवर-द्रह तालाब, झील आदि को सुखा देने का काम

च—और

असई-पोसं—असती पोषण

वज्जिज्जा श्रावक को छोड़ देने चाहिये।

भावार्थ—सातवां व्रत भोजन और कर्म दो तरह से होता है। भोजन में मद्य मांसादि जो बिल्कुल त्यागने योग्य है उनका त्याग करके बाकी में से अन्न, जल आदि एक ही बार उपभोग में आने वाली वस्तुओं का तथा वस्त्र-पात्र आदि बार-बार उपभोग में आनेवाली वस्तुओं का परिमाण कर लेना। इसी तरह कर्म[1] (व्यापार धंधा आदि) में, अंगार कर्मादि अतिदोष वाले कर्मों का त्याग करके बाकी के कर्मों का परिमाण कर लेना, यह उपभोग[1]-परिभोग-परिमाण रूप दूसरा गुणव्रत अर्थात् सातवां व्रत है।

---

१. कर्म से भी श्रावक को मुख्यतया निरवद्य कर्म (व्यापार-धंधादि) में ही प्रवृत्ति करनी चाहिये। यदि ऐसा न बन पड़े तो अत्यन्त सावद्य तथा विवेकी लोग जिसकी निन्दा करें ऐसे शराबादि मादक पदार्थों का, तथा ऐसे ही हिंसाकारक कर्मों का तो अवश्य ही त्याग करना चाहिये एवं दूसरे कर्मों का भी परिमाण करना चाहिये। इस प्रकार दो प्रकार से भोगोपभोग अथवा उपभोग परिभोग नामक दूसरा गुण व्रत है। इसमें अनाभोगादि से जो कोई दोष लगा हो उसकी निन्दा करनी चाहिये।

[illegible]

(१) ग्रहणा— [illegible] (आवश्यक गुणों [illegible]) [illegible] सामायिक आदि [illegible]) ।

(२) आसेवना— [illegible] नियमों आदि का सेवन करना ।

७. समिति—विवेक पूर्वक प्रवृत्ति करना । इसके पांच भेद हैं; इनका विवेचन आचार्य के ३६ गुणों में कर दिया है ।

८. गुप्ति—मनादि को असत्प्रवृत्ति से रोकना और सत्प्रवृत्ति में लगाना इसके तीन भेद हैं; इनका विवेचन भी आचार्य के ३६ गुणों में कर आये है ।)

९. गारव—अभिमान और लालसा को गारव (गौरव) कहते हैं—

इसके तीन भेद हैं—(१) ऋद्धि गारव, (२) रस गारव और (३) साता गारव ।

(१) धन, पदवी आदि प्राप्त होने पर उसका अभिमान करना और प्राप्त न होने पर लालसा करना । (२) घी, दूध, दही आदि रसों की प्राप्ति होने पर उनका अभिमान करना और प्राप्त न होने पर लालसा करना । (३) सुख व आरोग्य मिलने पर उसका अभिमान करना और न मिलने पर उसकी तृष्णा करना ।

अथवा जाति, कुल, रूप, बल, श्रुत, तप, लाभ और ऐश्वर्यादि का मद करना ।

(आठवें व्रत के विषय में -हिंस्र प्रदान के लिए)

सत्थग्गि-मुसल-जंतग-तण-कट्ठे मंत-मूल-भेसज्जे।
दिन्ने दवाविए वा, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥२४॥

शब्दार्थ

सत्थग्गि-मुसल-जंतग-तण-कट्ठे — शस्त्र, अग्नि, मूसल, चक्की, तृण और काष्ठ के विषय में।
मंत-मूल-भेसज्जे—मंत्र, मूल, तथा औषधि के विषय में।
दिन्ने दवाविए वा—दूसरों को देते हुए और दिलाते हुए
पडिक्कमे देसिअं सव्वं—दिन संबंधी लगे हुए सब दूषणों से निवृत्त होता हूँ।

भावार्थ—अब आठवें व्रत में लगे हुए अतिचारों की आलोचना करता हूँ। शस्त्र, अग्नि, मूसल आदि कूटने के साधन, चक्की आदि दलने, पीसने के साधन, विभिन्न प्रकारके तृण, काष्ठ, मूल और औषधि आदि (बिना कारण) दूसरों को देते हुए और दिलाते हुए (सेवित अनर्थदंड से) दिवस सम्बन्धी छोटे-बड़े जो अतिचार लगे हों, उन सबसे मैं निवृत्त होता हूँ ॥२४॥

(प्रमादाचरण के लिये)

ण्हाणुव्वट्टण-वन्नग-विलेवणे सद्द-रूव-रस-गंधे।
वत्थासण-आभरणे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥२५॥

शब्दार्थ

ण्हाण — स्नान करना
उव्वट्टण-उद्वर्तन — उबटन लगाकर मैल उतारना
वन्नग—रंग लगाना, चित्रकारी करना, रंगीन चूर्ण
विलेवणे — विलेपन
सद्द-रूव-रस-गंधे — शब्द, रूप, रस और गंध के भोगोपभोग के विषय में
वत्थ—वस्त्र के विषय में
आसन—आसन के विषय में

(आठवें (तीसरे गुणव्रत) अनर्थदण्ड विरमण व्रत
के अतिचारों की आलोचना)

कंदप्पे कुक्कुइए, मोहरि-अहिगरण-भोग-अइरित्ते ।
दंडम्मि अणट्ठाए, तइयम्मि गुणव्वए निंदे ॥२६॥

शब्दार्थ

कंदप्पे—कंदर्प के विषय में, काम विकार के विषय में	भोगअइरित्ते—वस्त्र पात्र आदि चीजों को जरूरत से ज्यादा रखना
कुक्कुइए—कौत्कुच्य के विषय में, भांड की तरह हंसी दिल्लगी के विषय में	दंडम्मि-अणट्ठाए—अनर्थदंड विरमण व्रत नाम के
मोहरि—मौखर्य, निरर्थक बोलना	तइयम्मि—तीसरे
अहिगरण—सजे हुए औजार या हथियार तैयार रखना	गुणव्वए—गुणव्रत के विषय में
	निंदे—मैं निंदा करता हूं

भावार्थ—अनर्थदण्ड विरमण व्रत नाम के तीसरे गुणव्रत के विषयमें लगे हुए अतिचारों की मैं निंदा करता हूं। इस व्रत के पांच अतिचार हैं—

(१) इन्द्रियों में विकार पैदा करने वाली कथाएं कहना अथवा हास्यादि वचन बोलना, (२) भृकुटी, नेत्र, हाथ, पग आदि द्वारा विट पुरुषों जैसी हास्य जनक चेष्टाएं करना, हंसी, दिल्लगी या भांडों की तरह

वर्णन करना तथा आलस्य से पानी, आचार, घी, तेल, मीठा आदि के पात्र खुले रखना। साफ़ तथा स्वच्छ मार्ग को छोड़कर हरितकाय तथा अन्य जीवों वाली भूमि पर चलना, पानी आदि डालना, यतना बिना दरवाजे आदि बन्द करना। प्रयोजन बिना पत्र पुष्पादि तोड़ना इत्यादि कार्यों में प्रमादाचरण का समावेश होता है। इन सबका यहां प्रतिक्रमण किया जाता है।

ओहरिअ-भर — भार के उतर जाने पर	व्व — जिसप्रकार से
	भारहो — भारवाहक, कुली

भावार्थ — जिस प्रकार बोझा उतर जाने पर भारवाहक के सिर पर भार कम हो जाता है, उसी प्रकार गुरु के सामने पाप की आलोचना तथा आत्मा की साक्षी से निन्दा करने पर सुश्रावक के पाप अत्यन्त हल्के हो जाते हैं ।४०।

(प्रतिक्रमण करने का फल)

आवस्सएण एएण, सावओ जइ वि बहुरओ होइ ।
दुक्खाणमंत-किरिअं, काही अचिरेण कालेण ।।४१।।

शब्दार्थ

आवस्सएण — आवश्यक द्वारा	होइ — होता है
एएण — इस	दुक्खाणं — दुःखों का
सावओ — श्रावक	अंतकिरिअं — क्षय, नाश, अंत
जइ-वि — यद्यपि	काही — करेगा
बहुरओ — बहुतरज वाला, बहुत कर्म वाला	अचिरेण — थोड़े ही
	कालेण — समय में

भावार्थ — यद्यपि श्रावक (सावद्य आरम्भों में आसक्त होने के कारण) बहुत कर्मों वाला होता है, तो भी इस आवश्यक (सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदनक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान) द्वारा अल्प समय में दुःखों का अन्त करेगा — मोक्ष पायेगा ।।४१।।

(विस्मरण हुए अतिचारों की आलोचना)

आलोअणा बहुविहा, न य संभरिआ पडिक्कमण-काले ।
मूलगुण-उत्तरगणे, तं निंदे तं च गरिहामि ।।४२।।

में घर, व्यापार आदि के कार्यों सम्बन्धी सावद्य व्यापार का चिंतन करना। (२) वचन-दुष्प्रणिधान-वचन का संयम न रखना—कर्कश आदि सावद्य वचन बोलना, (३) काय-दुष्प्रणिधान-काया की चपलता को न रोकना, प्रमार्जन तथा पडिलेहन न की हुई भूमि पर बैठना अथवा पैर आदि फैलाना सिकोड़ना आदि चलना, फिरना आदि, (४) अनवस्थान-अस्थिर बनना अर्थात् सामायिक का समय पूर्ण होने से पहले ही सामायिक पार लेना अथवा जैसे तैसे अस्थिर मन से सामायिक करना, (५) स्मृतिविहीन-ग्रहण किये हुए सामायिक व्रत को प्रमादवश भूल जाना अथवा नींद आदि की प्रबलता के कारण अथवा गृहादिक व्यापार की चिंता के लिये शून्य मन हो जाने से "मैंने सामायिक की है अथवा नहीं?" तथा सामायिक पारने का समय है या नहीं? इत्यादि याद न आवे। ये पांच अतिचार प्रमाद की अधिकता के कारण अनाभोगादिक से होते हैं।

इन पांचों में से कोई भी अतिचार पहले शिक्षाव्रत-सामायिक व्रत में लगा हो तो मैं यहां उसकी निन्दा करता हूँ।२७

(दसवें व्रत के अतिचारों की आलोचना)

आणवणे पेसवणे, सद्दे रूवे अ पुग्गलक्खेवे।
देसावगासिअम्मि, बीए सिक्खावए निंदे॥२८॥

शब्दार्थ

आणवणे— आनयन प्रयोग के विषय में, बाहर से वस्तु मंगाने से।

पेसवणे — प्रेष्य प्रयोग के विषय में, वस्तु बाहर भेजने से।

सद्दे — शब्दानुपात के विषय में, आवाज़ करके उपस्थिति बतलाने से।

रूवे—रूपानुपात के विषय में, हाथ आदि शरीर के अवयवों को दिखला करके।

पुग्गलक्खेवे — पत्थर, कंकड़ आदि पुद्गल फेंकने से।

[illegible]

भावार्थ [illegible] लिये तैयार [illegible] है और [illegible] । मैं [illegible] प्रकार के [illegible] के पापों से निवृत्त होकर [illegible] बीस तीर्थंकरों को वन्दन करता हूँ ।४३।

ीन लोक के शाश्वत तथा अशाश्वत स्थापना जिनको वन्दन)

ावंति चेइआइं, अड्ढे अ अहे अ तिरिअ लोए अ।
व्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ॥४४॥

शब्दार्थ

वंति-चेइआइं - जितने जिनबिंब
ड्ढे – ऊर्ध्वलोक में
और
—अधोलोक में
- तथा
रिअ-लोए -तिर्यगलोक में
—एवं

सव्वाइं ताइं — उन सबको
वंदे - मैं वन्दन करता हूँ
इह — यहाँ
संतो - रहता हुआ
तत्थ वहाँ
संताइं — रहे हुओं को

भावार्थ – ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिरछे लोक में जितने भी ब (तीर्थंकरों की मूर्तियाँ) हैं उन सबको मैं यहाँ रहता हुआ वहाँ हुए (चैत्यों) को वन्दन करता हूँ ।४४।

(ग्यारहवें व्रत के अतिचार)

संथारुच्चारविही-पमाय तह चेव भोयणाभोए ।
पोसहविहि-विवरीए, तइए सिक्खावए निंदे ॥२९॥

शब्दार्थ

चउवीस — चौबीस
जिण — तीर्थंकरों से, जिनेश्वरों से
विणिग्गय — निकली हुई
कहाइ — कथा के द्वारा
वोलंतु — बीतें, व्यतीत हों
मे — मेरे
दिअहा — दिन

भावार्थ - चिरकाल से संचित पापों को नाश करने वाली तथा लाखों जन्म जन्मांतरों का नाश (अन्त) करने वाली और जो सभी तीर्थंकरों के पवित्र मुखकमल से निकली हुई है ऐसी सर्व हितकारक धर्म-कथा में ही; अथवा जिनेश्वरों के नाम का कीर्तन, उनके गुणों का गान और उनके चरित्रों का वर्णन आदि वचन की पद्धति द्वारा ही मेरे दिन-रात व्यतीत हों ।४६।

(जन्मान्तर में भी समाधि तथा बोधि की प्राप्ति के लिये प्रार्थना)

मम मंगलमरिहंता, सिद्धा साहू सूअं च धम्मो अ ।
सम्मद्दिट्ठी, देवा दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥४७॥

शब्दार्थ

मम - मुझे
मंगलं — मंगल रूप हों
अरिहंता — अरिहन्त
सिद्धा — सिद्ध
साहू — साधु
सुअं - श्रुत
च — और
धम्मो - धर्म
सम्मद्दिट्ठी-देवा - सम्यग्दृष्टि देव
दिंतु — देवें, दो
समाहिं — समाधि
च — तथा
बोहिं — बोधि, सम्यक्त्व
च — एवं

भावार्थ — अरिहन्त, सिद्ध, साधु, श्रुत धर्म (अंग उपांग आदि शास्त्र)

सद्भक्त्या देवलोके रविशशिभवने व्यन्तराणां निकाये।
नक्षत्राणां निवासे ग्रहगणपटले तारकाणां विमाने॥
पाताले पन्नगेन्द्रे स्फुटमणिकिरणैर्ध्वस्तसान्द्रान्धकारे।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे॥२॥

शब्दार्थ

सद्भक्त्या—[illegible]

देवलोके—देवलोकों में

रवि शशि भवने—सूर्य तथा चन्द्रमा के भवनों में

व्यन्तराणां—व्यन्तर देवों के

निकाये—निकायों में

नक्षत्राणां—नक्षत्रों के

निवासे—निवासों में, विमानों में

ग्रहगण-पटले—ग्रहों के विमानों में

तारकाणां—तारों के

विमाने—विमानों में

पाताले—पाताल में

पन्नगेन्द्रे—नाग कुमार आदि भवनपतियों के भवनों में

स्फुट मणि किरणै—प्रकट मणियों की किरणों द्वारा

ध्वस्त सान्द्रान्धकारे—नाश हुआ है गाढ़ अन्धकार जिसमें

श्रीमत्—[illegible]

तीर्थंकराणां—तीर्थंकरों की

प्रति दिवसं—प्रतिदिन

अहं—मैं

तत्र—वहाँ

चैत्यानि-वन्दे—शाश्वत जिन प्रतिमाओं को वन्दन करता हूँ

भावार्थ—देवलोकों में, सूर्य तथा चन्द्रमा के भवनों में, व्यंतर देवों के निकायों में, नक्षत्रों के निवास स्थानों (विमानों) में, ग्रहों के विमानों में, तारों के विमानों में, पाताल-अधोलोक में, नागकुमार आदि भवनपतियों के भवनों में, एवं प्रकट मणियों की किरणों द्वारा नाश हुआ है गाढ़ अन्धकार जिसमें ऐसे स्थानों में श्रीमान् (लक्ष्मी वाले—आठ प्राति-

(बारहवें व्रत में संभावित अन्य अतिचारों की आलोचना)

सुहिएसु अ दुहिएसु अ, जा मे अस्संजएसु अणुकंपा।
रागेण व दोसेण व, तं निंदे तं च गरिहामि ॥३१॥

शब्दार्थ

सुहिएसु—सविहितों पर, सुखियों पर
अ—और
दुहिएसु—दुःखियों पर
अ—तथा
जो—जो
मे—मैंने
अस्संजएसु—असंयतों पर, अस्वयतों पर
अणुकंपा—दया, भक्ति, अनुकंपा
रागेण—राग से, ममत्व से
व—अथवा
दोसेण—द्वेष से
तं—उसकी
निंदे—मैं निन्दा करता हूं
गरिहामि—गुरु के समक्ष गर्हा करता हूं

भावार्थ—(१) ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों वाले ऐसे सुविहित साधुओं पर अथवा; वस्त्र पात्रादि उपधि (उपकरण) यथायोग्य होने से ऐसे सुखी साधुओं पर, (२) व्याधि से पीड़ित, तपस्या से खिन्न या वस्त्र-पात्रादि यथायोग्य उपधि से विहीन होने से दुःखी साधुओं पर; (३) (जो गुरु की निश्राआज्ञा अनुसार वर्तते हैं उन्हें अस्वयत कहते हैं ऐसे) अस्वयत साधुओं पर अथवा जो संयमहीन है, पासत्थादि है; या अन्य मत के कुलिंगी ऐसे असंयत साधुओं पर, यदि मैंने राग से अथवा द्वेष से भक्ति की हो अर्थात् चारित्रादि गुण की बुद्धि बिना ही (गुणों को दृष्टि में न रखकर) यह साधु मेरा सम्बन्धी है, कुलीन है या प्रतिष्ठित है इत्यादि राग (ममत्व) के वश होकर भक्ति-अनुकंपा की हो अथवा यह साधु धन-धान्यादि रहित है, कंगाल है, जाति से निकाला हुआ है, भूख से पीड़ित है, इसके पास कोई भी निर्वाह का साधन नहीं, निर्लज्ज होकर बार-बार आता है, यह घिनौना है, इसको कुछ देकर जल्दी निकाल दो इत्यादि

पर्वत पर, हिमाद्रि आदि पर्वतों पर श्रीमान् (आठ प्रातिहार्य तथा अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी वाले) तीर्थंकर देवों की वहाँ विद्यमान शाश्वत जिन प्रतिमाओं को उत्कृष्ट भक्ति से मैं वन्दन करता हू ।।२।।

श्री शैले विंध्यशृंगे विमलगिरिवरे ह्यर्बुदे पावके वा ।
सम्मेते तारके वा कुलगिरिशिखरेऽष्टापदे स्वर्णशैले ।।
सह्याद्रौ वैजयन्ते विपुलगिरिवरे गुर्जरे रोहणाद्रौ ।।
श्रीमत्तीर्थंकराणां, प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ।।३।।

शब्दार्थ

श्री शैले श्री पर्वत पर
विंध्यशृंगे — विंध्याचल पर्वत पर
विमल गिरिवरे — विमल गिरि पर
हि — निश्चय से
अबुर्दे — आबु पर्वत पर
पावके — पावापुरी में, पावागढ़ पर
वा — अथवा
सम्मेते - सम्मेतशिखर पर
तारके — तारंगा जी पर
वा — अथवा
कुलगिरिशिखरे — कुलगिरि शिखर पर
अष्टापदे — अष्टापद पर्वत पर
स्वर्ण शैले — स्वर्णगिरि पर
सह्याद्री सह्याद्री पर्वत पर
वैजयन्ते वैजयन्त में
विपुल गिरिवरे — विपुलगिरि पर
गुर्जरे — गुजरात देश में
रोहणाद्रौ — रोहणाद्रि पर्वत पर
श्रीमत्तीर्थंकराणां — श्रीमान् तीर्थंकरदेवों की
चैत्यानि — प्रतिमाओं को
प्रतिदिवसं — प्रतिदिन
अहं — मैं
वन्दे — वन्दन करता हूं

भावार्थ -- श्री पर्वत पर, विंध्याचल पर्वत पर, विमल गिरि (सिद्धाचल पर्वत) पर, आबु पर्वत पर, पावागढ़ पर अथवा पावापुरी में, सम्मेत शिखर पर्वत पर. तारंगा पर्वत पर, कुलगिरि के शिखर पर, अष्टापद पर्वत पर, स्वर्णगिरि पर, सह्याद्रि पर्वत पर, वैजयन्त पर्वत पर, विपुल पर्वत पर, गुजरात देश में, रोहणाद्रि पर्वत पर बाह्य तथा आभ्यन्तर

शब्दार्थ

इहलोए—इस लोक की
परलोए—परलोक की
जीविअ—जीवित रहने की, जीने की
मरणे—मरने की
अ—और काम भोग की
आसंस—इच्छा का
पओगे—करने में
पंचविहो—पांच प्रकार का
अइयारो—अतिचार
मा—मत, न
मज्झं—मुझ को
हुज्ज—हो
मरणंते—मृत्यु के अन्तिम समय तक, मरण पर्यन्त

भावार्थ—संलेखना व्रत के पांच अतिचार हैं—(१) इहलोकाशंसा-प्रयोग, (२) परलोकाशंसा-प्रयोग, (३) जीविताशंसा-प्रयोग, (४) मरणाशंसा प्रयोग और, (५) कामभोगाशंसा-प्रयोग।

(१) धर्म के प्रभाव से इस मनुष्य लोक के सुख पाने की वांछा करना अर्थात् "मैं यहां से मर कर राजा अथवा सेठ आदि बनूं इत्यादि सुख की वांछा करना यह पहला अतिचार है। (२) धर्म के प्रभाव से परलोक में मैं देव अथवा इंद्र बनूं' इत्यादि सुख की वांछा करना यह दूसरा अतिचार है। (३) अनशन करने के बाद भक्तजनों द्वारा किया हुआ अपना महोत्सव देखकर, सत्कार, सम्मान, बहुमान वन्दनादि देखकर, धार्मिक लोगों द्वारा की हुई अपने गुणों की प्रशंसा सुनकर अधिक जीवित रहने की इच्छा करना यह तीसरा अतिचार है (४) कठिन स्थान पर अनशन करने से, ऊपर कहे हुए बहुमान सत्कार आदि न होने से दुःख से घबड़ाकर, अथवा क्षुधादिक की पीड़ा आदि से जल्दी मरने की इच्छा करना, यह चौथा अतिचार है। (५) मैं यहां से मरकर इस तप के प्रभाव से रूपवान, सौभाग्यवान, ऋद्धिमान आदि बनूं ऐसी कामभोग की इच्छा करना यह पांचवां अतिचार है। ये पांचों प्रकार के अतिचार मेरे मरणांत तक अर्थात् अंतिम श्वासोच्छ्वास तक न हों ऐसी भावना इस गाथा में की गई है। उपलक्षण से सब प्रकार के धर्मानुष्ठानों में इस लोक और परलोक

नामक देश में श्रीमान् तीर्थंकर देवों की वहाँ विद्यमान प्रतिमाओं को मैं भक्ति भाव से वन्दन करता हूँ ।।४।।

श्रीमाले मालवे वा, मलयिनी निषधे मेखले पिच्छले वा।
नेपाले नाहले वा कुवलयतिलके सिंहले केरले वा।
डाहाले कोशले वा, विगलितसलिले जंगले वाढमाले
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ।।५।।

शब्दार्थ

श्रीमाले—श्रीमालदेश में
मालवे—मालवा देश में
वा—अथवा
मलयिनि—मलयगिरि पर
निषधे—निषध गिरि पर
मेखले—पर्वतों की मेखलाओं में
पिच्छले—कीचड़ वाले प्रदेश में
वा—अथवा
नेपाले—नेपाल देश में
नाहले—नाहल देश में
वा—अथवा
कुवलय-तिलके—पृथ्वी के वलय में तिलक समान ऐसे
सिंहले—सिंहल द्वीप में
केरले—केरल देश में
वा—अथवा
डाहाले—डाहाल देश में
कोशले—कोशल देश में
वा—अथवा
विगलितसलिले—निर्जल
जंगले—जंगल देश (मारवाड़)
वाढमाले—वाढमाल देश में
श्रीमत्तीर्थंकराणां—श्रीमान् तीर्थंकर देवों की
तत्र—वहाँ विद्यमान
चैत्यानि—मूर्तियों को
प्रतिदिवसं अहं वन्दे—मैं प्रतिदिन वन्दन करता हूं।

भावार्थ—श्रीमालदेश में, मालवा देश में, अथवा मलयगिरि पर, निषधगिरि पर, पर्वतों की मेखलाओं में, कीचड़ वाले प्रदेशों में, नेपालदेश में, नाहल देश में अथवा पृथ्वी के वलय में तिलक समान सिंहलद्वीप में, केरल

रूप शुभ मनोयोग से प्रतिक्रमण[3] करता हूँ। इस प्रकार सर्वव्रतों के अति-चारों का प्रतिक्रमण करना चाहिये।३४।

(अब विशेष रूप से कहते हैं)

वंदन-वय-सिक्खा-गारवेसु, सण्णा-कसाय-दंडेसु।
गुत्तीसु अ समिईसु अ, जो अइआरो अ तं निंदे ॥३५॥

शब्दार्थ

वंदन—वन्दन
वय—व्रत
सिक्खा—शिक्षा
गारवेसु—गौरव के विषय में
सण्णा—संज्ञा
कसाय—कषाय
दंडेसु—दंड के विषय में
गुत्तिसु—गुप्तियों के विषय में
अ—और
समिईसु—समितियों के विषय में
अ—और
जो—जो
अइआरो—अतिचार
अ—तथा
तं—उसकी
निंदे—मैं निन्दा करता हूँ

भावार्थ—वन्दन[4], व्रत[5], शिक्षा[6], समिति[7] और गुप्ति[8] करने योग्य

---

३. मन द्वारा ही युद्ध करके सातवीं नरक के योग्य कर्म बांधते हुए और फिर तुरन्त आत्मनिन्दा आदि करके केवलज्ञान उपार्जन करने वाले प्रसन्नचन्द्र ऋषि के समान।

४. वन्दन दो प्रकार का है—चैत्यवन्दन और गुरुवन्दन।

५. व्रत—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत इस प्रकार श्रावक के बारह व्रत हैं।

६. शिक्षा—ग्रहणा और आसेवना दो प्रकार की है—

(सम्यक्त्व का माहात्म्य)

सम्मद्दिट्ठी जीवो, जइ वि हु पावं समायरइ किंचि ।
अप्पो सि होइ बंधो, जेण न निद्धंधसं कुणइ ॥३६॥

शब्दार्थ

सम्मद्दिट्ठी—सम्यग्दृष्टि	अप्पो—अल्प, थोड़ा
जीवो—जीव, आत्मा	सि—उसको
जइवि—यद्यपि	होइ—होता है
हु—अवश्य, करना पड़ता है	बंधो—बन्ध, कर्मबन्ध
पावं—पाप को, पापमय प्रवृत्ति को	जेण—क्योंकि
समायरइ—करता है, आचरता है, आरम्भ करता है	न—नहीं
किंचि—कुछ	निद्धंधसं—निर्दयता पूर्वक
	कुणइ—करता है

भावार्थ—सम्यग्दृष्टि जीव (गृहस्थ श्रावक) को यद्यपि (प्रतिक्रमण करने के अनन्तर भी) अपना निर्वाह चलाने के लिये कुछ पाप व्यापार अवश्य करना पड़ता है तो भी उसको कर्मबन्ध अल्प होता है क्योंकि वह निर्दयतापूर्वक पाप व्यापार नहीं करता ॥३६॥

---

१०. संज्ञा—अभिलाषा को कहते हैं, इसके संक्षेप में चार प्रकार हैं—
(१) आहार संज्ञा, (२) भय संज्ञा, (३) मैथुन संज्ञा और (४) परिग्रह संज्ञा ।

११. कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ

१२. दंड—मन दंड, वचन दंड और काय दंड अथवा माया शल्य, निदान शल्य और मिथ्यादर्शन शल्य ये भी दंड कहलाते हैं। प्राणी जिसके द्वारा धर्मरूपी धन का नाश-अपहार कर दंडित हो वह दंड कहलाता है।

भावार्थ—[श्री महावीर प्रभु की स्तुति] श्री महावीर स्वामी जो संसार रूपी दावानल के ताप को शांत करने में जल के समान हैं, महा-मोहनीय कर्म रूपी धूली को उड़ाने में वायु समान है, माया रूपी पृथ्वी को खोदने में तीक्ष्ण हल के समान हैं और मेरु पर्वत के समान धीर (दृढ़ स्थिरता वाले) हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ ।।१।।

[सकल जिनेश्वरों की स्तुति] भक्ति पूर्वक नमन करने वाले सुरेन्द्रों दानवेन्द्रों, और नरेन्द्रों के मुकटों में विद्यमान देदीप्यमान- विकस्वर कमलों की मालाओं द्वारा पूजित तथा शोभायमान एवं भक्त लोगों के मनोवांछित अच्छी तरह पूर्ण करने वाले ऐसे सुन्दर और प्रभावशाली जिनेश्वर देवों के चरणों को मैं अत्यन्त श्रद्धापूर्वक नमन करता हूँ ।।२।।

[आगम स्तुति] इस श्लोक के द्वारा समुद्र के साथ समानता दिखा-कर आगम की स्तुसि की गई है ।

श्री महावीर स्वामी के श्रेष्ठ आगम रूपी समुद्र का मैं आदरपूर्वक अच्छी तरह से सेवन करता हूँ । जैसे समुद्र में अगाध जल होता है वैसे इस आगम रूपी समुद्र में अगाध ज्ञान रहा हुआ है, तथा यह आगम समुद्र श्रेष्ठ शब्दों के रचना रूपी जल के समूह द्वारा मनोहर दीख पड़ता है, लगातार बड़ी-बड़ी तरंगों के उठते रहने से जैसे समुद्र में प्रवेश करना कठिन है वैसे ही यह आगम समुद्र भी जीवदया के सूक्ष्म विचारों से परिपूर्ण होने के कारण इस में भी प्रवेश करना अति कठिन है, जैसे समुद्र के बड़े-बड़े तट होते हैं वैसे ही आगम में भी बडी-बड़ी चूलिकाएँ हैं, जैसे समुद्र मोती, मूँगों आदि से भरपूर है उस प्रकार आगम में भी बड़े-बड़े उत्तम-गम-आलावे (सदृश पाठ) हैं, तथा जिस प्रकार समुद्र का पार किनारा बहुत ही दूरवर्ती होता है वैसे ही आगम का भी पार पाना अर्थात् पूर्ण रीति से मर्म समझना (अत्यन्त मुश्किल) है ।।३।।

[श्रुत देवी की स्तुति] हे श्रुत देवी ! मुझे सर्वोत्तम मोक्ष का वरदान दो अर्थात मैं संसार से पार उतरूँ ऐसा वरदान दो। इस श्लोक में श्रुत

ति—नष्ट करते हैं, उतारते हैं
हि—मंत्रों द्वारा
—उससे
-वह शरीर
इ—होता है
व्वसं—विष रहित
—वैसे ही
विहं—आठ प्रकार के
मं—कर्म को
राग-दोस-समज्जिअं—राग-द्वेष से उपार्जित
आलोअंतो—आलोचना करता हुआ
अ—और
निदंतो—निन्दा करता हुआ
खिप्पं—शीघ्र
हणइ—नष्ट करता है
सुसावओ—सुश्रावक

भावार्थ—जिस प्रकार गारुडिक मंत्र और जड़ी-बूटी मूल को जानने ाला अनुभवी कुशल वैद्य रोगी के शरीर में व्याप्त स्थावर और जंगम ाप को मंत्रादि द्वारा दूर कर देता है और उस रोगी का शरीर विष हित हो जाता है; उसी प्रकार राग-द्वेष से बांधे हुए ज्ञानावरणीय आदि ाठ प्रकार के कर्मों को सुश्रावक गुरु के पास आलोचना करते तथा पनी आत्मा की साक्षी से निन्दा करते हुए शीघ्र क्षय कर डालते ।३८-३९।

(इसी बात को विशेष रूप से कहते हैं)

कय-पावो वि मणुस्सो, आलोइअ निंदिअ गुरु-संगासे ।
होइ अइरेग-लहुओ, ओहरिअ-भरुव्व भारवहो ॥४०॥

शब्दार्थ

य-पावो—कृतपाप, पाप करने वाला
व—भी
णुस्सो—मनुष्य
ालोइअ—अलोचना करके
निंदिअ—निंदा करके
गुरुसगासे—गुरु के पास
होइ—होता है, हो जाता है
अइरेग-लहुओ—अत्यंत हल्का

शब्दार्थ

आलोअणा—आलोचना
बहुविहा—अनेक प्रकार की
न—नहीं
य—और
संभरिआ—याद आई हो
पडिक्कमण काले—प्रतिक्रमण के समय
मूलगुण—मूलगुण
उत्तर गुणे—उत्तरगुण के विषय में
तं निंदे—उसकी मैं निंदा करता हूँ
तं च गरिहामि—तथा उसकी मैं गर्हा करता हूँ

भावार्थ—मूलगुण (पाँच अणुव्रत) और उत्तरगुण (तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत) के विषय में लगे हुए अतिचारों की आलोचना बहुत प्रकार की है; तथापि इन आलोचनाओं में से जो कोई आलोचना प्रतिक्रमण करते समय याद न आई हो उसकी मैं आत्म साक्षी से निन्दा करता हूँ और गुरु की साक्षी से गर्हा करता हूँ ।४२।

(भाव जिनकी वन्दना)

तस्स धम्मस्स केवलि-पन्नत्तस्स—
अब्भुट्ठिओमि आराहणाए, विरओमि विराहणाए ॥
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥४३॥

शब्दार्थ

तस्स—उस
धम्मस्स—धर्म की, श्रावक धर्म की
केवलि—केवलि भगवान के द्वारा
पन्नत्तस्स—कहे हुए
अब्भुट्ठिओ—तैयार, तत्पर, सावधान
मि—मैं
आराहणाए—आराधना के लिये
विरओमि—हटा हूं, विरत हुआ हूँ
विराहणाए—विराधना से
तिविहेण—तीन प्रकार से, मन, वचन, काया से

प्रवृत्त और श्री वीतराग सर्वज्ञ शासन के अमृत को पानकर मोक्ष सुख को पाने के लिये उद्यमशील भव्य जनों का अमंगलों (उपद्रवों) से सुरों तथा असुरों में श्रेष्ठ देवताओं के साथ शक्रेन्द्र सदा रक्षण करो । ४॥

४० जय तिहुअण स्तोत्र

जय तिहुअण-वर-कप्परुक्ख जय जिण-धन्नंतरि,
जय तिहुअण-कल्लाण-कोस दुरिअ-क्करि-केसरि ।
तिहुअण-जण-अविलंघिआण भुवण-त्तय-सामिअ,
कुणसु सुहाइ जिणेस पास थंभणय-पुरट्ठिअ ॥१॥

शब्दार्थ

तिहुअण—तीनों लोकों के लिये
वर—उत्कृष्ट
कप्परुक्ख—कल्पवृक्ष के समान
जिण—जिनेश्वरों में
धन्नंतरि—धन्नवंतरि के सदृश्य
तिहुअण-कल्लाण-कोस—तीन लोक के कल्याणों के ख़ज़ाने
दुरिअ—पाप रूप
करि—हाथियों के लिये
केसरि—सिंह के समान
तिहुअण-जण—तीनों लोकों के प्राणी जिस की
अविलंघिआण—आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते ऐसे
भुवण-त्तय—तीनों लोकों के
सामिअ—नाथ
थंभणय-पुरट्ठिअ—स्तम्भनपुर में विराजमान
पास—हे पार्श्व
जिणेस—जिनेश्वर
जय, जय, जय—तेरी जय हो और बार-बार जय हो
सुहाइ—मेरे लिये सुखादि
कुणसु—करो

भावार्थ—स्तम्भनपुर में विराजमान हे पार्श्व जिनेश्वर ! तुम्हारी जय हो और बार-बार जय हो । तुम तीनों लोकों में उत्कृष्ट कल्पवृक्ष के समान हो ; जैसे वैद्यों में धन्नवन्तरि बड़े भारी वैद्य हैं उसी तरह

(सर्व साधुओं को नमस्कार)

जावंत के वि साहू, भरहे रवय-महाविदेहे अ ।
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंड-विरयाणं ।।४५।।

शब्दार्थ

जावंत—जो
के—कोई
वि—भी
साहू—साधु
भरहेरवय-महाविदेहे—भरत, ऐरावत तथा महाविदेह क्षेत्र में
अ—और
सव्वेसिं तेसिं—उन सबको
पणओ—नमन करता हूं
तिविहेण करना, कराना और अनुमोदन करना इन तीन प्रकारों से
तिदंड विरयाणं—तीन दंड से जो विराम पाये हुए हैं उनको
तीनदंड—मनदंड, वचन दंड, काया दंड, मन से पाप करना—मनदंड, वचन से पाप करना—वचनदंड, शरीर से पाप करना—काया दंड

भावार्थ—भरत, ऐरावत और महाविदेह में विद्यमान जो कोई भी साधु मन, वचन और काया से पाप प्रवृत्ति करते नहीं, कराते नहीं, करते हुए का अनुमोदन नहीं करते; उन सबको मैं वन्दन करता हूं ।४५।

(धर्मकथा आदि द्वारा जीवन व्यतीत हो)

चिर-संचिअ-पाव-पणासणीइ भव-सय-सहस्स महणीए ।
चउवीस-जिण-विणिग्गय-कहाइ वोलंतु मे दिअहा ।।४६।।

शब्दार्थ

चिर—बहुत काल से, चिरकाल से
संचिअ—इकट्ठे किये हुए
पाव—पापों का
भव—भवों को, जन्मों को
सयसहस्स—लाखों
महणीए—मिटाने वाली, मथन

किये ही विद्या, ज्योतिष् मन्त्र, तन्त्र आदि सिद्ध होते हैं, आठ प्रकार की सिद्धियाँ भी जो कि लोक में चमत्कार दिखलाने वाली हैं, सिद्ध होती है और अपवित्र मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं ॥४॥

खुद्द-पउत्ताइ मंत-तंत-जंताइ विसुत्ताइ ।
चर-थिर-गरल-गहुग्ग-खग्ग-रिउवग्ग विगंजइ ॥
दुत्थिय-सत्थ अणत्थ-घत्थ नित्थारइ दयकरि ।
दुरियइ हरउ स पास-देउ दुरिअ-करि-केसरि ॥५॥

शब्दार्थ

खुद्दपउत्तइ—क्षुद्र पुरुषों द्वारा किये गये
मंत-तंत-जंताइ—मंत्र, तंत्र, यंत्रों आदि को
विसुत्तइ—निष्फल कर देता है
चर-थिर-गरल-गहुग्ग-खग्ग रिउ-वग्ग—जंगमविष, स्थिर विष, ग्रह, भयंकर तलवारादि शस्त्रों और शत्रु समुदाय का
विगंजइ—पराभव कर देता है
अणत्थ-घत्थ—अनर्थों से घिरे हुए
दुत्थिय-सत्थ—परेशान प्राणियों को
दयकरि—कृपा कर
नित्थारइ—बचा देता है
दुरिअ-करि-केसरि—पाप रूप हाथियों के लिये शेर समान
पास देउ—पार्श्वनाथ देव !
दुरियइ—पाप
हरउ—दूर करो
स—वह

भावार्थ—हे प्रभो! 'दुरित-करि-केसरी' (पाप रूप हाथियों के लिये शेर समान) इस लिये कहलाते हो कि आप क्षुद्र आदमियों द्वारा किये गये मन्त्र, तन्त्र, यंत्र आदि को निष्फल कर देते हो। सर्प-सोमल आदि के विष को उतार देते हो; ग्रह दोषों को निवारण कर देते हो; भयंकर तलवार आदि शस्त्र अस्त्रों के वारों को रोक देते हो; वैरियों के दलों को छिन्न-भिन्न कर देते हो और अनर्थों में फंसे हुए एवं

हार्य रूप बाह्य लक्ष्मी तथा अनन्त चतुष्टय रूप आभ्यन्तर लक्ष्मी युक्त) तीर्थंकर देवों की वहां विद्यमान शाश्वत जिन प्रतिमाओं को उत्कृष्ट भक्ति से मैं वन्दन करता हूं ॥१॥

वैताढ्ये मेरुश्रृंगे रुचकगिरिवरे कुण्डले हस्तिदंते।
वक्खारे कूटनंदीश्वर-कनकगिरौ नैषधे नीलवंते ॥
चैत्रे शैले विचित्रे यमकगिरिवरे चक्रवाले हिमाद्रौ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वन्दे ॥२॥

शब्दार्थ

वैताढ्ये - वैताढ्य पर्वत में
मेरुश्रृंगे - मेरु पर्वत की चोटी पर
रुचक-गिरिवरे — रुचक द्वीप के पर्वतों में
कुंडले — कुंडल द्वीप में
हस्तिदंते — हस्तिदन्त द्वीप में
वक्खारे—वक्षस्कार पर्वत पर
कूट-नन्दीश्वरे — कूट गिरि तथा नन्दीश्वर द्वीप में
कनकगिरौ—कनकगिरि पर
नैषधे—निषध पर्वत पर
नीलवन्ते—नीलवन्त पर्वत पर

चैत्रे — चैत्र पर्वत पर
विचित्रे —विचित्र पर्वत पर
यमकगिरिवरे -- यमक पर्वत पर
चक्रवाले —चक्रवाल पर्वत में
हिमाद्रौ - हिमाद्रि आदि में
तत्र—वहां रही हुई
श्रीमत् तीर्थंकराणां — बाह्य तथा आभ्यंतर लक्ष्मी युक्त तीर्थंकरों की
चैत्यानि — शाश्वत प्रतिमाओं को
अहं वन्दे — मैं वन्दन करता हूँ
प्रतिदिवसं —प्रतिदिन

भावार्थ — वैताढ्य पर्वत पर, मेरु पर्वत की चोटी पर, रुचक द्वीप के पर्वतों पर कुन्डल द्वीप में, हस्तिदन्त द्वीप में, वक्षस्कार पर्वतों पर, कूट-गिरि पर, नन्दीश्वर द्वीप में, कनक गिरि पर, निषध पर्वत पर' नीलवन्त पर्वत पर, चैत्र पर्वत पर, विचित्र पर्वत पर, यमक पर्वत पर, चक्रवाल

पत्थिय-अत्थ अणत्थ-तत्थ भत्तिब्भर-निब्भर ।
रोमंचंचिय-चारु-काय किन्नर-नर-सुरवर ॥
जसु सेवहि कम-कमल-जुयल पक्खालिय-कलि-मलु ।
सो भुवण-त्तय-सामि पास मह मद्दउ रिउ-बलु ॥७॥

शब्दार्थ

अणत्थ-तत्थ — अनर्थों से पीड़ित
पत्थिय-अत्थ — कल्याण के प्रार्थी
भत्तिब्भर-निब्भर—भक्ति के बोझ से नम्रीभूत
रोमंचचिय —रोमाञ्च-विशिष्ट
चारुकाय —सुन्दर शरीर वाले
किन्नर-नर-सुरवर -किन्नर, मनुष्य और देवताओं में उच्च देवता
जसु - जिसके
पक्खालिय-कलि मलु—कलिकाल के पापों को नाश करनेवाले
कम-कमल जुयल — दोनों चरण कमलों की
सेवहि — सेवा करते हैं
भुवण-त्तय-सामि-पास - तीनों लोकों के स्वामी पार्श्वनाथ प्रभो!
मह रिउ बलु मद्दउ —हमारे वैरियों के सामर्थ्य को चूर-चूर करो

भावार्थ—हे पार्श्वप्रभो ! अनेक अनर्थों से घबड़ाकर भक्ति वश रोमांचित होकर सुन्दर शरीरों को धारण करने वाले उच्च-उच्च किन्नर, मनुष्य और देवता अर्थात् तीनों लोक के प्राणी तुम्हारे चरण कमलों की सेवा करते हैं, जिससे उनके क्लेश और पाप दूर हो जाते हैं, इसी लिये तुम 'भुवन-त्रय स्वामी (तीनों लोकों के स्वामी) कहलाते हो। सो मेरे भी शत्रुओं का बल नष्ट करो ॥७॥

जय जोइय--मण-कमल-भसल भय-पंजर-कुंजर,
तिहुअण-जण-आणंद-चंद भुवण-त्तय-दिणयर ।
जय मइ-मेइणि-वारिवाह जय-जंतु-पियामह,
थंभणय-ट्टिय पासनाह नाहत्तण कुण मह ॥८॥

उनकी सारे तीर्थंकर देवों की वहाँ विद्यमान प्रतिमाओं (मूर्तियों) को भक्ति भाव से मैं वन्दन करता हूँ ॥३॥

आघाटे मेदपाटे क्षितितटमुकुटे चित्रकूटे त्रिकूटे ।
लाटे नाटे च घाटे विटपिघनतटे देवकूटे विराटे ॥
कर्णाटे हेमकूटे विकटतरकटे चक्रकूटे च भोटे ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वंदे ॥४॥

शब्दार्थ

आघाटे — आघाट देश में
मेदपाटे — मेवाड़ देश में
क्षितितटमुकुटे — पृथ्वी तल पर मुकुट समान
चित्रकूटे — चित्तौड़ में
त्रिकूटे — त्रिकूट पर
च — तथा
लाटे नाटे घाटे — लाट देश में नाट घाट आदि प्रदेशों में
विटपिघनतटे — सघन वृक्षों के बीच में
देवकूटे — देवकूट पर्वत पर
विराटे — विराट देश में
कर्णाटे — कर्णाटक देश में
हेमकूटे — हेमकूट पर्वत पर
विकटतरकटे — विकट स्थानों में
चक्रकूटे — चक्रकूट पर्वत पर
च — और
भोटे — भोट देश में
श्रीमत्तीर्थंकराणां — श्रीमान् तीर्थंकरों की
तत्र — वहाँ विद्यमान
प्रतिदिवस — प्रतिदिन
चैत्यानि — मूर्तियों को
अहं वन्दे — मैं वन्दन करता हूँ

भावार्थ—आघाट देश में, मेवाड़ देश में, पृथ्वीतल पर मुकुट समान चित्तौड़ गढ़ में, त्रिकूट पर, तथा लाटदेश में नाट, घाट आदि प्रदेशों में,, सघन वृक्षों के बीच में, देवकूट पर्वत पर, विराट देश में, कर्णाटक देश में हेमकूट नामक पर्वत पर, विकट स्थानों में, चक्रकूट पर्वत पर और भोट

शब्दार्थ

[illegible]
बहु-नाम पसिद्धउ — अनेक नामों से प्रसिद्ध है
जं — जिसका
मुक्ख-धम्म-कामत्थ-काम — मोक्ष, [illegible]
जोइय मण कमल-भसल — योगियों के मन रूपी कमल में भौंरे की तरह रहने वाले
पास — हे पार्श्व प्रभो
सुह पवड्ढउ — सुख बढ़ाओ

भावार्थ — हे पार्श्वनाथ प्रभो ! अपने अपने शास्त्रों में किसी ने आप को 'नाना रूपधारी' किसी ने 'निराकार' और किसी ने 'शून्य' बतलाया है; इसी लिये आपके विष्णु, महेश, बुद्ध आदि अनेक नाम हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को चाहने वाले अनेक दार्शनिक आपका ध्यान करते हैं इसीलिये आप 'योगि-मनः-कमल-भसल' (योगियों के मन रूपी कमल में भौरे की तरह रहने वाले) हैं। आप मेरे सुख की वृद्धि करें ॥६॥

भय-विब्भल रण-झणिर-दसण थर-हरिय-सरीरय,
तरलीय-नयण विसुन्न सुन्न गग्गर-गिर करुणय ।
तइ सहसत्ति सरंत हुंति नर नासिय-गुरुदर
मह विज्झवि सज्झसइ पास भय-पंजर-कुंजर ॥१०॥

देश में अथवा डाहल देश में, कोशल देश में अथवा निर्जल जंगल जैसे मारवाड़ देश में, बाढमाल देश में श्री मान् तीर्थंकर देवों की वहाँ विद्यमान प्रतिमाओं को मैं वन्दन करता हूँ ॥५॥

अंगे-बंगे कलिंगे, सुगतजनपदे सत्प्रयागे तिलंगे।
गौडे चौडे मुरंडे वरतर-द्राविडे, उद्रियाणे च पौंड्रे ॥
आद्रे माद्रे पुलिन्द्रे द्रविडकुवलये, कान्यकुब्जे सौराष्ट्रे ।
श्रीमत्तीर्थंकराणां प्रतिदिवसमहं तत्र चैत्यानि वंदे ॥६॥

शब्दार्थ

अंगे – अंग देश में
बंगे — बंग देश में, बंगाल देश में
कलिंगे — कलिंग देश में
सुगतजनपदे-बौद्ध जनपदों में
सत्प्रयागे — श्रेष्ट प्रयाग तीर्थ में
तिलगे — तिलंग देश में
गौडे-चौडे-मुरंडे वरतर-द्राविड़े — गौड़, चौड़, मुरंड देशों में, अत्यन्त श्रेष्ठ द्राविड़ देश में
उद्रियाणे च – उद्रियान तथा
पौंड्रे – पौंड्र देश में
आद्रे — अनार्य आद्र देश में
माद्रे — माद्रि देश में
पुलिन्द्रे — पुलिन्द्र देश में (भीलों के देश में)
द्रविड-कुवलये — द्रविड़ प्रदेश के पृथ्वी चक्र में
कान्यकुब्जे – कान्यकुब्ज (कनौज) देश में
सौराष्ट्रे सौराष्ट्र देश में
श्रीमत्तीर्थंकराणां – श्रीमान् तीर्थंकरों की
तत्र वहाँ विद्यमान
चैत्यानि प्रतिमाओं का
प्रतिदिवसं — प्रतिदिन
अहं — मैं
वन्दे — वन्दन करता हूँ

भावार्थ — अंग देश में, वंग (बंगाल देश) में, कलिंग देश में, बौद्ध जनपदों में, श्रेष्ठ प्रयाग तीर्थ में, तिलंग देश में, गौड़, चौड़, मुरंड देशों में

जग-जंतुह जणगुण तुल्ल जं जणिय हियावह,
रम्मु धम्मु सो जयउ पासु जग-जंतु-पियामह ॥१५॥

शब्दार्थ

[illegible]
अविरल—निरन्तर
कल्लाण—कल्याण
दलिय—परम्परा
उन्मूलिय—नष्ट किया है
दुह—दुःखों का
धणु—[illegible]
दाविय—दिखलाया गया
सग्ग—स्वर्ग और
पवग्ग—अपवर्ग का, मोक्ष का
मग्ग—मार्ग
दुग्गइ—दुर्गति का
गम—जाना
वारणु—रोकने वाला
जय—जगत के

जंतुह—[illegible]
जणगुण—जनक के, पिता के
तुल्ल—समान
जं—जिनके द्वारा
हियावहु—हितकारी और
रम्मु—रमणीक
धम्मु—धर्म
जणिय—प्रकट किया गया है
सो—वह
जयउ—जयवन्त रहे
पासु—पार्श्वनाथ प्रभु
जय—जगत के
जंतु—प्राणियों के
पियामहु—पितामह, दादा

भावार्थ—वह पार्श्वनाथ प्रभु संसार में विशेष रूप से वर्तमान रहें कि जिन्होंने जीवों का निरन्तर कल्याणों पर कल्याण किया, दुःख मेटे, स्वर्ग और मोक्ष का रास्ता बतलाया, दुर्गति जाते हुए जीवों को रोका, एवं जिन्होंने पिता की तरह जीवों का पालन पोषण किया, सुखकर और हितकर धर्म का उपदेश दिया, इसीलिये जो 'जग जन्तु पितामह' (विश्व के प्राणियों के पितामह-दादा) सिद्ध हुए। अतः आप सदा जयवन्त रहें ॥१५॥

विमुक्तये — विशेष मुक्ति के लिये	जिनेश्वर ने
शक्र: — इन्द्र	दत्त — कहा हुआ
सुर — देव	श्री वर्द्धमान - आचार्य लक्ष्मी से वृद्धि पाते हुए
असुर— भवनपति	जिनदत्त - श्री जिनदत्त सूरि की
वरै: — श्रेष्ठ	मत — आज्ञा में
सह — साथ	प्रवृत्तान - प्रवर्तित
देवताभि: — देवताओं द्वारा	भव्यान् - भव्य
सर्वज्ञ — केवल ज्ञानियों के, जिन के	जनान् — जनों का
शासन — शासन, प्रवचन के	अवतु — रक्षण करो
सुखाय - सुख के लिये	नित्यं - सदा
समुद्यताभि: — उद्यमी	अमंगलेभ्य: — उपद्रवों से
श्रीवर्द्धमान जिन — श्री महावीर	

श्री महावीर प्रभु की स्तुति

भावार्थ —जिन के चरणों को नमस्कार करने से ही प्राणियों की सब विघ्न बाधाएं नाश हो जाती हैं। तथा शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है ऐसे श्री महावीर प्रभु को नमस्कार हो। १॥

चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति

जिन की आज्ञा की आराधना (को पालन करने) में तत्पर ऐसे भव्य प्राणियों के दुःखों का नाश होता है उन ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों को मैं नमस्कार करता हूं। २॥

जैनागम स्तुति

चतुर्विध संघ की स्थापना के समय जिनेश्वरदेवों ने विद्यमान देवताओं के समुदाय के सामने अर्थ से जो आगम कहे हैं तथा गणधर देवों ने उन आगमों की सूत्र रूप से जो रचना की है; वे आगम प्राणियों को विशेष मुक्ति के लिये हों। ३॥

शासनदेव की स्तुति

श्री महावीर स्वामी की आज्ञाओं को पालन करने में प्रवृत्त अथवा अन्तरंग लक्ष्मी की वृद्धि पाने वाले आचार्य जिनदत्त सूरि की आज्ञा में

फणि-फण-फार-फुरंत-रयण-कर-रंजिय-नहयल,
फलिणी-कंदल-दल-तमाल-नीलुप्पल-सामल ।
कमठासुर-उवसग्ग-वग्ग-संसग्ग-अगंजिय,
जय पच्चक्ख-जिणेस पास ! थंभणयपुर-ट्ठिय ॥१७॥

शब्दार्थ

फणि— धरणेन्द्र के
फण – फण में
फुरंत—देदीप्यमान
रयण—रत्नों की
कर—किरणों से
रंजिय – रंगे हुए
नहयल—नभस्थल, आकाश
फलिणी प्रियङ्गु के
कंदल - अंकुर तथा
दल—पत्तों की
तमाल – तमाल की और
नीलुप्पल—काले कमल की तरह
सामल—श्यामल
कमठासुर—कमठ नामक असुर के द्वारा
उवसग्ग—उपसर्गों को
वग्ग—अनेक
संसग्ग—किये गये
अगंजिय –जीत लेने वाले
जय – जय हो
पच्चक्ख प्रत्यक्ष
जिणेस – जिनेश्वर
पास – पार्श्व
थंभणयपुर—स्तम्भनकपुर में
ट्ठिय विराजमान

भावार्थ—पार्श्वनाथ प्रभु ने जब 'कमठ' नामक असुर के उपसर्गों को सहा तब भक्ति वश धरणेन्द्र उन के सकटों को निवारण करने के लिये आया। उस समय धरणेन्द्र की फणो में लगी हुई मणियों के प्रकाश में भगवान् के शरीर की कान्ति ऐसी मालूम होती थी, मानो ये प्रियंगु नामक लता के अंकुर तथा पत्ते हैं या तमाल वृक्ष और नीले कमल हैं। ऐसे हे स्तम्भनकपुर में विराजमान और प्रत्यक्षीभूत पार्श्व जिनेश्वर ! तुम जयवन्त रहो ॥१७॥

कासु न किय निप्फल्ल लल्लि अम्हेहिं दुहत्तिहिं,
तहवि न पत्तउ ताणु किं पि पइं पहु परिचत्तिहिं ॥१९॥

शब्दार्थ

पइं—तुम सरीखे
पहु-परिचत्तिहिं—प्रभु को छोड़ देने वाले
दुहत्तिहिं—दुःखों से व्याकुल
अम्हेहिं—हमारे द्वारा
दीणय-अवलंबिउ—दीनता का अवलंबन करके
किं किं—क्या क्या
न—नहीं
कप्पिउ—कल्पित किया गया
किं किं न—क्या क्या नहीं
ताणु न—शरण नहीं
न कलुण—करुणा स्व
न जंपिउ—कहा नहीं गया
किं न किलिट्ठु—क्या क्या क्लेश स
न चिट्ठिउ—चेष्टा नहीं की गई
कासु—किनके सामने
निप्फल्ल लल्लि न कय—व्यर्थ लल्लो चप्पो नहीं की गई
तहवि—तो भी
किं पि न—कुछ भी नहीं
पत्तउ—प्राप्त किया

भावार्थ—हे देव ! तुम को छोड़कर और दुःखों को पाकर मैंने अपने मन में क्या क्या कल्पनाएं न की, वाणी से क्या क्या दीन वचन न बोले, शरीर के क्या क्या क्लेश न उठाये और किस की लल्लो चप्पो न की, लेकिन सब निष्फल गई और कुछ भी शरण न पाई ॥१९॥

तुह सामिउ तुह माय-वप्पु तुह मित्त पियंकरु,
तुह गइ तुह मइ तुह जिताणु तुह गुरु खेमंकरु।
हउं दुहभर भारिउ वराउ राउ निब्भग्गह,
लीणउ तुह कमकमल-सरणु जिण पालहि चंगह ॥२०॥

भावार्थ—हे जिन ! तुम्हारे स्मरण रूप रसायन से वे लोग भी शीघ्र युवा सरीखे हो जाते हैं, जो ज्वर से जर्जरित हो गये हों ; गलित कोढ़ से जिनके कान बह निकले हों; ओठ गल गये हों; आँखों से कम दीखने लग गया हो; जो क्षय रोग से कृश हो गये हों तथा शूल रोग से पीड़ित हों। इसलिये हे पार्श्वनाथ प्रभो ! तुम 'जगधन्नवंतरि' (संसार भर के धन्वन्तरि) कहलाते हो। अब तुम मेरे भी रोग का नाश करो ॥३॥

विज्जा-जोइस-मंत-तंत-सिद्धिउ अपयत्तिण ।
भुवन-ऽब्भुअ अट्ठविह सिद्धि सिज्झहि तुह नामिण ॥
तुह नामिण अपवित्तओ वि जण होइ पवित्तउ।
तं तिहुअण-कल्लाण-कोस तुह पास निरुत्तउ ॥४॥

शब्दार्थ

तुह नामिण—तुम्हारे नाम से
अपयत्तिण—बिना प्रयत्न के
विज्जा-जोइस-मंत-तंत सिद्धिउ—विद्या, ज्योतिष् मंत्र और तंत्रों की सिद्धि होती है
भुवणऽब्भुअ—जगत को आश्चर्य उपजाने वाली
अट्ठविह सिद्धि—आठ प्रकार की सिद्धियाँ
सिज्झहि—सिद्ध होती है
तुह नामिण—तुम्हारे नाम से
अपवित्तओ वि—अपवित्र भी
जण—मनुष्य
पवित्तउ होइ—पवित्र हो जाता है
तं—इसलिये
पास तुह—हे पार्श्वप्रभो ! तुम
तहुअण-कल्लाण-कोस—त्रिभुवन कल्याण-कोष
निरुत्तउ—कहे गये हो

अर्थ—हे पार्श्वनाथ प्रभो ! तुम 'त्रिभुवन-कल्याण-कोश' इस लिये कहे जाते हो कि तुम्हारे नाम का स्मरण-ध्यान करने से बिना प्रयत्न

पास—हे पार्श्व [illegible]
मह उल्लिउ—मेरा मनोरथ [illegible]
जं न होइ—जो [illegible] सिद्ध न हुआ
तो [illegible]
सा—वह [illegible]
तुह ओहावणु—तुम्हारी लघुता है [illegible]

भावार्थ : हे जिन ! यद्यपि आपके रूप में मुझे किसी प्रेम आदि ने ही दर्शन दिया हो, लेकिन मैं यही जानता हूँ कि मुझे आपने ही स्वीकार किया है; इस लिये अगर मेरा मनोरथ सफल न हुआ तो इसमें आप की ही लघुता है। अतः आप अपनी कीर्ति की रक्षा कीजिये, मेरी अवहेलना करना ठीक नहीं है ॥२९॥

एह महारिय जत्त देव इहु न्हवण—महूसउ,
जं अणलिय-गुण-गहण तुम्ह मुणि-जण-अणिसिद्धिउ ।
एम पसीह सुपासनाह थंभणयपुर-ट्ठिय,
इय मुणिवरु सिरि-अभयदेउ विन्नवइ अणिंदिय ॥३०॥

शब्दार्थ

देव—हे देव !
एह महारिय जत्त—यह मेरी यात्रा
इहु न्हवण-महूसउ—यह स्नान महोत्सव
तुम्ह—तुम्हारा
...लिय-गुण-गहण—यथार्थ गुणों ...गान
जं—जो
मुणि-जण-अणिसिद्धिउ—मुनि जनों से प्रशंसित है
एम—इस लिये
थंभणयपुर-ट्ठिय—स्तम्भनकपुर में विराजमान
सुपासनाह—श्री पार्श्वनाथ

शब्दार्थ

जोइय-मण-कमल-भसल — हे योगियोंके मनोहर कमलों के लिये भौंरे

भय-पंजर-कुंजर—भय रूप पिंजरे के लिये हाथी

तिहुअण-जण-आणंद-चंद — हे तीनों लोकों के प्राणियों को आनन्द देने के लिये चन्द्र

भुवण-त्तय दिणयर-हे तीन जगत के सूर्य

जय - तुम्हारी जय हो

मइ-मेइणि-वारिवाह हे मतिरूप पृथ्वी के लिये मेघ

जय-जंतु-पियामह —हे जगत के प्राणियों के पितामह

जय —तुम्हारी जय हो

थंभणय-ट्ठिय-पासनाह – हे स्तम्भनक पुर में विराजमान पार्श्व नाथ प्रभो

मह नाहत्तण कुण – मुझे सनाथ करो

भावार्थ –हे स्तम्भनपुर में विराजमान पार्श्वनाथ प्रभो ! तुम कमल पर भौंरे की तरह योगियों के मन में बसे हुए हो; हाथी की तरह भय रूप पिंजरे को तोड़ने वाले हो; चन्द्रमा की तरह तीनों लोकों को आनन्द उपजाने वाले हो; सूर्य की तरह तीनों जगत का अन्धकार नष्ट करने वाले हो; मेघ की तरह मति रूप भूमि को सरस बनाने वाले हो और पितामह की तरह प्राणियों का पालन-पोषण करने वाले हो इसी लिये आपको 'जगजन्तु-पितामह' कहते हैं। अतः अब तुम मेरे भी स्वामी बनो ॥८॥

बहु-विहु-वन्नु अवन्नु सुन्नु वन्निउ छप्पन्निहिं,
मुक्ख-धम्म-काम-त्थ-काम नर निय-निय-सत्थिहिं ।
जं ज्झायहि बहु-दरिसणत्थ बहु-नाम-पसिद्धउ,
सो जोइय-मण-कमल-भसल सुहु पास पवद्धउ ॥९॥

जय जय—तेरी जय हो तेरी
    जय हो
गुरु-गरिम—हे प्रधान गौरवशाली
गुरु—गुरो
तिसंझं—तीनों सन्ध्याओं के समय
नमोत्थु—नमस्कार हो
दुहत्त-सत्ताण—दुःखित प्राणियों के
ताणय—रक्षक
जय—तेरी जय हो
थंभणय-ट्ठिय—स्तम्भनकपुर में
    विराजमान
पासजिण—पार्श्व जिन
भविअण—भव्य जन
भीम—भयानक
भवत्थु—संसार को नाश करने
    के लिये अस्त्र के समान
भयवं—हे भगवन्
णंताणंत गुण—अनन्तानंत गुणों
    के धारक
तुज्झ—तुम को

भावार्थ—हे महायशस्विन् ! हे महाभाग ! हे जिन (इष्ट) शुभ फल के दायक ! हे सम्पूर्ण तत्त्वों के जानकार ! हे प्रधान गौरवशाली गुरो ! हे दुःखित प्राणियों के रक्षक ! तेरी जय हो, तेरी जय हो, तेरी बार बार जय हो। हे भव्य जीवों के भयानक संसार के नाश करने के लिये अस्त्र समान ! हे अनन्तानन्त गुणों के धारक भगवन् ! स्तम्भनकपुर में विराजमान पार्श्व प्रभो ! तुझ को तीनों सध्याओं के समय नमस्कार हो ॥१॥

४२—श्रुत देवता की स्तुति

सुवर्ण-शालिनी देयाद् द्वादशांगी जिनोद्भवा।
श्रुतदेवी ! सदा मह्य-मशेष-श्रुत-संपदम् ॥१॥

शब्दार्थ

सुवर्ण शालिनी—सुन्दर सुन्दर
    वर्णवाली
जिनोद्भवा—जिनेश्वर प्रभु की
    हुई
द्वादशांगी—द्वादशांगी रूप
श्रुतदेवी—हे श्रुत देवी
सदा—हमेशा
मह्यम्—मुझे

नमोऽस्तु वर्धमानाय, स्पर्धमानाय कर्मणा ।
तज्जयावाप्तमोक्षाय, परोक्षाय, कुतीर्थिनाम् ॥१॥

येषां विकचारविन्द-राज्या,
ज्यायः क्रम-कमलावलिं दधत्या ।
सदृशैरति सङ्गतं प्रशस्यं,
कथितं सन्तु शिवाय ते जिनेन्द्राः ॥२॥

कषाय-तापार्दित-जन्तु-निर्वृतिं,
करोति यो जैन-मुखाम्बु दोद्गतः
स शुक्र मासोद्भव-वृष्टि-सन्निभो,
दधातु तुष्टिं मयि विस्तरो गिराम् ॥३॥

श्वसित-सुरभि-गन्धा-ऽऽलीढ-भृङ्गी-कुरङ्गं
मुख-शशि-नमजस्रं, बिभ्रति या बिभर्ति ।
विकच-कमल-मुच्चैः सा-ऽस्त्व-चिन्त्य-प्रभावा,
सकल-सुख-विधात्री, प्राणभाजां श्रुताङ्गी ॥४॥

शब्दार्थ

नमोस्तु—नमस्कार है
वर्धमानाय—श्री वर्धमान स्वामी को, श्री महावीर स्वामी को
स्पर्धमानाय—स्पर्धा करने वाले, मुकाबिला करने वाले
कर्मणा—कर्म के साथ, कर्म से

तज्जय—उसपर विजय पाकर, उसे जीतकर
अवाप्त प्राप्त हुए
मोक्षाय—मोक्ष को
परोक्षाय अगम्य, परोक्ष
कुतीर्थिनाम्—मिथ्यात्वियों को, अन्य मत वालों को

शब्दार्थ

घंट टंकार-पविल्लिय—घंटे की आवाज से प्रेरित हुए
वल्लिर-मल्लिय—हिल रही हैं मालाएं जिन की
महल्ल-भत्ति—बड़ी भारी भक्ति वाले
गंजुल्लिय—रोम रंचित
हल्लुप्फलिय—हर्ष से प्रफुल्लित
सुरवर—देवेन्द्र
तुह-कल्लाण महेसु—तुम्हारे कल्याणक महोत्सवों पर
भुवणे वि—इस लोक में भी
महूसव-पवत्तयंति—महोत्सवों को विस्तारते हैं
इय—इस लिये
तिहुअण-आणंद-चंद—तीन लोकों में आनन्द उपजाने के लिये चन्द्रमा
गुणुब्भव पास—गुण की खानि पार्श्व
जय—तुम्हारी जय हो

भावार्थ—देवेन्द्र तुम्हारे कल्याणकोत्सव पर भक्ति की प्रचुरता से रोमांचित हो जाते हैं, उनकी मालाएं हिलने-डोलने लगती हैं और हर्ष के मारे फूले नहीं समाते । तब वे यहाँ भी महोत्सवों की रचना रचते हैं तथा भुवन वासियों को भी आनन्दित करते हैं; इस लिये हे पार्श्व! तुम्हें 'गुणोद्भव' या 'त्रिभुवन-आनन्द-चन्द्र' (तीन लोक में आनन्द उपजाने के लिये चन्द्रमा के समान) कहना चाहिये ।

निम्मल-केवल-किरण-नियर-विहुरिय-तम-पहयर,
दंसिय-सयल-पयत्थ-सत्थ वित्थरिय-पहाभर !
कलि-कलुसिय-जण-घूय-लोय-लोयणह अगोयर,
तिमिरइ निरुहर पासनाह भुवण-त्तय-दिणयर ॥१३॥

प्रभावा — महाशक्ति वाली, प्रभाव वाली
श्रुताङ्गी — श्रुतदेवी
प्राणभाजां — जीवों को
सकल सुख — सम्पूर्ण सुख
विधात्री — देने वाली
अस्तु — हो

श्री महावीर स्वामी की स्तुति

भावार्थ— जो कर्म रूप शत्रुओं के साथ युद्ध करते-करते अन्त में उन पर विजय पाकर मोक्ष को प्राप्त किये हुए हैं तथा जिनका स्वरूप थ्यात्वियों के लिये अगम्य है, ऐसे श्री महावीर प्रभु को मेरा नमस्कार ॥१॥

सर्व तीर्थंकरदेवों की स्तुति

जिन जिनेश्वरों के उत्तम चरण कमलों की पंक्ति को धारण करने ली देवरचित खिले हुए स्वर्ण कमलों की पक्ति के निमित्त से अर्थात् से देखकर विद्वानों ने कहा है कि सदृशों के साथ अत्यन्त समागम होना शंसा के योग्य है (ऐसी कहावत को जिनेश्वर देवों के सुन्दर चरणों ो धारण करने वाली ऐसी देव रचित खिले हुए कमलों की पंक्ति को खकर ही विद्वानों ने प्रचलित किया है) ऐसे जिनेश्वरदेव सब के लिये ल्याणकारी हों—मोक्ष के लिये हों ॥२॥

तीर्थंकरों की स्याद्वादमयी द्वादशांग वाणी की स्तुति

जिनेश्वर देवों की वाणी ज्येष्ठ मास के मेघ वर्षा के समान अति-ीतल है; अर्थात् जैसे ज्येष्ठ मास की वृष्टि ताप से पीड़ित लोगों को ीतलता पहुँचाती है; वैसे ही भगवान की वाणी कषाय से पीड़ित ाणियों को शांति लाभ कराती है ऐसी शांतिदायक वाणी का मुझ पर नुग्रह हो ॥३॥

श्रुत देवी की स्तुति

वह अचिन्त्य प्रभाव वाली श्रुतदेवी प्राणियों को सम्पूर्ण

शब्दार्थ

तुह—तुम्हारे
समरण—स्मरण रूप
जलवरिस—जल की वर्षा से
सित्त—सींची हुई
माणव—मनुष्यों की
मइ—मति रूप
मेइणि—मेदिनी, पृथ्वी
अवरावर—नये-नये
सुहुम—सूक्ष्म
अत्थ—पदार्थों का
बोह—ज्ञान रूप
कंदल—अंकुर और
दल—पत्तों से
रेहिणि—शोभित
जायइ—हो जाती है
फल-भर—फलों के भार से
भरिय—पूर्ण
हरिय—नाश करने वाली
दुह—दुःख और
दाह—ताप का
अणोवम—अनुपम, निरुपम
इय—इस लिये
मइ—मति रूप, बुद्धि रूप
मेइणि—पृथ्वी को
वारिवाह—मेघ
दिस—दो
पास—हे पार्श्वनाथ प्रभो
मइं—बुद्धि
मम—मुझे

भावार्थ—जिस तरह जल के बरस जाने पर पृथ्वी पर नये-नये अंकुर उग आते हैं, उन पर पत्ते और फूल लग आते हैं, दुःख और ताप मिट जाता है और वह (पृथ्वी) अनुपम हो जाती है, इसी तरह तुम्हारे स्मरण होने पर मनुष्य की मति नये नये और सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान कर लेती है, विरक्ति को प्राप्त करती है, संसार के संकट काटती है और अनुपमता धारण करती है, इसी लिये हे पार्श्व प्रभो ! तुम 'मति मेदिनी वारिवाह' (बुद्धि रूप पृथ्वी को मेघ समान) हो। मुझे बुद्धि दो ॥१४॥

कय अविकल-कल्लाण-वल्लि उल्लूरिय दुह-वणु,
दाविय सग्ग-पवग्ग-मग्ग दुग्गइ-गम-वारणु ।

र्ण वाले हैं, कोई प्रवाल जैसे लाल वर्ण वाले हैं, कोई नीलम मणि जैसे
ीले वर्ण के हैं और कोई मेघ जैसे श्याम वर्णवाले हैं। इन पांचों वर्णों
ं सब तीर्थकरों के वर्ण आ जाते हैं। इन सब को मैं वन्दन करता हूं।

ॐ भवणवइ-वाणमंतर-जोइसवासी विमाणवासी य।
जे के वि दुट्ठ-देवा, ते सव्वे उवसमंतु मे ॥२॥ स्वाहा।

शब्दार्थ

जे के वि—जो कोई भी
भवणवइ—भवनपति
वाणमंतर—वाणव्यंतर
जोइसवासी—ज्योतिष देव
य—और
विमाणवासी -विमानवासी देव
ॐ स्वाहा—मंगल और मंत्र के सूचक हैं
दुट्ठ—दुष्ट
देवा—देवता हैं
ते—वे
सव्वे—सब
मे—मेरे लिये
उवसमंतु—शांत हों

भावार्थ—भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक ये चार प्रकार के देव हैं, उन में जो कोई भी दुष्ट देव हों वे सब मेरे लिये उपशांत हों ॥२॥

४६ श्री थंभण पार्श्वनाथ का चैत्यवंदन

श्री-सेढी-तटिनी-तटे पुर-वरे, श्री-स्तम्भने स्वर्गिरौ,
श्री पुज्याभयदेव-सूरि-विबुधाधीशैः समारोपितः।
संसिक्तः स्तुतिभिर्जलैः शिवफलैः स्फूर्जत्फणा-पल्लवः,
पार्श्वः कल्पतरुः स मे प्रथयतां, नित्यं मनो-वांछितम् ॥१॥

भुवणारण्ण-निवास-दरिय-परदरिसण-देवय,
जोइणि-पूयण-खित्तवाल-खुद्दासुर-पसु-वय।
तुह उत्तट्ठ सुनट्ठ सुट्ठु अविसंठुलु चिट्ठहि,
इय तिहुअण-वण-सीह पास पावाइं पणासहि ॥१६॥

शब्दार्थ

भुवणारण्ण — जगत रूप वन में	उत्तट्ठ — घबड़ाये हुए
निवास — रहने वाले	सुनट्ठ — भागे हुए
दरिय — अभिमानी	सुट्ठु — होशियारी से
परदरिसण — पर मत के मिथ्या दृष्टि	अविसंठुलु — निश्चय ही
देवय — देवता	चिट्ठहि — सावधान होकर
जोइणि — योगिनी	इय — इस लिये
पूयण — पूतना	तिहुअण — तीन लोक रूप
खित्तवाल — क्षेत्रपाल	वण — वन के
खुद्दासुर — क्षुद्र असुर रूप	सीह — सिंह
पसुवय — पशुओं के झुंड	पास — हे पार्श्व प्रभो
तुह — तुम से	पावाइं — पापों को
	पणासहि — नष्ट करो

भावार्थ—संसार रूप वनमें रहने वाले मदोन्मत्त परमत के देवता बुद्ध आदि और जोगिनी, पूतना, क्षेत्रपाल एवं तुच्छ असुर रूप पशु गण तुम्हारे डर के मारे बेचारे घबड़ाये, भागे और बड़ी होशियारी से रहने लगे; इसी लिये तुम 'त्रिभुवन वन-सिंह' (तीन लोक रूप वन में सिंह के समान) हो। हे पार्श्वनाथ प्रभो ! मेरे पापों को भी दूर करो ॥१६॥

जसु-तणु-कंति-कडप्प सिणिद्धउ,
सोहइ फणि-मणि-किरणालिद्धउ।
नं नव-जलहर तडिल्लय-लंछिउ,
सो जिणु पासु पयच्छउ वंछिउ।२।

शब्दार्थ

चउक्कसाय-पडिमल्लुल्लूरणु—चार कषायरूपी शत्रु योद्धाओंका नाश करनेवाले।
चउक्कसाय—क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय। पडिमल्ल-सामने लड़नेवाला योद्धा। उल्लूल्लूरणु-नाश करनेवाला।

दुज्जय-मयण-बाण-मुसुमुरणु—कठिनाईसे जीते जायँ ऐसे कामदेवके बाणोंको तोड़ देनेवाले।
दुज्जय-कठिनाईसे जीता जाय ऐसा। मयण-बाण-कामदेवके बाण। मुसुमूरणु-तोड़देनेवाला।

सरस-पियंगु-वण्णु—नवीन (ताजा) प्रियङ्गु लता जैसे वर्णवाले।
सरस-ताजा, नवीन। पियंगु-एक प्रकारकी वनस्पति, प्रियङ्गु। वण्णु-वर्ण, रंग।

गय-गामिउ—हाथीके समान गतिवाले।

जयउ—जयको प्राप्त हों।

पासु—पार्श्वनाथ।

भुवणत्तय-सामिउ—तीनों भुवनके स्वामी।

जसु—जिनके।

तणु-कंति कडप्प—शरीरका तेजोमण्डल।

सिणिद्धउ—कोमल, मनोहर।

सोहइ—शोभित होता है।

फणि-मणि-किरणालिद्धउ—नागमणिके किरणोंसे युक्त।
फणि-नाग। मणि-मस्तकपर स्थित मणि।

नं—वस्तुतः।

जिन-शासनोन्नतिकरा—जिन-शासन की उन्नति करने वाले	[illegible] रत्नत्रयाराधका—[illegible]
आचार्या—आचार्य महाराज	मुनिवरा—[illegible] महाराज
श्रीसिद्धान्तसुपाठका:—सिद्धान्त-[illegible] पढ़ाने वाले	पञ्च—[illegible]
पूज्या उपाध्यायका:—पूजनीय उपाध्याय महाराज	परमेष्ठिन:—[illegible]
	प्रतिदिनं—[illegible]
	वो—[illegible]
	मंगलं कुर्वन्तु—[illegible] करें

भावार्थ—इन्द्रों से पूजित श्री तीर्थंकर देव, मुक्ति में स्थित श्री सिद्धभगवान्, जिनशासन की उन्नति करनेवाले श्री आचार्य महाराज शास्त्र-सिद्धान्त को पढ़ानेवाले पूज्य उपाध्याय महाराज तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र रूप रत्नत्रय के आराधक श्रेष्ठ मुनि महाराज ये पांच परमेष्ठी प्रतिदिन आप का कल्याण करें ।।१।।

५२ साहुवंदण—सुत्तं

अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु ।
जावंत के वि साहू, रयहरण-गुच्छ-पडिग्गह-धारा ।।१।।
पंचमहव्वय-धारा, अट्ठारस-सहस्स-सीलंग-धारा ।
अक्खयायार-चरित्ता, ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि ।।२।।

शब्दार्थ

अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु—जम्बू-द्वीप, धातकीखण्ड, और अर्धपुष्कर-द्वीप में, ढाई द्वीप समुद्रों में

शब्दार्थ

तुहु सामिउ — तुम स्वामी हो
तुहु माय-बप्पु — तुम माता-पिता हो
तुहु पियकर मित्त — तुम प्रिय करनेवाले मित्र हो
तुहु गइ — तुम गति हो
तुहु मइ — तुम मति हो
तुहु खेमंकर-गुरु — तुम कल्याण-कारी गुरु हो
तुहु-जित्ताणु — तुम ही रक्षक हो
हउं — मैं
दुह-भर भारिउ — दुःखों के बोझ से दबा हुआ हूं
वराउ — क्षुद्र ?
[illegible] निब्भग्गह राउ — अत्यन्त भाग्यहीनों का राजा हूं
तुह — तुम्हारे
कम-कमल-सरणु — चरण कमल की शरण में
लीणउ — लीन हो गया हूं, आ गया हूं
जिण — हे जिन
पालहि — रक्षा करो

भावार्थ — हे जिन ! तुम स्वामिन हो, तुम माता पिता हो, तुम प्रिय भलाई करने वाले मित्र हो, तुम से सुमति और सुगति प्राप्त होती है, तुम रक्षक हो और तुम ही कल्याण करने वाले गुरु हो । मैं दुःखों से पीड़ित हूं और बड़े से बड़े हतभाग्यों में शिरोमणि हूं; पर तुम्हारे चरण कमलों की शरण में आ पड़ा हूं; इसलिये मेरी रक्षा करो ॥२०॥

पइ कि वि कय नीरोय लोय कि वि पाविय-सुह-सय,
कि वि मइमंत महंत के वि कि वि साहिय-सिवपय ।
कि वि गंजिय-रिउ-वग्ग के वि जस-धवलिय-भूयल,
मइ अवहीरहि केण पास सरणागय-वच्छल ॥२१॥

शीलाङ्ग-रथ

कुल १८०००

करावे		अनु. करे							
६०००	६०००	६०००							
मनोयोग	वचनयोग	काययोग							
२०००	२०००	२०००							
आहार संज्ञा	भय संज्ञा	मैथुन संज्ञा	परिग्रह संज्ञा						
५००	५००	५००	५००						
श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह	चक्षु निग्रह	घ्राणे० नि०	रसने० नि०	स्पर्शे० नि०					
१००	१००	१००	१००	१००					
पृथ्वी०	अप्	तेउ०	वाउ०	वन०	दो. इ.	तीन इ.	चतु. इ.	पञ्च इ.	अजीव
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
क्षमा	मार्दव	आर्जव	मुक्ति	तप	संयम	सत्य	शौच	अकिञ्चनत्व	ब्रह्मचर्य
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०

५२-लघु-शान्ति

शान्तिं शान्ति-निशान्तं, शान्तं शान्ताशिवं नमस्कृत्य ।
स्तोतुः शान्ति-निमित्तं, मन्त्रपदैः शान्तये स्तौमि ॥१॥

शब्दार्थ

शान्तिं—श्रीशान्तिनाथ भगवान् को ।

शान्ति-निशान्तं—शान्ति के गृह समान ।

शान्तं—शान्तरस से युक्त, प्रशम-रस-निमग्न ।

शान्ताशिवं—जिनने अशिवको शान्त किया है, अशिवका नाश करनेवाले ।

नमस्कृत्य—नमस्कार करके ।

स्तोतुः—स्तुति करनेवाले की ।

शान्ति-निमित्तं—शान्ति के निमित्त, शान्ति करने में निमित्त-भूत ऐसे साधन (तन्त्र) का ।

मन्त्रपदैः—मन्त्रपदों से, मन्त्रगर्भित पदों से ।

शान्तये—शान्ति के लिये ।

स्तौमि—स्तवन करता हूँ, वर्णन करता हूँ ।

भावार्थ : —शान्ति के गृहसमान, प्रशमरस-निमग्न और अशिवका नाश करनेवाले श्रीशान्तिनाथ भगवान् को नमस्कार करके, स्तुति करनेवाले की शान्ति के लिये मैं मन्त्र-गर्भित पदों से शान्ति करने में निमित्त-भूत ऐसे साधन (तन्त्र) का वर्णन करता हूँ ॥१॥

ओमिति निश्चितवचसे, नमो नमो भगवतेऽर्हते पूजाम् ।
शान्तिजिनाय जयवते, यशस्विने स्वामिने दमिनाम् ॥२॥

शब्दार्थ

ओम्—ॐकार, परम-तत्त्वकी विशिष्ट संज्ञा ।

इति—ऐसे ।

निश्चितवचसे—व्यवस्थित वचन-वाले ।

पसीह—मुझ पर प्रसन्न होओ
इय—यह
मुणिवर-सिरि-अभयदेउ—मुनियों में श्रेष्ठ श्री अभयदेव
अणिंदिय जो कि जगत में प्रशंसित है
विन्नवइ—प्रार्थना करता है

भावार्थ :—हे देव ! तुम्हारी यह यात्रा, यह अभिषेक महोत्सव और यह स्तवन, जिसमें कि आप के यथार्थ गुण वर्णन किये गये हैं और जो मुनियों से भी प्रशंसा प्राप्त करने के लायक है, मैंने किया है; इसलिये हे स्तम्भनकपुरस्थित श्री पार्श्वनाथ प्रभो ! प्रसन्न होओ; यह लोक-पूजित साधु प्रवर श्री अभयदेव सूरि विज्ञप्ति करता है ॥३०॥

४१—जय महायस

जय महायस जय महायस जय महाभाग
जय चिंतिय सुह-फलय,
जय समत्थ-परमत्थ-जाणय जय जय गुरु-गरिम गुरु।
जय दुहत्त-सत्ताण ताणय थंभणय-ट्ठिय पासजिण,
भवियह भीम-भवत्थु भयअवं णंताणंत गुण।
तुज्झ तिसंझं नमोत्थु ॥१॥

शब्दार्थ

जय जय जय—तेरी बार-बार जय हो
महायस—हे महायशस्विन्
महाभाग—हे महाभाग
चिंतिय-सुह-फलय—चिंतित शुभ फल के दायक
समत्थ-परमत्थ-जाणय—हे सम्पूर्ण तत्वों के जानकार

शब्दार्थ

सर्वामर-सुसमूह-स्वामिक-सम्पूजिताय — सर्व देवसमूह के स्वामियों द्वारा विशिष्ट प्रकार से पूजित ।

निजिताय — किसीसे नहीं जिताये गये, अजित ।

भुवन-जन-पालनोद्यततमाय — विश्व के लोगों का रक्षण करने में तत्पर ।

सतत — सदा ।

नमः — नमस्कार हो ।

तस्मै — उन श्रीशान्तिनाथ को ।

भावार्थ :— (११) सर्व देवसमूह के स्वामियों द्वारा विशिष्ट प्रकार से पूजित, (१२) अजित और (१३) विश्व के लोगों का रक्षण करने में तत्पर ऐसे श्रीशान्तिनाथको सदा नमस्कार हो ॥४॥

सर्व-दुरितौघ-नाशनकराय सर्वाशिव-प्रशमनाय ।
दुष्ट-ग्रह-भूत-पिशाच-शाकिनीनां प्रमथनाय ॥५॥

शब्दार्थ

सर्व-दुरितौघ-नाशनकराय — समग्र भय-समूहोंका नाश करने वाले ।

सर्वाशिव-प्रशमनाय — सर्व उपद्रवोंका शमन करनेवाले ।

दुष्ट-ग्रह-भूत-पिशाच-शाकिनीनां-प्रमथनाय — दुष्टग्रह, भूत, पिशाच शाकिनियों द्वारा उत्पादित पीड़ाओंका अत्यंत नाश करनेवाले ।

भावार्थ :— (१४) समग्रभय-समूहोंका नाश करनेवाले, (१५) सर्व उपद्रवोंका शमन करनेवाले और (१६) दुष्ट ग्रह, भूत, पिशाच तथा शाकिनियों द्वारा उत्पादित पीड़ाओं का अत्यन्त नाश करनेवाले ऐसे श्रीशान्तिनाथको नमस्कार हो ॥५॥

अशेष—सकल	सम्पदम्—सम्पत्ति
श्रुत—शास्त्रों की	देयात्—देती रहो

भावार्थ—सुन्दर सुन्दर वर्ण वाली, जिनेश्वर प्रभु की कही हुई द्वादशांगी रूप हे श्रुतदेवी ! मुझे सकल शास्त्रों की सम्पत्ति देती रहो ॥१॥

४३—क्षेत्र देवता की स्तुति

यासां क्षेत्र-गताः सन्ति, साधवः श्रावकादयः।
जिनाज्ञां साधयन्तस्ता, रक्षन्तु क्षेत्र-देवताः ॥१॥

शब्दार्थ

यासां—जिनके	आज्ञा को
क्षेत्रगताः—क्षेत्र में रह कर	साधयन्तः—पालते हैं
साधवः—साधु	ताः—वे
श्रावकादयः—तथा श्रावक आदि	क्षेत्रदेवताः—क्षेत्र देवता
जिनाज्ञां—जिन भगवान की	रक्षन्तु—हमारी रक्षा करें

भावार्थ—जिनके क्षेत्र में रहकर साधु तथा श्रावक आदि जिन भगवान की आज्ञा को पालते हैं वे क्षेत्र देवता हमारी रक्षा करें ॥१॥

४४ 'नमोऽस्तु वर्धमानाय'

इच्छामो अणुसट्ठिं नमो खमासमणाणं।

शब्दार्थ

इच्छामो—हम चाहते हैं	खमासमणाणं—क्षमाश्रमणों को
अणुसट्ठिं—गुरु आज्ञा	णमो—नमस्कार हो

भावार्थ—हम गुरु आज्ञा चाहते हैं—क्षमाश्रमणों (मुनिराजों) को नमस्कार हो।

विजये ! — हे विजया !

सुजये ! — हे सुजया !

परापरैः — परापर और अन्य रहस्यों से ।

अजिते ! — हे अजिता !

अपराजिते ! — हे अपराजिता !

जगत्यां — जगत् में, जगत में ।

जयति — जयको प्राप्त होती है ।

इति — इसलिये ।

जयावहे ! — हे जयावहा !

भवति — हे भवती !

भावार्थ : — हे भगवती ! हे विजया ! हे सुजया ! हे अजिता ! हे अपराजिता ! हे जयावहा ! हे भवती ! आपकी शक्ति परापर और अन्य रहस्यों से जगत् में जयको प्राप्त होती है, इस लिये आपको नमस्कार हो ॥७॥

सर्वस्यापि च सङ्घस्य, भद्र-कल्याण-मङ्गल-प्रददे ! ।
साधूनां च सदा शिव-सुतुष्टि-पुष्टि-प्रदे ! जीयाः ॥८॥

शब्दार्थ

सर्वस्य — सकल ।

अपि च — और ।

सङ्घस्य — सङ्घको ।

भद्र-कल्याण-मङ्गल-प्रददे ! — भद्र, कल्याण और मङ्गल देनेवाली !

साधूनां — साधुओंको, श्रमणसङ्घ को ।

च — उसी प्रकार ।

सदा — निरन्तर, सदा ।

शिव-सुतुष्टि-पुष्टि-प्रदे ! — निरुपद्रवी वातावरण, तुष्टि और पुष्टि देनेवाली ।

जीयाः — आपकी जय हो ।

भावार्थ : — सकलसङ्घको भद्र, कल्याण और मङ्गल देनेवाली, उसी प्रकार श्रमण-सङ्घको सदा निरुपद्रवी वातावरण, तुष्टि और पुष्टि देनेवाली हे देवी ! आपकी जय हो ॥८॥

येषां—जिनके
विकच—खिले हुए, विकस्वर
अरविन्द—कमलों की
राज्या—पंक्ति के निमित्त से
ज्याय:—सुन्दर, प्रशंसनीय
क्रमकमल—चरण कमल की
आवलि—पंक्ति को, श्रेणि को
दधत्या—धारण करने वाली
सदृशै:—समान के साथ
इति—इस प्रकार
सङ्गतं—मेल, समागम, संगत
प्रशस्यं—प्रशंसा करने योग्य
कथितं—कहा है
सन्तु—हो
शिवाय—मोक्ष के लिये, कल्याण के लिये
ते—वे
जिनेन्द्रा:—जिनेश्वरों
कषाय—कषाय रूप
ताप—ताप से
आर्दित—पीड़ित, दु:खी
जन्तु—प्राणियों को
निर्वृति—शांति
करोति—करता है
यो—जो
जैन—जिनेश्वर के, जिनेश्वर सम्बन्धी
मुख—मुख रूप
अम्बुद्—मेघ से
उद्गत:—प्रगट हुआ, उत्पन्न हुआ
स—वह
शुक्रमास—ज्येष्ठ मास में
उद्भव—होने वाली
वृष्टि—वृष्टि के, वर्षा के
सन्निभो—समान
दधातु—करो, धारण करो
तुष्टिं—तुष्टि, संतोष, अनुग्रह
मयि—मुझ पर
विस्तरो—विस्तार
गिराम्—वाणी का
या—जो
श्वसित—श्वास की
सुरभिगंध—सुगन्ध में
आलीढ—मग्न
भृङ्गी-कुरङ्ग—भंवरे रूपी हरिण वाले
मुख-शशिनं—मुख चन्द्र को
विभ्रति—धारण करती हुई
सा—वह
उच्चै:—सुन्दर रीति से
विकचकमलं—विकसित कमल
विभर्ति—धारण करती है
अचिन्त्य—अचिन्त्य

शब्दार्थ

भक्तानां जन्तूनां—कनिष्ठ उपासकों का ।

शुभावहे ! शुभ करनेवाली ।

नित्यम् सदा ।

उद्यते !—उद्यमवती !, तत्पर रहनेवाली !

देवि ! – हे देवि !

सम्यग्दृष्टीनां –सम्यग्दृष्टिवाले जीवों को ।

धृति-रति-मति-बुद्धि-प्रदानाय—धृति, रति, मति और बुद्धि देने में सदा तत्पर । धृति-स्थिरता । रति-हर्ष । मति-विचार-शक्ति । बुद्धि-अच्छे बुरेका निर्णय करने वाली शक्ति ।

जिनशासन-निरतानां शांति-नतानां च—जैनधर्म में अनुरक्त तथा शान्तिनाथ भगवान्को नमन करनेवाली ।

जगति—जगत् में ।

जनतानां—जनता के लिये ।

श्री-सम्पत्-कीर्ति-यशो वर्धनि !—लक्ष्मी, सम्पत्ति, कीर्ति और यशमें वृद्धि करनेवाली ।

जय—आपकी जय हो ।

देवि !—हे देवि !

विजयस्व—आपकी विजय हो ।

भावार्थ—कनिष्ठ उपासकोंका शुभ करनेवाले, सम्यग्दृष्टिवाले जीवों को धृति, रति, मति और बुद्धि देनेमें सदा तत्पर रहनेवाली, जैनधर्ममें अनुरक्त तथा शान्तिनाथ भगवान्को नमन करनेवाली जनताके लिये लक्ष्मी, सम्पत्ति, कीर्ति और यशमें वृद्धि करनेवाली हे देवि ! आपकी जगत्में जय हो ! विजय हो ! ॥ १० – ११ ॥

सलिलानल-विष-विषधर-दुष्टग्रह-राज-रोग-रण-भयतः।
राक्षस-रिपुगण-मारी-चौरेति-श्वापदादिभ्यः ॥१२॥
अथ रक्ष रक्ष सुशिवं, कुरु कुरु शान्ति च कुरु कुरु सदेति ।
तुष्टिं च कुरु कुरु पुष्टिं, कुरु कुरु स्वस्तिं च कुरु कुरु त्वम् ॥१३॥

पुष्प भी देने वाली हो, तो आम्रवृक्ष की सुगन्ध से आकृष्ट भ्रमर वाली कुबेर आदि कुन्दनकुट को धारण करती हुई सुन्दर विकसित कमल को धारण करती है ॥८॥

४५—ॐ वरकणय

ॐ वर-कणय-संख-विद्दुम-मरगय
घण-सन्निहं-विगय-मोहं ॥
सत्तरिसयं जिणाणं सव्वामर-पूइयं वंदे ॥१॥

शब्दार्थ

वर कणय—श्रेष्ठ सुवर्ण
संख—शंख
विद्दुम—विद्रुम, परवाला
मरगय—मरकत, नीलम मणि
घण सन्निहं—मेघ जैसे वर्ण वाले
विगय मोहं—जिनका मोह नष्ट
हो गया है ।
सव्वामर पूइयं—सब देवों द्वारा
पूजित
सत्तरिसयं—एक सौ सत्तर
जिणाणं—जिनेश्वरों को
वंदे—मैं वन्दन करता हूं

भावार्थ :—यहां एक सौ सत्तर[1] तीर्थंकरों को वन्दन किया है। ये सब मोह रहित हैं तथा सब देवताओं से पूजित हैं एवं उनके वर्ण भिन्न-भिन्न हैं। कोई श्रेष्ठ सुवर्ण समान पीले वर्ण के हैं, कोई शंख जैसे सफेद

१—एक साथ उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) १७० तीर्थंकर ढाई द्वीप में होते हैं। ऐसा समय इस अवसर्पिणी काल में वर्तमान चौबीसी में श्री अजितनाथ के समय में था। उस समय पांचों भरत में एक-एक, पांचों ऐरावत में एक एक तथा पांचों महाविदेह के प्रत्येक के बत्तीस विजय और प्रत्येक विजय में एक-एक तीर्थंकर हुए; इस प्रकार सब मिलाकर—५+५+(३२×५)=५+५+१६०=१७० संख्या हुई।

भावयति वा यथायोगम् — यथा मन्त्रयोगके नियमानुसार उसकी भावना करता है।
स — वह
हि — निश्चय
शान्तिपदं [illegible]
पद को।
यायात् — प्राप्त करे।
सूरिः श्रीमानदेवः च — श्रीमानदेवसूरि भी।

भावार्थ — और जो इस स्तवको सदा भावपूर्वक पढ़ता है, दूसरोंके पाससे सुनता है, तथा मन्त्रयोगके नियमानुसार उसकी भावना करता है, वह निश्चय ही शान्तिपदको प्राप्त करता है। सूरि श्रीमानदेव भी शान्तिपदको प्राप्त करें ॥१७॥

उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्न-वल्लयः।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ॥१८॥

शब्दार्थ

उपसर्गाः—उपसर्ग, आपत्तियाँ।
क्षयं यान्ति—नष्ट होते हैं।
छिद्यन्ते—कट जाती हैं।
विघ्न-वल्लयः—विघ्नरूपी लताएँ।
मनः—मन।
प्रसन्नताम् एति—प्रसन्नता को प्राप्त होता है।
पूज्यमाने जिनेश्वरे—जिनेश्वर देव का पूजन करने से

भावार्थ—श्री जिनेश्वर देवका पूजन करनेसे समस्त प्रकारके उपसर्ग नष्ट होते हैं, विघ्नरूपी लताएँ कट जाती हैं और मन प्रसन्नताको प्राप्त होता है ॥१८॥

सर्व मङ्गल-माङ्गल्यं, सर्व-कल्याणकारणम्।
प्रधानं सर्व-धर्माणां, जैनं जयति शासनम् ॥१९॥

सर्व मङ्गल माङ्गल्यं—अर्थ पूर्ववत्०

नव-जलहर—नवीन मेघ।
नव-नवीन। जलहर-मेघ, बादल।
तडिल्लय-लंछिउ—बिजलीसे-युक्त
तडिल्लय-बिजली। लंछिउ-युक्त, सहित।
सो—वह, वे
जिणु—जिन
पासु—श्रीपार्श्वनाथ।
पयच्छउ—प्रदान करें।
वंछिउ-वाञ्छित, मनोवाञ्छित।

भावार्थ चार कषायरूपी शत्रु-योद्धाओंका नाश करनेवाले, कठिनाई से जीते जायँ ऐसे कामदेवके बाणोंको तोड़देनेवाले, नवीन प्रियङ्गुलताके समान वर्णवाले, हाथीके समान गतिवाले, तीनों भुवनके स्वामी श्री-पार्श्वनाथ जय को प्राप्त हों ॥१॥

जिनके शरीर तेजोमण्डल मनोहर है, जो नागमणिकी किरणोंसे युक्त और जो वस्तुतः बिजलीसे युक्त नवीन मेघ हों, ऐसे शोभित हैं वे श्री पार्श्वजिन मनोवाञ्छित फल प्रदान करें ॥२॥

५१–अर्हन्तो भगवन्त।

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धि-स्थिता,
आचार्या जिन-शासनोन्नति-कराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्री सिद्धान्त-सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः।
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥१॥

शब्दार्थ

इन्द्रमहिताः—इन्द्रों से पूजित
अर्हन्तो भगवन्त—अरिहत भग-वान
च—और
सिद्धिस्थिता सिद्धाः—मुक्ति में स्थित सिद्ध भगवान

प्रश्न [illegible]

उत्तर [illegible]

(१) [illegible] का [illegible] ([illegible] आदि)।

(२) अग्नि का भय।

(३) विष का भय।

(४) सर्प का भय।

(५) दुष्टग्रह का भय।

(६) राजा का भय।

(७) रोग का भय।

(८) युद्ध का भय, (लड़ाई-झगड़ा, आक्रमण आदि का भय)।

प्रश्न शान्ति-स्तव का पाठ करने से कौन-से उपद्रव शान्त होते हैं?

उत्तर—शान्ति-स्तव का पाठ करने से नीचे लिखे उपद्रव शान्त होते हैं :—

(१) राक्षस का उपद्रव।

(२) शत्रु-समूह का उपद्रव।

(३) महामारी (प्लेग आदि बड़ा रोगो) का उपद्रव।

(४) चोर का उपद्रव।

(५) ईतिसंज्ञक-उपद्रव (१) अतिवृष्टि होना, (२) बिलकुल वृष्टि न होना, (३) चूहों की वृद्धि होना, (४) पतंग आदि का आधिक्य होना, (५) शुकों की बहुलता, (६) अपने राज्य-मण्डल में आक्रमण होना और (७) शत्रु-सैन्य की चढ़ाई, ये सात ईतिसंज्ञक उपद्रव हैं।)

(६) हिंसक (शिकारी) पशुओं का उपद्रव।

(७) भूत-पिशाच का उपद्रव।

अणशोधे, अणपवेसे, असज्झाय—अणो (ण) ज्झाय-मांहे श्रीदश
वैकालिक—प्रमुख सिद्धांत भण्यो—गुण्यो, श्रावक—तणे ध
स्थविरावली, पडिक्कमण, उपदेशमाला—प्रमुख सिद्धांत भण्यो-
गुण्यो; काल —वेलाए काजो अणउद्धर्ये पढ्यो ।

ज्ञानोपगरण पाटी, पोथी, ठवणी, कवली, नोकारवाली, सांपड
सांपडी, दस्तरी, वही ओलिया—प्रमुख प्रत्ये पग लाग्यो, थूंके क
अक्षर मांज्यो, ओशीसे धर्यो, कन्हे छतां आहार—नीहार कीधो

ज्ञान—द्रव्य भक्षतां उपेक्षा कीधी, प्रज्ञापराधे विणास्यो, विणसत
उवेख्यो, छती शक्तिए सार—संभाल न कीधी ।

ज्ञानवंत प्रत्ये द्वेष—मत्सर चितव्यो, अवज्ञा—आशातना कीधं
कोई प्रत्ये भणतां—गणतां अंतराय कीधो, आपणा जाणपणा—तण
गर्व चितव्यो, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन.पर्यवज्ञान, केवल
ज्ञान, ए पंचविध ज्ञान—तणी असद्दहणा कीधी ।

कोई तोतडो, बोबडो [देखी] हस्यो, वितर्क्यो, अन्यथ
प्ररूपणा कीधी ।

ज्ञानाचार—विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष - दिवसमां
सूक्ष्म, बादर जाणतां, अजाणतां हुओ होय, ते सविहु मने, वचन
कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥१॥

दर्शनाचारे आठ अतिचार—

निस्संकिय निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी अ ।
उववूह–थिरीकरणे, वच्छल्ल–पभावणे अट्ठ ॥ १ ॥

धर्म—तणे विषे निःशंकपणुं न कीधुं, तथा एकान

चारित्राचारे आठ अतिचार

पणिहाण–जोग–जुत्तो, पंचहिं समिईहिं तीहिं गुत्तीहिं।
एस चरित्तायारो, अट्ठविहो होइ नायव्वो ॥१॥

ईर्या—समिति ते अणजोये हींड्या, भाषा—समिति ते सावद्य वचन बोल्या, एषणा—समिति ते तृण, डगल, अन्नपाणी, असूजतुं लीधुं, आदान—भंडमत्त निक्खेवणा—समिति ते आसन, शयन, उपकरण, मातरुं प्रमुख अणपुंजी जीवाकुल भूमिकाए मूक्युं, लीधुं, पारिष्ठापनिका—समिति ते मलमूत्र, श्लेष्मादिक अणपुंजी जीवाकुल भूमिकाए परठव्युं।

मनो—गुप्ति—मनमां आर्त्त–रौद्रध्यान ध्यायां, वचन—गुप्ति—सावद्य वचन बोल्यां, काय—गुप्ति—शरीर अणपडिलेह्युं हलाव्युं, अणपुंजे बेठा।

ए अष्ट प्रवचन—माता साधु—तणे धर्मे सदैव अने श्रावक—तणे धर्मे सामायिक पोसह लीधे रूडी पेरे पाल्यां नहीं, खंडणा—विराधना हुई।

चारित्राचार—विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष—दिवस-मांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वचने काया ए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥१॥

विशेषत: श्रावक—तणे धर्मे श्रीसम्यक्त्व—मूल बार व्रत [तेमां] सम्यक्त्व—तणा पांच अतिचार—

'संकाकंखविगिच्छा०' ॥

इस्या गुण भणी न मान्या, न पूज्या, महासती महात्मानी इहलोक परलोक संबंधीया भोग—वांछित पूजा कीधी।

रोग, आतंक, कष्ट आव्ये खीण वचन भोग मान्या, महात्माना भात, पाणी, मल, शोभा—तणी निंदा कीधी, कुचारित्रीया देखी चारित्रीया उपर कुभाव हुओ, मिथ्यात्वी—तणी पूजा—प्रभावना देखी प्रशंसा कीधी, प्रीति मांडी, दाक्षिण्य—लगे तेहनो धर्म मान्यो, कीधो। श्रीसम्यक्त्व—विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष—दिवसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वचने कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥१॥

पहेले स्थूल प्राणातिपात—विरमण—व्रते पांच अतिचार—

वह–बंध–छविच्छेए० ॥

द्विपद, चतुष्पद प्रत्ये रीस—वशे गाढो घाव घाल्यो, गाढे बंधने बांध्यो, अधिक भार घाल्यो, निर्लांछन—कर्म कीधां, चारा—पाणी—तणी वेलाए सार—संभाल न कीधी, लेहणे—देहणे किणही प्रत्ये लंघाव्यो, तेणे भूख्ये आपणे जम्या, कन्हे रही मराव्यो, बंदीखाने घलाव्यो।

सल्यां धान्य तडके नांख्यां, दलाव्यां, भरडाव्यां, शोधी न वावर्यां, ईंधण—छाणां अणशोध्यां बाल्यां, तेमांहि साप, विछी, खजूरा, सरवला, मांकड, जुआ, गींगोडा साहतां मुआ, दुहव्या, रुडे स्थानके न मूक्या; कीडी—मकोडीनां इंडां विछोह्यां, लीख फोडी, उद्देही, कीडी, मकोडी, घीमेल, कातरा, चूडेल, पतंगीयां, देडकां, अलसीयां, ईयल, कुंता, डांस, मसा, बगतरा, माखी, तीड—प्रमुख जीव विणठ्ठा; माळा हलावतां, चलावतां, पंखी, चकला, काग - तणा इंडां फोड्यां।

यस्येति नाममन्त्र-प्रधान-वाक्योपयोग-कृततोषा ।
विजया कुरुते जनहितमिति च नुता नमत तं शान्तिम् ।६।

शब्दार्थ

यस्य—जिनके ।
इति—ऐसे ।
नाममन्त्र-प्रधान-वाक्योपयोग-कृत-तोषा – नाममन्त्रवाले उत्तम अनुष्ठानोंसे तुष्ट की हुई । भगवान् के विशिष्ट नामवाले मन्त्रको 'नाममन्त्र' कहते हैं । वाक्योपयोग-विधि-युक्त जप अथवा अनुष्ठान ।
विजया—विजयादेवी ।
कुरुते—करती है ।
जनहितम्—लोकोंका हित ।
इति—इससे ।
च—ही ।
नुता—स्तुति की गयी है ।
नमत—नमस्कार करो ।
तं—उन ।
शांतिम्—श्रीशान्तिनाथ को ।

भावार्थ :– जिनके नाममन्त्रवाले उत्तम अनुष्ठानों से तुष्ट की हुई विजयादेवी लोकोंका (ऋद्धि-सिद्धि-प्रदानपूर्वक) हित करती है, उन श्रीशान्तिनाथको (हे मनुष्यों ! तुम) नमस्कार करो और विजया (जया) देवी कार्य करनेवाली है इससे उसको भी प्रसङ्गानुसार यहाँ स्तुति की गयी है ।।६।।

भवतु नमस्ते भगवति विजये सुजये परापरैरजिते ।
अपराजिते जगत्यां, जयतीति जयावहे भवति ।७।

शब्दार्थ

भवतु—हो ।
नमः—नमस्कार ।
ते—आपको ।
भगवति !—हे भगवती !

त्रीजे स्थूल—अदत्तादान—विरमण व्रते पांच अतिचार—

तेनाहडप्पओगे० ॥

घर—बाहिर क्षेत्र खले पराई वस्तु अणमोकली लीधी, वापरं
चोराई वस्तु वहोरी, चोर-धाड-प्रत्ये संकेत कीधो, तेहने संबल दीधुं
तेहनी वस्तु लीधी, विरुद्ध राज्यातिक्रम कीधो, नवा, पुराणा, सर
विरस, सजीव निर्जीव वस्तुना भेल—संभेल कीधा, कूडे काटले, तो
माने, मापे, वहोर्या, दाण— चोरी कीधी, कुणहने लेखे वरांस्यो,
लांच लीधी, कूडां करहो काढ्यो, विश्वासघात कीधो, पर—वंचन
कीधी, पासंग कूडां कीधां, दांडी चडावी, लहके-त्रहके कूडां काटलां
मान, मापां कीधां ।

माता, पिता, पुत्र मित्र, कलत्र वंची कुणहिने दीधुं, जुदी गां
कीधी, थापण ओलवो, कुणहिने लेखे—पलेखे भूलव्युं, पडी व
ओलवी लीधी ।

त्रीजे स्थूल—अदत्तादान—विरमण व्रत—विषइओ अनेरो जे क
अतिचार पक्ष—दिवसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ ह
तो सविहुं मने वचने कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥ ३ ॥

चोथे स्वदारासंतोष—परस्त्रीगमन—विरमण व्रते पांच अतिच

अपरिग्गहिया-इत्तर० ॥

अपरिगृहीता—गमन, इत्वर—परिगृहीता--गमन कीधुं, विधवा,
वेश्या, परस्त्री, कुलांगना, स्वदारा शोक (वय)--तणे विषे दृष्टि—
विपर्यास कीधो, सराग वचन बोल्यां, आठम चौदश अनेरी पर्वतिथिना
नियम लई भांग्या, घरघरणां कीधां कराव्यां, वर- वहू वखाण्यां,

भव्यानां कृतसिद्धे निर्वृति-निर्वाण-जननि सत्त्वनाम्।
अभय-प्रदान-निरते नमोऽस्तु स्वास्तिप्रदे तुभ्यम् ।९।

शब्दार्थ

भव्यानां—भव्य उपासकों को।
कृतसिद्धे!—हे कृतसिद्धा, हे सिद्धिदायिनी!
निर्वृति-निर्वाण-जननि! शान्ति तथा परम प्रमोदको देने में कारणभूत, शान्ति तथा परम प्रमोद देनेवाली।
सत्त्वानाम् सत्त्वशाली उपासकों को।
अभय-प्रदान-निरते!—अभय-दान करने में तत्पर, निर्भयता देनेवाली!
नमः अस्तु नमस्कार हो!
स्वस्तिप्रदे!—क्षेम करनेवाली!
तुभ्यम्—आपके लिये, आपको!

भावार्थ—भव्य उपासकों को सिद्धि, शान्ति और परम-प्रमोद देनेवाली सत्त्वशाली उपासकों को निर्भयता और क्षेम देनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार हो ॥९॥

भक्तानां जन्तूनां, शुभावहे! नित्यमुद्यते! देवि!।
सम्यग्दृष्टिनां धृति-रति-मति-बुद्धि-प्रदानाय ।१०॥

जिनशासन-निरतानां, शान्ति-नतानां च जगति जनता-
नाम्।

श्री-सम्पत्-कीर्ति-यशो-वर्धनि! जय देवि! विजयस्व
॥११॥

[illegible] अग्नि, घरंटी, निसाह ([illegible]), [illegible] लगे माग्यां आप्यां, पापोपदेश दीधा, अष्टमी, चतुर्दशीए [illegible] तणा नियम भांग्या, मूर्खपणा लगे असंबद्ध वाक्य बोल्या, प्रमादाचरण सेव्यां।

अंघोले, न्हाणे, दातणे, पग-धोयणे, खेल, पाणी, तेल छांट्या, झीलणे झील्या, जुगटे रम्या, हिंडोले हिंच्या, नाटक-प्रेक्षणक जोयां, कण, कुवस्तु, ढोर लेवराव्यां, कर्कश वचन बोल्या; आक्रोश कीधा, अबोला लीधा, करकडा मोड्या, मच्छर धर्यो, संभेडा लगाड्या, शाप दीधा।

भैंसा, सांढ, हुडु, कूकडा, श्वानादिक झूझार्या, झूझता जोया, खादीलगे अदेखाइ चिंतवी, माटी, मीठु, कण, कपासिया, काज विण चांप्या, ते पर बेठा, आली वनस्पति खुंदी, सूई-शस्त्रादिक नीपजाव्या, घणी निद्रा कीधी, राग-द्वेष लगे एकने ऋद्धि-परिवार वांछी; एकने मृत्यु-हानि वांछी।

आठमे अनर्थदण्ड-विरमण-व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वचने कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥ ८ ॥

नवमे सामायिक-व्रते पांच अतिचार—

तिविहे दुप्पणिहाणे० ॥

सामायिक लीधे मने आहट्ट-दोहट्ट चिंतव्युं, सावद्य वचन बोल्या, शरीर अणपडिलेह्युं हलाव्युं, छती वेलाए सामायिक न लीधुं, सामायिक लई उघाडे मुखे बोल्या, उंघ आवी, वात-विकथा घर तणी

[illegible] पोसह [illegible] ... ही, [illegible] ... [illegible] ... नोंगिने [illegible] ।

पोसह-सामायिकमांहि [illegible] निद्रा [illegible] वण भणी नही ।

पुढवी, पाणी, तेउ, वाउ वनस्पति, त्रसकाय-तणा संघट्ट, परिताप उपद्रव हुआ ।

संथारा-पोरिसी-तणो विधि भणवो विसार्यो, पोरिसी—मांहि उंघ्या, अविधे संथारो पाथर्यो, पारणादिक-तणी चिंता कीधी, काल-वेलाए देव न वाद्या, पडिक्कमणुं न कीधुं, पोसह असूरो लीधो, सवेरो पार्यो, पर्वतिथे पोसह लीधो नहीं ।

अग्यारमे पौषधोपवास-व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वचने कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥ ११ ॥

बारमे अतिथि संविभाग-व्रते पांच अतिचार—

सच्चित्ते निक्खिवणे॰ ॥

सचित्त वस्तु हेठ उपर छतां महात्मा महासती प्रत्ये असूझतुं दान दीधुं, देवानी बुद्धे असूझतुं फेडी सूझतुं कीधुं, परायुं फेडी आपणुं कीधुं, अणदेवानी बुद्धे सूझतुं फेडी असूझतुं कीधुं, आपणुं फेडी परायुं कीधुं वहोरवा वेला टली रह्या, असूर करी महात्मा तेडया, मत्सर धरी दान दीधुं, गुणवंत आव्ये भक्ति न साचवी, छती शक्ते साहम्मि-वच्छल्ल (सार्धमि-वात्सल्य) न कीधुं, अनेरां धर्मक्षेत्र

शब्दार्थ

भावार्थ— सर्व मङ्गलोंमें मङ्गलरूप, सर्व कल्याणोंका कारण रूप और सर्व धर्मोंमें श्रेष्ठ ऐसा जैन शासन (प्रवचन) सदा जयवाना है ॥१९॥

वीर-निर्वाणकी सातवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें शाकम्भरी नगरी में किसी कारणसे कुपित हुई शाकिनीने महामारीका उपद्रव फैलाया। यह उपद्रव इतना भारी था कि इसमें औषध और वैद्य कुछ भी काम नहीं आ सकते थे। इसलिये प्रतिक्षण मनुष्य मरने लगे और सारी नगरी श्मशान जैसी भयङ्कर दिखने लगी।

इस परिस्थितिमें कुछ सुरक्षित रहे हुए श्रावक जिनचैत्यमें एकत्रित होकर विचार करने लगे, तब आकाशसे आवाज हुई कि 'तुम चिन्ता क्यों करते हो? नाडूल नगरीमें श्रीमानदेवसूरि विराजते हैं, उनके चरणों के प्रक्षालन जलका तुम्हारे मकानों में छिड़काव करो जिससे सम्पूर्ण उपद्रव शान्त हो जायगा'।

इस वचन से आश्वासन पाये हुए सङ्घने वीरदत्त नाम के एक श्रावकको विज्ञप्ति-पत्र देकर नाडूल नगरी (नाडोल-मारवाड़में) श्रीमानदेवसूरि के पास भेजा।

सूरिजी तेजस्वी, ब्रह्मचारी और मन्त्रसिद्ध महापुरुष थे तथा लोको-पकार करनेकी परम निष्ठावाले थे, इससे उन्होंने शान्ति-स्तव नामका एक मन्त्रयुक्त चमत्कारिक स्तोत्र बनाकर दिया और चरणोदक भी दिया। यह शान्ति-स्तव लेकर वीरदत्त शाकम्भरी नगरी में आया। वहाँ उनके चरणजलका (शान्ति-स्तवसे मन्त्रित) अन्य जलके साथ मन्त्रित कर छिड़-काव करनेसे तथा शान्ति-स्तवका पाठ करनेसे महामारीका उपद्रव शान्त हो गया, तबसे यह स्तव सब प्रकारके उपद्रवोंके निवारणार्थ बोला जाता है प्रतिक्रमणमें यह कालान्तरसे प्रविष्ट हुआ है।

संक्षेप ते द्रव्य भणी सर्व वस्तुनो संक्षेप कीधो नहीं, रस-त्याग ते वि
त्याग न कीधो, काय-क्लेश लोचादिक कष्ट सह्यां नहीं, संलीनता अं
पांग संकोची राख्यां नहीं, पच्चक्खाण भांग्यां, पाटलो डगडगतो फे
नहीं, गंठसी, पोरिसी, पुरिमड्ढ, एकासणुं, बेआसणुं, नीवि, आंबि
प्रमुख पच्चक्खाण पारवुं विसायुं, बेसतां नवकार न भ(ग)ण्यो, उठ
पच्चक्खाण करवुं विसायुं, भांग्युं, नीवि आंबिल उपवासादि
तप करी काचुं पाणी पीधुं, वमन हुओ।

बाह्यतप-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि
सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वचने कायाए
करी मिच्छामि दुक्कडं ॥१४॥

अभ्यंतर तप—

पायच्छित्तं विणओ० ॥

मन-शुद्धे गुरु-कन्हे आलोयण लीधी नहीं; गुरु-दत्त प्राय
श्चित्त-तप लेखा शुद्धे पहुंचाड्यो नहीं, देव, गुरु, संघ, साहम्मी प्र
तिविनय साचव्या नहीं; बाल, वृद्ध, ग्लान, तपस्वी-प्रमुखनुं वेयावच्च
कीधुं, वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा-लक्षण पं
चविध स्वाध्याय न कीधो, धर्मध्यान, शुक्लध्यान न ध्याया, आर्तध्यान
रौद्रध्यान ध्याया, कर्मक्षय-निमित्त लोगस्स दश-वीसनो काउस्सग्ग
न कीधो।

अभ्यंतर तप-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दि
वसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वच
ने कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥ १५ ॥

५४—पाक्षिकादि-अतिचार

नाणम्मि दंसणम्मि अ, चरणम्मि तवम्मि तह य वीरियम्मि ।
आयरणं आयारो, इअ एसो पंचहा भणिओ ॥१॥

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार ए पंचविध आचारमांहि * जे कोइ अतिचार पक्ष दिवसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय, ते सविहु मने, वचने, कायाए करी मिच्छा मि दुक्कडं ॥१॥

तत्र ज्ञानाचारे आठ अतिचार—

काले विणए बहुमाणे, उवहाणे तह अनिण्हवणे ।
वंजण-अत्थ-तदुभये, अट्ठविहो नाणमायारो ॥१॥

ज्ञान काल—वेलाए भण्यो-गुण्यो नहीं, अकाले भण्यो, विनय-हीन, बहुमान-हीन, योग-उपधान-हीन, अनेरा कन्हे भणी अनेरो गुरु कह्यो ।

देव—गुरु—वांदणे, पडिक्कमणे; सज्झाय करतां, भणतां-गुणतां कूडो अक्षर काने मात्राए अधिको-ओछो भण्यो, सूत्र कूडुं कह्युं, अर्थ कूडो कह्यो, तदुभय कूडां कह्यां, भणीने विसार्यां ।

साधु—तणे धर्म काजो अणउद्धर्ये; दांडो अणपडिलेहे, वसति

* यहां 'अनेरो' ऐसा अधिक पाठ देखने में आता है, किन्तु वह अर्थ की

निश्चय न कीधो, धर्म—सम्बन्धीयां फलतणे विषे निःसन्देह बुद्धि धरी नहीं, साधु—साध्वीनां मल—मलिन गात्र देखी दुगंछा नीपजावी, कुचारित्रीया देखी चारित्रीया ऊपर अभाव हुओ, मिथ्यात्वी तणी पूजाप्रभावना देखी मूढदृष्टिपणु कीधु ।

तथा संघमांहे गुणवंत—तणी अनुपबृंहणा कीधी; अस्थिरीकरण, अवात्सल्य, अप्रीति, अभक्ति नीपजावी, अबहुमान कीधु ।

तथा देवद्रव्य, गुरुद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, साधारणद्रव्य, भक्षित, उपेक्षित, प्रज्ञापराधे विणास्यां, विणसतां उवेख्यां, छती शक्तिए सार—संभाल न कीधी; तथा साधर्मिक साथे कलह—कर्म—बंध कीधो ।

अधोती, अष्टपड मुखकोश—पाखे देव—पूजा कीधी; बिंब—प्रत्ये वासकूंपी, धूपधाणु, कलश—तणो टक्को लाग्यो, बिंब हाथ—थकी पाड्यु, ऊपास—नीसास लाग्यो ।

देहरे उपाश्रये मल—श्लेष्मादिक लोह्यु, देहरामांहि हास्य, खेल, केलि, कुतूहल, आहार—नीहार कीधां, पान, सोपारी, निवेदीयां खाधां ।

ठवणायरिय हाथ—थकी पाड्या, पडिलेहवा विसार्यां ।

जिन—भवने चोराशी आशातना, गुरु—गुरुणी प्रत्ये तेत्रीस आशातना कीधी, गुरु—वचन 'तह त्ति' करी पडिवज्यु नहीं ।

दर्शनाचार—विषइओ अनेरो जे कोइ अतिचार पक्ष—दिवस-मांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय, ते सविहु मने, वचने, कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं । ॥१॥

शंका—श्रीअरिहंत—तणां बल, अतिशय, ज्ञानलक्ष्मी, गांभीर्यादिक गुण, शाश्वती प्रतिमा, चारित्रीयानां चारित्र, श्रीजिनवचन—तणो संदेह कीधो।

आकांक्षा—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्षेत्रपाल, गोगो, आसपाल, पादर-देवता, गोत्र—देवता, ग्रह पूजा, विनायक, हनुमंत, सुग्रीव, वालीनाह इत्येवमादिक देश, नगर, ग्राम, गोत्र, निगरी, जूजूआ देव—देहराना प्रभाव देखी, रोग—आतंक—कष्ट आव्ये इहलोक परलोकार्थ पूज्या मान्या, प्रसिद्ध—विनायक जीराउलाने मान्युं, इच्छयुं, बौद्ध, सांख्यादिक, संन्यासी, भरडा, भगत, लिंगिया, जोगिया, जोगी, दरवेश, अनेरा दर्शनीया—तणो कष्ट, मंत्र, चमत्कार देखी परमार्थ जाण्या विना भूलाया, मोह्या, कुशास्त्र शीख्या, सांभल्या।

श्राद्ध, संवत्सरी, होली, बलेव, माही—पूनम, अजा—पडवो, प्रेत—बीज, गौरी—त्रीज, विनायक—चोथ, नाग—पंचमी, झीलणा—छट्ठी, शील (शीतला)—सातमी, ध्रुव—आठमी, नोली नवमी, अहवा—दशमी, व्रत—अग्यारशी, वच्छ—बारशी, धन—तेरशी, अनंत—चउदशी, अमावस्या, आदित्यवार, उत्तरायण नैवेद्य कीधां।

नवोदक, याग, भोग, उतारणां कीधां, कराव्यां, अनुमोद्यां, पीपले पाणी घाल्यां—घलाव्यां, घर—बाहिर—क्षेत्र—खले कूवे, तलावे, नदीए, द्रहे, वाविए, कुंडे, पुण्यहेतु स्नान कीधां, कराव्यां, अनुमोद्या, दान दीधां, ग्रहण, शनैश्चर, माहमासे नवरात्रि न्हाया, अजाणतां थाप्यां, अनेराई व्रत—व्रतोलां कीधां—कराव्यां।

विचिकित्सा—धर्म—संबंधीया फलतणे विषे संदेह कीधो, जिन अरिहंत, धर्मना आगर, विश्वोपकार सागर, मोक्षमार्गना दातार,

धन-तेरसी—आश्विन कृष्णा त्रयोदशी का दिन।
जिस दिन धन (रुपयों) को स्नान करा कर उसकी पूजा की जाती है।
अनन्त-चउदशी—भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी का दिन।
आदित्यवार—रविवार, ग्रह पीडादि दूर करने के लिये कुछ रविवारों के एकाशन अथवा उपवास करना।
उत्तरायण—मकर-संक्रान्ति का दिन मानना।
नवोदक—वर्षा का नया पानी आये, तब उसकी खुशी में मनाया जाने वाला पर्व।
याग—यज्ञ कराना।
भोग—ठाकुरजीको भोग-नैवेद्य धरना।
उतारणां कीधां—उतार कराया।
ग्रहण—सूर्य-ग्रहण अथवा चन्द्र ग्रहण का दिन।
शनैश्चर—शनिवार का दिन (शनिवार का व्रत करना)।
अजाणतां थाप्यां—अनजान मनुष्यों द्वारा स्थापित।
अनेराइ—दूसरे भी।
व्रत व्रतोलां—छोटे-बड़े व्रत।

आगर—खान, जत्था-समूह।
ईरया—इंगे।
भोग-वांछित—भोग की इच्छा से।
दीण-वचन—दीनतापूर्ण वचन बोल कर।
दाक्षिण्य-लगे—दाक्षिण्य से, विवेक से,
वह-बंध-छविच्छेए० ॥ इस गाथा के अर्थ के लिये देखो सूत्र ३४ गाथा १०।
गाढो घाव घाल्यो—गहरा घाव किया हो, बहुत पीटा हो।
तावडे—धूप में।
खजूरा—कानखजूरा।
सरवला—जन्तु विशेष।
साहतां—पकड़ते हुए।
विणट्ठा—नष्ट हुए हों।
निध्वंसपणुं—निर्दयता।
झील्या—नहाये।
सहस्सा रहस्सदारे० ॥ इस गाथा के अर्थ के लिए देखो सूत्र ३४, गाथा १२।
कुणह प्रत्ये—किसीके प्रति।
मंत्र—मन्त्रणा, विचार-विमर्श।
आलोच—आलोचना-विचारणा।
अनर्थ पाडवा—कष्ट में डालना।
थापण मोसोकीधो—धरोहर के बारे में झूँठ बोला हो।

राग-[illegible] [illegible]
[illegible]
संलीणया [illegible] संलीनता।
य—और।
बज्झो—बाह्य।
तवो—तप।
होइ—होता है, है।
फेड्यो नहि—[illegible] नहीं।
काचुं पाणी—तीन उफान नहीं आया हुआ गरम पानी अथवा अचित नहीं किया हुआ पानी।
पायच्छित्तं विणओ० गाथार्थ
पायच्छित—प्रायश्चित।
विणओ—विनय।
वेयावच्चं—वैयावृत्य (शुश्रूषा)।
तहेव—वैसे ही।
सज्झाओ—स्वाध्याय।
ाणं—ध्यान।
स्सग्गो—त्याग।
व अ—और फिर।
ब्भिंतरओ—अभ्यंतर।
वो—तप।
इ—होना है, है।
खां शुद्धे—पूरी गिनतीपूर्वक।
णिगूहिअबल वीरिओ० ॥ गाथार्थ
णिगूहिअ-बल-विरिओ—बाह्य और

[illegible]
हुए।
[illegible]
जो—जो।
जहुत्तं—[illegible] ज्ञान, दर्शन, चा
और तप के छत्तीस आचारों
[illegible] में।
आउत्तो—उनके पालन में।
जुंजइ—जोड़ता है।
अ—और।
जहाथामं—यथाशक्ति अपनी श
को।
नायव्वो—जानना।
वीरिआयारो—वीर्याचार।
निरादरपणे—आदर बिना, बहु
बिना।
नाणाइ अट्ठ—ज्ञानादिक आ
अर्थात् ज्ञानाचार, दर्शना
और चारित्राचार इन प्रत्येक
आठ आठ, कुल चौबीस।
पइवय—प्रतिव्रत, प्रत्येक व्रत
स्थूल-प्राणातिपात-विरमण अ
बारह व्रतों के।
सम्म-संलेहण—सम्यक्त्व तथा संले
नाके।
पण—पांच।
बारह व्रत, सम्यक्त्व अ

कम्मे, भाडी--कम्मे, फोडी--कम्मे, ए पांच कर्म ; दंत--वाणिज्जे लक्ख--वाणिज्जे, रस—वाणिज्जे, केस—वाणिज्जे, विस—वाणिज्जे, ए पांच वाणिज्य ; जन्त –पिल्लणकम्मे, निल्लंछणकम्मे, दवग्गि—दावणया, सर—दह-तलाय-सोसणया, असई-पोसणया ; ए पांच कर्म, पाँच वाणिज्य, पांच सामान्य ; एवं पन्नर कर्मादान बहु सावद्य—महारंभ, रांगण—लिहाला* कराव्या, ईंट— निभाडा पकाव्या, धाणी, चणा, पक्वान्न करी वेच्या, वाशी माखण तवाव्यां, तिल वहोर्या, फागण मास उपरांत राख्या, दलीदो कीधो, अंगीठा कराव्या, श्वान, बिलाडा, सूडा, सालहो पोष्या ।

अनेरा जे कांई बहु—सावद्य खरकर्मादिक समाचर्या, वासी गार राखी, लिपणे—गुंपण महारंभ कीधो, अणशोध्या चूला संधूक्या, घी, तेल, गोल, छाश—तणां भाजन उघाडां मूक्यां, तेमांहि माखी, कुंती, उंदर, गीरोली पडी, कीडी चडी, तेनी जयणा न कीधी ।

सातमे भोगोपभोग—विरमण—व्रत—विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष—दिवसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वचने कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥ ७ ॥

आठमे अनर्थदंड—विरमण—व्रते पांच अतिचार—

कंदप्पे कुक्कुइए० ॥

कंदर्प—लगे विट—चेष्टा, हास्य, खेल, [केलि] कुतूहल कीधां, पुरुष—स्त्रीना हाव –भाव, रूप, शृंगार, विषय—रस वखाण्या, राज—कथा, भक्त—कथा, देश—कथा, स्त्री—कथा कीधी, पराई तांत कीधी, तथा पैशुन्यपणुं कीधुं, आर्त—रौद्र ध्यान ध्यायां ।

---

* मूलमें 'बहुरंगिणी लिहला आंगरणि' ऐसा पाठ है ।

[illegible] बीज दीवा-तणी उजेही हुई; कण, कपासीया, माटी, मीठुं, खडी, धावडी, अरणेट्टो, पाषाण प्रमुख चांप्या; पाणी, नील, फूल, सेवाल, हरियकाय, बीजकाय इत्यादिक आभड्यां, स्त्री-तिर्यंच-तणा निरंतर परंपर संघट्ट हुआ, मुहपत्ति संघट्टी, सामायिक अणपूग्युं पार्युं, पारवुं विसार्युं ।

नवमे सामायिक-व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वचने कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥ ९ ॥

दशमे देशावकाशिक-व्रते पांच अतिचार –

आणवणे पेसवणे० ॥

आणवण-प्पओगे, पेसवण-प्पओगे, सद्दाणुवाई, रूवाणुवाई, बहिया-पुग्गल-पक्खेवे, नियमित-भूमिकामांहि बाहेरथी कांइ अणाव्युं, आपण कन्हे थकी बाहेर कांई मोकल्युं, अथवा रूप देखाडी, कांकरो नाखी, साद करी आपणपणुं छतुं जणाव्युं ।

दशमे देशावकाशिक-व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वचने कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥ १० ॥

अग्यारमे पौषधोपवास-व्रते पांच अतिचार –

संथारुच्चारविही० ॥

अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय, सिज्जा-संथारए, अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय, उच्चार-पासवण-भूमि पोसह लीधे संथारा-तणी भूमि न पुंजी ।

सीदातां छती शक्तिए उद्धर्या नहीं, दीन, क्षीण प्रत्ये अनुकंपादान न दीधु ।

बारमे अतिथि-संविभाग-व्रत-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वचमे कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥ १२ ॥

संलेखणा तणा पांच अतिचार—

इह लोए परलोए० ॥

इहलोगासंस प्पओगे, परलोगासंस-प्पओगे, जीविअसंस-प्पओगे; मरणासंस-प्पओगे, कामभोगासंस-प्पओगे ।

इह लोके धर्मना प्रभाव लगे राज-ऋद्धि, सुख, सौभाग्य, परिवार वांछ्या; परलोके देव, देवेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्तीतणी पदवी वांछी, सुख आव्ये जीवितव्य वांछ्यु, दुःख आव्ये मरण वांछ्यु, काम-भोग-तणी वांछा कीधी ।

संलेखणा विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष दिवस-मांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वचने कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥१३॥

तपाचार बार भेद-छ बाह्य, छ अभ्यन्तर—

अणसणमूणोअरिआ० ॥

अणसण भणी उपवास-विशेष पर्वतिथे छती शक्तिए कीधो नहीं, ऊणोदरी व्रत ते कोलिआ पांच सात ऊणा रह्या नहीं, वृत्ति-

[illegible] पूर्ति न मिलने के कारण [illegible]।

श्लोक नं० १ [illegible] चौथे चरणों के [illegible] है।

श्लोक नम्बर १ में

श्री पार्श्वनाथ भगवान की स्तुति है।

श्लोक नम्बर २ में

सब तीर्थंकरों की स्तुति है।

श्लोक नम्बर ३ में —

वीतराग तीर्थंकर देवों के दर्शन (सिद्धान्त) की स्तुति है।

श्लोक नम्बर ४ में —

शासनदेव की स्तुति है।

६०—पाक्षिकादि प्रतिक्रमण में बोली जाने वाली स्तुति

(वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति)

अविरल कमल गवलय मुक्ताफल, कुवलय कनक भासु
परिमल बहुल कमलदल कोमल, पदतल लुलित नरेश्व
त्रिभुवन भवन सुदीप्र दीपक, मणिकलिका विमलकेव
नव नव युगल जलधि परिमित जिनवर निकरं नमाम्यहं।

शब्दार्थ

अविरल—गाढ़े।

कमल—नील कमल समान वर्ण वाले दो।

गवलय—मेघ समान श्याम वाले दो।

मुक्ताफल—मोती समान उज

वीर्याचारना त्रण अतिचार –

अणिगूहिअ बल–वीरिओ० ॥

पढवे, गुणवे, विनय, वेयावच्च, देव–पूजा, सामायिक, पोसह, दान, शील, तप, भावनादिक धर्म-कृत्यने विषे मन, वचन, काया-तणुं छतुं वीर्य गोपव्युं ।

रुडा पंचांग खमासमण न दीधां, वांदणां-आवर्त विधि साचव्या नहीं, अन्यचित्त निरादर पणे बेठा, उतावळुं देव-वंदन पडिक्कमणुं कीधुं ।

वीर्याचार-विषइओ अनेरो जे कोई अतिचार पक्ष-दिवसमांहि सूक्ष्म बादर जाणतां अजाणतां हुओ होय ते सविहु मने वचने कायाए करी मिच्छामि दुक्कडं ॥१८॥

नाणाइ–अट्ठ पइवय, सम्मसंलेहण–पण–पन्नर–कम्मेसु ।
बारस–तप–वीरिअ–तिगं, चउवीस–सयं अइआरा ॥

पडिसिद्धाणं करणे० ॥

प्रतिषेध अभक्ष्य, अनंतकाय, बहुबीज-भक्षण, महारंभ-परिग्रहादिक कीधां, जीवाजीवादिक सूक्ष्म-विचार सद्दह्या नहीं, आपणी कुमति लगे उत्सूत्र-प्ररूपणा कीधी ।

झुके हुए हैं ऐसे चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों के चरण कमलों में मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

(शाश्वत जिन प्रतिमाओं की स्तुति)

व्यंतरनगर रुचक वैमानिक, कुलगिरि कुंडल कुंडले;
तारक मेरु जलधि नंदीश्वरे, गिरिगजदंत सुमंडले।
वक्षस्कार भवन वनजोत्तर, कुरु वैताढ्य कुंजगाः त्रिजगति;
जयति विदित शाश्वत जिनपति, तति रिह मोहपारगाः ॥२॥

शब्दार्थ

व्यन्तरनगर—व्यन्तरों के नगरों में।
रुचक—रुचक द्वीप में।
वैमानिक—वैमानिक देवलोकों में।
कुलगिरि—कुल गिरि पर।
कुंडल—कुंडल गिरि पर।
कुंडले—कुंडल द्वीप में।
तारक—तारा आदि ज्योतिष विमानों में।
मेरु—मेरु पर्वत में।
जलधि—समुद्रादि में।
नंदीश्वरे—नंदीश्वर द्वीप पर।
गिरिगजदंत—गजदंत गिरि पर।
सुमंडले—उत्तम देशों में।
वक्षस्कार—वक्खाकार गिरि पर।
भवन—भवनपतियों के भवनों में।
वनजोत्तर—वाणव्यंतरों के नगरों में।
कुरू—देवकुरु, उत्तरकुरु में।
वैताढ्य—वैताढ्य पर्वत पर।
कुंजगाः—वन कुंजों में।
त्रिजगति—तीन जगत में।
विदित—प्रसिद्ध।
मोहपारगा—मोह को जीतने वाले।
शाश्वतजिनपति—शाश्वत तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की।
तति—श्रेणी।
जयति—जयवन्ती वर्तमान हैं।

अर्थ—व्यंतरों, वाणव्यंतरों के नगरों में, भवनपति देवों के भवनों में, ज्योतिषिक देवों के विमानों में तथा वैमानिक देवों के विमानों में; कुलगिरि कुण्डलगिरि पर, मेरुपर्वत पर, गजदंत गिरि पर, वक्खाकार गिरि पर, वैताढ्य

वूह-थिरीकरणे—उपबृंहणा और
च्छल्ल-पभावणे—वात्सल्य स्थिरी-
करण और प्रभावना ।
ट्ठ- आठ ।
संधीया —सम्बन्धी ।
ल-मलिन— मैल से युक्त, मलिन ।
गंछा नीपजावी—जुगुप्सा की ।
चारित्रीया—कुत्सित चारित्र वाले ।
भाव हुओ —अप्रीति हुई ।
बुबृंहणा कीधी —उपबृंहणा न की,
समर्थन न किया हो ।
स्थिरीकरण—स्थिरीकरण न किया
हो, धर्मी को गिरते देख धर्म
मार्ग में स्थिर न किया हो ।
व-द्रव्य—देव-निमित्त का द्रव्य, देव
के लिये कल्पित द्रव्य ।
रु-द्रव्य—गुरु-निमित्त का द्रव्य,
गुरु के लिये कल्पित द्रव्य ।
ान-द्रव्य - श्रुतज्ञान के निमित्त का
द्रव्य ।
ाधारण-द्रव्य—जो द्रव्य जिन-विम्ब,
जिन-चैत्य, जिनागम, साधु,
साध्वी श्रावक और श्राविका
इन सातों क्षेत्रो में लगाने योग्य
हो; वह साधारण द्रव्य ।
क्षित-उपेक्षित—भक्षण करते समय
उपेक्षा की हो । किसी के द्वारा
उक्त द्रव्य का भक्षण होता हो
तो उसको रोकने का अपना
उत्तरदायित्व पूरा न किया हो ।
अधोती—धोती बिना ।
अष्टपड-मुखकोश-पाखे—आठ पड़-
वाले मुखकोश बिना ।
बिंब प्रत्ये—बिम्ब के प्रति, मूर्ति के
प्रति ।
वासकुंपी—वासक्षेप रखने का पात्र ।
धूपधाणुं—धूपदानी ।
फेली—क्रीडा ।
निवेदियां—नैवेद्य ।
ठवणायरिय—स्थापनाचार्य ।
पडिवज्युं नहीं—अङ्गीकार नहीं किया
पणिहाण जोग-जुत्तो नायव्वो०।।गाथार्थ
पणिहाण-जोग-जुत्तो— चित्त की
समाधिपूर्वक ।
पंचहिं समिईहिं—पांच समितियोंका ।
तीहिं गुत्तिहिं—तीन गुप्तियों का
(पालन) ।
एस—यह, इस तरह ।
चरित्तायारो—चारित्राचार ।
अट्ठविहो—आठ प्रकार का ।
होइ—होता है ।
नायव्वो—जानने योग्य ।
ईर्या-समिति—ईर्या-समिति सम्बन्धी
अतिचार ।

अर्हदादि-प्रभावात्—अर्हत् आदि के प्रभाव से।

अर्हदादि—अर्हत् आदि। प्रभावात्—प्रभाव से।

आरोग्य-श्री-धृति-मति-करी—आरोग्य, लक्ष्मी, चित्त की स्वस्थता और बुद्धि को देने वाली।

क्लेश-विध्वंस-हेतु—पीडा का नाश करने में कारणभूत।

क्लेश—पीडा। विध्वंस—नाश। हेतु—कारणभूत।

भावार्थ—हे हे भव्यजनों! आप सब मेरा यह प्रासङ्गिक वचन सुनिये। जो श्रावक जिनेश्वरकी रथयात्रामें भक्तिवाले हैं, उन श्रीमानोंको अर्हत् आदिके प्रभावसे आरोग्य, लक्ष्मी, चित्तकी स्वस्थता और बुद्धिको देनेवाली सब क्लेश—पीडाका नाश करने में कारणभूत ऐसी शान्ति प्राप्त हो ॥ १ ॥

भो भो भव्यलोकाः! इह हि भरतैरावत-विदेह-सम्भवानां समस्त-तीर्थकृतां जन्मन्यासन-प्रकम्पानन्तरमवधिना विज्ञाय, सौधर्माधिपतिः, सुघोषा-घण्टा-चालनानन्तरं, सकल-सुरासुरेन्द्रैः सह-समागत्य, सविनयमर्हद्-भट्टारकं गृहीत्वा, गत्वा कनकाद्रि-शृङ्गे, विहित-जन्माभिषेकः शान्तिमुद्घोषयति यथा, ततोऽहं कृतानुकारमिति कृत्वा "महाजनो येन गतः स पन्थाः" इति भव्यजनैः सह समेत्य, स्नात्रपीठे स्नात्रं विधाय शान्तिमुद्घोषयामि, तत्पूजा-यात्रा-स्नात्रादि-महोत्सवानन्तरमिति कृत्वा कर्णं दत्त्वा निशम्यतां निशम्यतां स्वाहा ॥२॥

शब्दार्थ

भोः भोः भव्यलोकाः!—हे भव्य-जनो!

इह हि—इसी जगत् में, इसी ढाई द्वीप में।

पाठान्तर में 'भगवंत' शब्द है।

लिंगिया—साधु का वेष धारण करने वाले।

जोगिया—जोगी के नाम से प्रसिद्ध साधु।

जोगी—योग की साधना करने वाले।

दरवेश—मुसलमान फकीर।

पाठान्तर में 'दूरवेश' शब्द है।

भूलाव्या—भुलाया।

संवच्छ(त्स)री—मरे हुए की वार्षिक तिथि के दिन ब्राह्मण आदि को भोजन कराना।

माही-पूनम—माघ मास की पूर्णिमा इस दिन विशिष्ट विधि से स्नान किया जाता है।

अजा-पडवो—(आजो पडवो).... अश्विन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा का दिन।

जिस दिन आजो अर्थात् माता-मह का श्राद्ध किया जाता है।

प्रेतबीज—कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया, जो यम-द्वितीया भी कहलाती है।

गौरी-त्रीज—चैत्र शुक्ल तृतीया जब पुत्र की इच्छा वाली स्त्रियाँ गौरीव्रत करती है।

विनायक-चोथ—भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी का दिन, जब विनायक अर्थात् गणपति की मुख्य पूजा होती है, उसको गणपति चोथ भी कहते हैं।

नाग-पंचमी—श्रावण शुक्ला पंचमी-का दिन कि जब नाग-सर्प की खास तौर पर पूजा की जाती है। कुछ श्रावण कृष्णापञ्चमी को भी नागपञ्चमी कहते हैं।

झीलणा-छट्ठी—श्रावण कृष्णा षष्टी, जिसे राँधन छठ भी कहते हैं।

शील-सातमी—श्रावण शुक्ला (कृष्णा) सप्तमी का दिन, जब कि ठण्डा भोजन किया जाता है, तथा शीतलादेवी की पूजा की जाती है। कुछ प्रान्तों में चैत्र कृष्णा सप्तमी को भी यह पर्व मनाते हैं।

ध्रुव-आठमी—भाद्रपद शुक्ला अष्टमी, जिस दिन स्त्रियाँ गौरी-पूजा आदि करती हैं।

नौली-नोमी—(नकुल-नवमी) श्रावण-शुक्ला नवमी का दिन।

अहवा-दसमी—अथवा (अथवा) दसमी।

व्रत-अग्यारसी—एकादशी के व्रत।

वच्छ-बारसी—आश्विन कृष्णा द्वादशी

पूजा-यात्रा-स्नात्रादि-महोत्सवान्तरमिति कृत्वा—पूजा—महोत्सव (रथ) यात्रा—महोत्सव, स्नात्र—यात्रा महोत्सव आदि की पूर्णाहुति करके।

कर्ण दत्त्वा—कान देकर।

निशम्यतां निशम्यतां—सुनिये सुनिये।

स्वाहा— स्वाहा।

यह पद शान्तिकर्म का पल्लव है।

भावार्थ—हे भव्यजनो! इसी ढाई द्वीपमें भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न सर्व तीर्थङ्करोके जन्मके समयपर अपना आसन कम्पित होनेसे सौधर्मेन्द्र अवधिज्ञान से (तीर्थङ्करका जन्म हुआ) जानकर, सुघोषा घण्टा बजवाकर (सूचना देते हैं, फिर) सुरेन्द्र और असुरेन्द्रों के साथ आकर विनय—पूर्वक श्रीअरिहन्त भगवान्को हाथमें ग्रहणकर मेरुपर्वतके शिखरपर जाकर जन्माभिषेक करने के पश्चात् जैसे शान्तिकी उद्घोषणा करते हैं, वैसे ही मुझे (भी) किये हुएका अनुकरण करना चाहिये ऐसा मान कर 'महापुरुष जिस मार्गसे जावें, वही मार्ग है,' ऐसा मानकर भव्यजनोंके साथ आकर, स्नात्र पीठपर स्नात्र करके, शान्तिकी उद्घोषणा करता हूँ, अतः आप सब पूजा—महोत्सव, (रथ) यात्रा—महोत्सव, स्नात्र—महोत्सव आदिकी पूर्णाहुति करके कान देकर सुनिये! सुनिये! स्वाहा ॥ २ ॥

ॐ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्तां प्रीयन्तां, भगवन्तोऽर्हन्तः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनस्त्रिलोकनाथास्त्रिलोकमहितास्त्रिलोकपूज्यास्त्रिलोकेश्वरास्त्रिलोकोद्योतकरः ॥३॥

शब्दार्थ

ॐ—ॐकार परमतत्त्व की विशिष्ट संज्ञा, प्रणवबीज।

एक अक्षर के रूप में यह परमतत्त्व का वाचक है और पृथक् पृथक् करें तो पञ्चपरमेष्ठिका वाचक है।

पुण्याहं पुण्याहं—आज का दिन पवित्र है, यह अवसर माङ्गलिक है।

कडकंडा मोड्या—तिरस्कार से कडाके किये ।

तेनाहडप्पओगे० ॥ इस गाथा के अर्थ के लिये देखो सूत्र ३४ गाथा १४ ।

अणमोकल्ली—मालिक के भेजे विना ।

वहोरी -खरीद की ।

संबल—कलेवा, मार्ग में खाने योग्य सामान ।

विरुद्ध-राज्यातिक्रम कीधो—राज्य के नियम से विरुद्ध वर्तन किया ।

लेखे वरांस्यो—लेखे में ठगा, हिसाब में खोटा गिनाया ।

सांटे लांच लीधी—अदला-बदली करने में रिश्वत ली ।

कूडो करहो काढ्यो—झूठा वटाव (कटौती) लिया ।

पासंग कूडां कीधां—झूठा धड़ा किया ।

पासंग-अर्थात् वजन करने के लिये एक ओर रखा जाने वाला माप, धड़ा ।

अपरिग्गहिया इत्तर० ॥ इस गाथा के अर्थ के लिये देखो सूत्र ३४, गाथा १६ ।

शोक्यतण विषे—सौत के सम्बन्ध में ।

दृष्टि-विपर्यास कीधो—अनुचित दृष्टि डाली ।

घरघरणां—नाता-गन्धर्व विवाह ।

सुहणे—स्वप्न में ।

नट—नृत्य करने वाला, वेष बनाने वाला (बहुरूपिया) ।

विट—वेश्या का अनुचर, जार, कामुक ।

हासुं कीधुं—हँसी की ।

धण-धन्न-खित्त-वत्थू० ॥ इस गाथा अर्थ के लिये देखो सूत्र ३४, गाथा १८ ।

मूर्च्छा लगे—मूर्च्छा आने से, मोह होने से ।

गमणस्स य परिमाणे० ॥ इस गाथा के अर्थ के लिये देखो सूत्र ३४, गाथा १६ ।

पाठवणी—प्रस्थान के लिये रखने की, भेजने की वस्तु ।

एकगमा—एक ओर ।

हुंती—सम्बन्धी ।

सचित्ते-पडिबद्धे० ॥ इस गाथा के अर्थ के लिये देखो सूत्र ३४, गाथा २१ ।

ओला—सिके हुए हरे चने, होले ।

उंबी—गेहूँ, बाजरी, जब आदि धान्य के सिके हुए डूंडिये ।

पोंक—जवार, बाजरी आदि के धान्य

शब्दार्थ

ॐ—ॐ।

पुत्र-मित्र-भ्रातृ-कलत्र-सुहृत्-स्वजन-सम्बन्धि-बन्धुवर्ग-सहिता—पुत्र, मित्र, भाई, स्त्री, हितैषी, स्वजातीय, सम्बन्धीजन तथा सम्बन्धी परिवार वाले।

नित्यं—[illegible]।

च—और।

आमोद-प्रमोद-कारिण—आनन्द प्रमोद करने वाले।

भवन्तु—हों।

भावार्थ—ॐ आप पुत्र (पुत्री), मित्र, भाई, (पत्नी) स्त्री, हितैषी, स्वजातीय, सम्बन्धीजन और सम्बन्धी परिवार वालों के सहित आनन्द-प्रमोद करने वाले हों, सुखी हों ॥१६॥

अस्मिंश्च भूमण्डले, आयतन—निवासि साधु—साध्वी श्रावक—श्राविकाणां रोगोपसर्ग—व्याधि—दुःख—दुर्भिक्ष—दौर्मनस्योपशमनाय शान्तिर्भवतु ॥१७॥

शब्दार्थ

अस्मिन्—इस।

च—और।

भूमण्डले—भूमण्डल पर।

भू—अनुष्ठान भूमिका मध्यभाग। **मण्डल**—उसके आस पास की भूमि। स्नात्रविधि करते समय जिस भूमि की मर्यादा बांधी हो, उसको भूमण्डल कहते हैं।

आयतन-निवासि-साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाणां—अपने अपने स्थान में रहे हुए साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं के।

रोगोपसर्ग-व्याधि-दुःख-दुर्भिक्ष-दौर्मनस्योपशमनाय—रोग, उपसर्ग, व्याधि, दुःख, दुष्काल और विषाद के उपशमन द्वारा।

शान्ति—शान्ति।
शान्ति—अरिष्ट अथवा कषायोदयका उपशमन रूप।

भवतु—हो।

संलेखना, इन प्रत्येक के पांच पांच, इस तरह कुल सतार।
पन्नर-कम्मेसु—पन्द्रह कर्मादान के पन्द्रह।
वारस-तव—वारह प्रकार के तप के वारह।
वीरिअतिगं—वीर्याचार के तीन।
चउवीस-सयं अइआरा—इस प्रकार सब मिलाकर एक सौ चौबीस अतिचार।
२४+७०+१५+१२+३=१२४
प्रतिषेध—निषिद्ध किये हुए।
कुमति लगे—मिथ्या वुद्धि से।
चिहुं—चार।

सारांश— इस सूत्र में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व, वारह व्रत, संलेखना, तप और वीर्य के अतिचारों का विस्तार से वर्णन किया है।

५५—भुवन देवता की स्तुति

चतुर्वर्णाय संघाय, देवीं भुवनवासिनी।
निहत्य दुरितान्येषा, करोतु सुखमक्षयम् ॥१॥

शब्दार्थ

भुवनवासिनी देवी—हे भुवनवासिनी देवी।
दुरितानि-एषा-निहत्य—पापों का नाश करके।
चतुर्वर्णाय—चारों प्रकार के
संघाय—संघों के लिये।
सुखम्—सुख।
अक्षयम्—अक्षय।
करोतु—करो, दो।

भावार्थ—हे भुवनवासिनी देवी! सव पापों का नाश करके चारों प्रकार के (साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका) संघों के लिये अक्षय (शाश्वत) सुख दो ॥१॥

शब्दार्थ

श्रीमते—श्रीमान्, पूज्य ।
शान्तिनाथाय—श्रीशान्तिनाथ भगवान् को ।
नमः—नमस्कार हो ।
शान्तिविधायिने—शान्ति करने वाले ।
त्रैलोक्यस्य—तीन लोक के प्राणियों को ।
अमराधीश—मुकुटाभ्यर्चिताङ्घ्रये—देवेन्द्रों के मुकुटों से पूजित चरण वाले को ।
जिनके चरण देवेन्द्रों के मुकुटों से पूजित हैं उनको ।
अमराधीश—देवेन्द्र । मुकुट ।
अभ्यर्चिताङ्घ्रि — पूजित चरण वाले ।

भावार्थ—तीन लोक के प्राणियों को शान्ति करने वाले और देवेन्द्रों के मुकुटों से पूजित चरण वाले, पूज्य श्रीशान्तिनाथ भगवान् को नमस्कार हो ॥१६॥

शान्तिः शान्तिकरः श्रीमान्, शान्तिं दिशतु मे गुरुः ।
शान्तिरेव सदा तेषां, येषां शान्तिर्गृहे गृहे ॥२०॥

शब्दार्थ

शान्तिः—श्रीशान्तिनाथ भगवान् ।
शान्तिकरः—जगत् में शान्ति करने वाले ।
श्रीमान्—आत्मिक लक्ष्मी वाले, पूज्य ।
शान्तिं—शान्ति ।
दिशतु—प्रदान करे ।
मे—मुझे ।
गुरुः—जगद्गुरु, जगत् को धर्म का उपदेश करने वाले ।
शान्तिः—शान्ति ।
एव—ही ।
सदा—सदा ।
तेषां—उनके ।
येषां—जिनके ।
शान्तिः—श्रीशान्तिनाथ ।
गृहे गृहे—घर घर में ।

५८—क्षेत्र देवी स्तुति

यस्या क्षेत्रं समाश्रित्य, साधुभिः साध्यते क्रिया ।
सा क्षेत्रदेवता नित्यं, भूयान्नः सुखदायिनी ॥१॥

शब्दार्थ

यस्या क्षेत्रं — जिस देवी के क्षेत्र को	सा क्षेत्र देवता — वह क्षेत्र देवता
समाश्रित्य — आश्रय करके	नित्यं — सदा
साधुभिः साध्यते क्रिया — साधुओं द्वारा धर्म क्रिया साधी जाती है।	भूयात् — हो
	नः — हमें
	सुखदायिनी — सुख देने वाली

भावार्थ—जिस देवी के क्षेत्र के आश्रय लेकर साधुओं द्वारा धर्मक्रिया साधी जाती है, वह क्षेत्र देवी हमें निरन्तर सुख देने वाली हो ॥१॥

५९—पाक्षिकादि प्रतिक्रमण में बोली जाने वाली

दादा श्री जिनकुशल सूरि रचित

श्री पार्श्वनाथ स्तुति

द्रें द्रें किधप मप धुधु मिधोंधों, ध्रसकि धर धप धोरवं ।
दोंदोंकि दोंशों द्राग्डिदि द्राग्डिदिकि द्रमक द्रण रण द्रेणवं ॥
झझि झेंकि झेंझें झणण रणरण निजकि निजजन रंजनं ।
सुरशैलशिखरे भवतु सुखदम् पार्श्व-जिनपति मज्जनं ॥१॥
कटरेंगिनि थोंगिनि कटति गिगडदां धुधुकि धुट नट पाटवं ।
गुणगुणण गुणगण रणकि णेंणें गुणण गुणगण गौरवं ॥
झझि झेंकि झेंझें झणण रणरण निजकि निजजन सज्जनाः।
कलयंति कमला कलित कलिमल मुकल मीश महेजिनाः ॥२॥

तु—हो।
वं—सुखदाता।
वं—श्री पार्श्वनाथ।
नपति—जिनेश्वर का।
जनं—स्नात्र।
रंगिन—निगोद शरीर।
गिन—थावर शरीर।
टति—कटता है।
गडदां—चारों गति का।
धुकि—अंधेरा क्या।
ट— धारण जन्म।
ट—नटकी तरह।
टवं—कुशलता।
ण-गुणण—गुणियों की गुणता।
ण-गण—गुणों का गण।
णकि—रमण करता।
णं—नरक नहीं।
णण-गुण— गुण सम्बन्धी।
ण-गोरवं—गुण समुह का गौरव।
झि-झं कि—कैसा कर्म युद्ध।
झं झं—झीकते-झींकते।
णण-रण-रण—ऐसा महाघोर युद्ध प्राप्त।
निजकि—प्रभु को निज किया।

निजजन—ऐसे निज भक्तों को।
सज्जना—सत्जन किया।
कलयन्ति—रचना करता है।
कमला-कलित—मोक्ष लक्ष्मी युक्त।
कलिमल-मुकुल—पाप मल से रहित।
मीश—महिमावंत।
महेजिना—पूजित जिनराज।
जिनमतं—जैनमत, जैन दर्शन।
अनन्तं—अनन्त।
महिम—महिमा को।
तनुतां—विस्तारता है।
नमत—नमस्कार करते हैं।
सुर-नरं—देवता तथा मानव।
उच्छवे—महोत्सव पूर्वक।
सुर—देव।
सेवता—सेवा करते हैं।
जिन—जिनेश्वर प्रभु के सामने।
नाट्य—नाटक करने में।
रंगै—तल्लीन।
कुशलं—कुशल, सुख शांति।
अनिशं—सदा, हमेशा।
दिशतु—दो।
शासन देवता—हे शासन देव!

सारांश—इस स्तुति की रचना दादा श्रीजिनकुशल सूरि जी ने की है। इस

अच्छ—तीन बार उकाला हुआ पानी, निर्जीव, निर्मल जल तथा फल आदि का धोवन ।

बहुलेवेण वा—अथवा चावल आदि के धोवन से ।

यहाँ बहुलेवेण शब्द से चावल आदि के धोवन का पानी लेने की समाचारी है ।

ससित्थेण वा—अथवा राँधे हुए चावलों के गाढे माँड से ।

ससित्थ—राँधे हुए चावलों का धोवन ।

असित्थेण वा—अथवा चावल आदि के पतले माँड से ।

असित्थ—जो वस्तु अधिक न धोयी गयी हो पर सामान्य धोयी गयी हो ।

आयंबिल—आयंबिल, आयामाम्ल अथवा आचामाम्ल ।

आयाम—माँड (धोवन) ।

आम्ल—काँजी अथवा खट्टा पानी । चावल, उड़द और जव आदि के भोजन में जिसका (इन दो वस्तुओं का) मु[...] उपयोग होता है, उस[...] आगम की भाषा में आयंबि[...] कहते हैं ।

अब्भत्तट्ठं—उपवास को ।

अब्भत्तट्ठ-जिसमें भोजन क[...] का प्रयोजन न हो ।

पाणहार-दिवसचरिमं—पाणहार न[...] का दिवस चरिम प्रत्याख्यान ।

पाणहार—पानी के आहार [...] जो छूट थी उसका प्रत्[...]ख्यान । दिवस चरिम—[...] दिन के अवशिष्ट भ[...] तथा सारी रात के लि[...] किया जाता है, वह दिवस-चरिम प्रत्याख्यान ।

देसावगासियं—देशावकाशिक —[...] सम्बन्धी ।

उवभोगं परिभोगं—उपभोग परिभ[...] को ।

(१) नवकारसी

(चौदह नियम धारण करनेवालोंके लिये)

सूर्योदय से दो घड़ी (४८ मिनट) तक नमस्कार—सहित मुष्टि-सहित नामका प्रत्याख्यान करता है । उसमें चारों प्रकार के आहा[...]

स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिङ्मोह, साधु—वचन, महत्तराकार और सर्व समाधि प्रत्ययाकार पूर्वक त्याग करता है।

(५) एगासण, बियासण और एगलठाण

सूर्योदयसे एक प्रहर अथवा डेढ़ प्रहर तक नमस्कार सहित, मुष्टि—सहित प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार प्रच्छन्नकाल, दिङ्मोह, साधु—वचन, महत्तराकार और सर्व—समाधि—प्रत्ययाकार—पूर्वक त्याग करता है।

अनाभोग, सहसाकार, लेपालेप, गृहस्थ—संसृष्ट, उत्क्षिप्तविवेक, प्रतीत्य—म्रक्षित, पारिष्ठापनिकाकार, महत्तराकार और सर्व—समाधि—प्रत्ययाकार—पूर्वक विकृतियों का त्याग करता है।

एकासन अथवा बियासण में चौदह आगारोंकी छूट होती है, वह इस प्रकार :—अनाभोग[1], सहसाकार[2], सागारिकाकार[3], आकुञ्चन—प्रसारण[4], गुर्वभ्युत्थान[5], पारिष्ठापनिकाकार[6], महत्तराकार[7], सर्व—समाधि—प्रत्ययाकार[8], लेप[9], अलेप[10], अच्छ[11], बहुलेप[12], ससिक्थ[13], असिक्थ[14]।

(६) आयंबिल और निव्वी

सूर्योदयसे एक प्रहर (अथवा डेढ़ प्रहर) तक नमस्कार—सहित, मुष्टि—सहित प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिङ्मोह, साधुवचन, महत्तराकार और सर्व—समाधि—प्रत्ययाकार—पूर्वक त्याग करता है।

[illegible]—पूर्वक प्रत्याख्यान करता है :—

अर्थ—अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी से सम्पन्न श्रीमहावीर प्रभु अंतिम [illegible] प्रभु के मुख रूप कमल में निवास करने वाली, पूर्णिमा के चन्द्र के समान [illegible] मुख वाली, [illegible] वर्ण वाले राजहंस के समान गति वाली, सम्पूर्ण देव-ओं के समूह से पूज्य, उत्तम शरीर पर [illegible] विराजती कमल की पंखड़ियों के [illegible] शरीर वाली है श्रुतदेवी-सरस्वती ! इन सत्पुरुषों को श्रुतज्ञान के समुदाय दे ॥४॥

६१ बृहच्छान्तिः

[बड़ी शान्ति]

[मन्दाक्रान्ता]

भो भो भव्याः ! शृणुत वचनं प्रस्तुतं सर्वमेतद्,
ये यात्रायां त्रिभुवनगुरोरार्हता भक्तिभाजः ।
तेषां शान्तिर्भवतु भवतामर्हदादि-प्रभावा-
दारोग्य-श्री-धृति-मति-करी क्लेश-विध्वंसहेतुः ॥१॥

शब्दार्थ

भोः भोः—हे ! हे !
भव्याः !—भव्यजनों !
शृणुत—सुनिये ।
वचनं—वचन ।
प्रस्तुतं—प्रासङ्गिक ।
सर्वम्—सब ।
एतद्—यह ।
ये—जो ।
यात्रायां—यात्रा में, रथयात्रा में ।
त्रिभुवन-गुरोः—त्रिभुवन के गुरु की, जिनेश्वर की ।
आर्हताः—श्रावक ।
भक्तिभाजः—भक्ति वाले ।
तेषां—उनके ।
भवतु—हो, प्राप्त हो ।
भवताम्—आप श्रीमानों को ।

६३—पोसह-सुत्तं

['पोपध लेने का' सूत्र]

करेमि भंते ! पोसहं,
आहार–पोसहं देसओ सव्वओ,
सरीर–सक्कार–पोसहं सव्वओ,
बंभचेर–पोसहं सव्वओ,
अव्वावार पोसहं सव्वओ,
चउव्विहं पोसहं ठामि,
जाव दिवसं (जाव अहोरत्तं) पज्जुवासामि,
दुविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं न करेमि,
न कारवेमि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि,
अप्पाणं वोसिरामि ॥

शब्दार्थ

करेमि—करता हूँ।
भंते !—हे भदन्त ! हे पूज्य !
पोसहं—पोपध।
आहार-पोसहं—आहार-पोपध।
आहार सम्बन्धी पोपध करना वह-आहार-पोसह।
देसओ—देश से, कुछ अंशों में।
सव्वओ—सर्व से, सर्वांश में।

सरीर-सक्कार-पोसहं—शरीर-सत्कार-पोपध।
सरीर—काया। सक्कार—स्नान, उद्वर्तन (उबटन), विलेपन आदि विशिष्ट वस्त्र अलङ्कार धारण करने की क्रिया।
सव्वओ—सर्व से।

अर्थ—अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी से सम्पन्न श्रीमहावीर प्रभु अंतिम तीर्थंकर प्रभु के मुख रूप कमल में निवास करने वाली, पूर्णिमा के चन्द्र के समान निर्मल मुख वाली, श्वेत वर्ण वाले राजहंस के समान गति वाली, सम्पूर्ण देव-देवियों के समूह से युक्त, उत्तम सफेद चन्द्र विकासी कमल की पंखड़ियों के समान शरीर वाली हे श्रुतदेवी-सरस्वती ! इन सत्पुरुषों को श्रुतज्ञान के समुदाय को दो ॥४॥

६१ बृहच्छान्तिः

[बड़ी शान्ति]

[मन्दाक्रान्ता]

भो भो भव्याः ! शृणुत वचनं प्रस्तुतं सर्वमेतद्,
ये यात्रायां त्रिभुवनगुरोरार्हता भक्तिभाजः ।
तेषां शान्तिर्भवतु भवतामर्हदादि-प्रभावा-
दारोग्य-श्री-धृति-मति-करी क्लेश-विध्वंसहेतुः ॥१॥

शब्दार्थ

भोः भोः—हे ! हे !
भव्याः !—भव्यजनों !
शृणुत—सुनिये ।
वचनं—वचन ।
प्रस्तुतं—प्रासङ्गिक ।
सर्वम्—सब ।
एतद्—यह ।
ये—जो ।
यात्रायां—यात्रा में, रथयात्रा में ।
त्रिभुवन-गुरोः—त्रिभुवन के गुरु की, जिनेश्वर की ।
आर्हताः—श्रावक ।
भक्तिभाजः—भक्ति वाले ।
तेषां—उनके ।
भवतु—हो, प्राप्त हो ।
भवताम्—आप श्रीमानों को ।

प्रकृतियों को मैं बुरी मानता हूँ, तत्सम्बन्धी पापके समक्ष [illegible] प्रतिकार करता हूँ और इन अशुभ प्रकृति को करने वाले [illegible] का मैं त्याग करता हूँ।

६४. उपदेशमाला सोलह सज्झाय

जग चूडामणि भूओ, उसभो वीरो तिलोय सिरि तिलओ।
एगो लोगाइच्चो, एगो चक्खु तिहुअणस्स ॥१॥

शब्दार्थ

जग—जगत में।
चूडामणि भुओ—मुकुट के मणि समान:
उसभो—श्री ऋषभदेव प्रभु।
वीरो—श्री महावीर स्वामी।
तिलोय—तीन लोक की।
सिरि—लक्ष्मी के।
तिलओ—तिलक समान।
एगो - एक ही, अद्वितीय।
लोगाइच्चो—लोक में सूर्य समान।
एगो—एक ही, अद्वितीय।
चक्खु—नेत्रभूत।
तिहुअणस्स—तीन लोक के।

भावार्थ—श्री ऋषभदेव प्रभु तथा श्रीमहावीर स्वामी जगतमें मुकुट समान हैं, लोकमें अद्वितीय सूर्य समान हैं, तीन जगतमें अद्वितीय नेत्रभूत हैं तथा तीन लोकको लक्ष्मीके तिलकभूत हैं ॥१॥

संवच्छरमुसभ-जिणो, छम्मासे वद्धमाण-जिण-चंदो।
इह विहरिया निसरणा, जएज्ज एअ ओवमाणेणं ॥२॥

शब्दार्थ

संवच्छरं—एक वर्ष तक।
उसभ-जिणो—श्री ऋषभ जिनेश्वर।
छम्मासे—छह मास तक।
वद्धमाण—श्री वर्द्धमान, महावीर
जिणचंदो—जिनचंद्र।
इह—इस लोक में।

शब्दार्थ

न चलिज्जइ—नहीं होता है।
चालेउ—चलायमान।
महइ-महा—बड़े से बड़े।
उवसग्ग—उपसर्गों से भी।
सहस्सेहिं—हजारों।
वि—भी।
मेरु—मेरु पर्वत।
जहा—जैसे, के समान।
वद्धमाण-जिणचंदो—महावीर जिनचंद्र।
वाय-गुंजालिं—प्रलयकाल के पवन के महा वेग के गुंजाहट से।

भावार्थ—जैसे मेरु पर्वत प्रलयकाल के पवन से भी चलायमान नहीं होता वैसे ही श्रीमहावीर स्वामी भी बड़े से बड़े ऐसे हजारों उपसर्गों से चलायमान नहीं हुए ॥४॥

भद्दो विणीय विणओ, पढम गणहरो समत्त सुय-नाणी।
जाणंतो वि तमत्थं, विम्हिय हियओ सुणइ सव्वं ॥५॥

शब्दार्थ

भद्दो—भद्रिक।
विणीय—विशेष प्राप्त किया है।
विणओ—विनय जिसने।
पढम-गणहरो—प्रथम गणधर।
समत्त—समस्त, सम्पूर्ण।
सुयनाणी—श्रुतज्ञानी।
जाणंतो वि—जानते हुए भी।
तं-अत्थं—उस अर्थ को।
विम्हिय—विस्मित।
हियओ—हृदय से।
सुणइ—सुनता है, सुना।
सव्वं—सब।

भावार्थ—भद्रिक परिणामी, विशेष रूप से विनयवान, सम्पूर्ण श्रुतज्ञानी (चौदह पूर्वधर) प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी ने उस अर्थ को जानते हुए भी विस्मित हृदय से श्रीमहावीर प्रभु के मुख से सब सुना ॥५॥

भावार्थ—और इस भूमण्डल पर अपने अपने स्थान पर रहे हुए साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकाओं के रोग, उपसर्ग, व्याधि, दुःख, दुष्काल और विषाद के उपशमन द्वारा शान्ति हो ॥१७॥

ॐ तुष्टि—पुष्टि—ऋद्धि—वृद्धि—माङ्गल्योत्सवाः सदा । प्रादुर्भूतानि पापानि शाम्यन्तु, दुरितानि, शत्रवः पराङ्मुखा भवन्तु स्वाहा ॥१८॥

शब्दार्थ

ॐ—ॐ ।
तुष्टि-पुष्टि-ऋद्धि-वृद्धि-मांगल्योत्सवाः— तुष्टि, पुष्टि, ऋद्धि, वृद्धि, माङ्गल्य और अभ्युदय ।
सदा— सदा ।
(भवन्तु)—हों ।
प्रादुर्भूतानि—प्रादुर्भूत, उत्पन्न हुए ।
पापानि—पाप कर्म ।
शाम्यन्तु— शान्त हों, नष्ट हों ।
(शाम्यन्तु —शान्त हों) ।
दुरितानि—भय, कठिनाइयाँ ।
शत्रवः—शत्रुवर्ग ।
पराङ्मुखाः—विमुख ।
भवन्तु —हों ।
स्वाहा —स्वाहा ।

भावार्थ—ॐ आपको सदा तुष्टि हो, पुष्टि हो, ऋद्धि मिले, वृद्धि मिले, माङ्गल्य की प्राप्ति हो और आपका निरन्तर अभ्युदय हो। आपके प्रादुर्भूत पाप कर्म नष्ट हों, भय—कठिनाइयाँ शान्त हों तथा आपका शत्रुवर्ग विमुख बने। स्वाहा ॥१८॥

[अनुष्टुप]

श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्तिविधायिने ।
त्रैलोक्यस्यामराधीश—मुकुटाभ्यर्चिताङ्घ्रये ॥१९॥

भावार्थ—ज्ञान और दर्शन से युक्त एक मेरी आत्मा ही अमर है और दूसरे सब संयोग से उत्पन्न बहिर्भाव हैं ॥८॥

संजोग-मूला जीवेण, पत्ता दुक्ख-परंपरा ।
तम्हा संजोग-संबंधं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ॥९॥

शब्दार्थ

संजोग मूला— संयोग के कारण उत्पन्न हुई, कर्म—संयोग के कारण ही ।
जीवेण—जीवने ।
पत्ता—प्राप्त की है ।
दुक्ख-परंपरा—दुःख की परम्परा ।
तम्हा—अतएव ।
संजोग-संबंधं—संयोग सम्बन्ध को, कर्म संयोगों को ।
सव्वं—सर्व ।
तिविहेण—तीन प्रकार से, मन, वचन और काया से ।
वोसिरिअं—वोसिराया-त्यागकिया है ।

भावार्थ—सर्व सम्बन्ध का त्याग—मेरे जीवने दुःख की परम्परा कर्म संयोग के कारण ही प्राप्त की है, अत एव इन सर्व कर्म—संयोगों को मैंने मन, वचन और काया से वोसिराया—त्याग किया है ॥९॥

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिण-पन्नत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहिअं ॥१०॥

शब्दार्थ

अरिहंतो—अरिहन्त ।
मह—मेरे ।
देवो—देव हैं ।
जावज्जीवं—जीऊँ वहाँ तक ।
सुसाहुणो—सुसाधु ।
गुरुणो—गुरु (हैं) ।
जिन-पन्नत्तं—जिनेश्वरों द्वारा प्ररूपित।
तत्तं—तत्त्व ।

शब्दार्थ

(सभी पच्चक्खाणों के अर्थ एक साथ दिये हैं। बार-बार आने वाले शब्दोंके अर्थ एक बार ही दिये गये हैं।)

उग्गए सूरे—सूर्योदय के पश्चात् दो घड़ीतक, सूर्योदयसे दो घड़ी तक।

नमुक्कार—सहिअं मुट्ठि—सहिअं—नमस्कार-सहित, मुष्टि-सहित।

पच्चक्खाइ—मन, वचन और काया से त्याग करता है, प्रत्याख्यान करता है।

चउव्विहं पि आहारं—चारों प्रकार के आहार का।

असणं—अशन।

अशन—क्षुधा का शमन करे ऐसे चावल, कठोल, रोटी, पूरी आदि पदार्थ।

पाणं—पान।

पान—पानी, छाछ (मट्ठा), धोवन आदि पीने योग्य पदार्थ।

खाइमं—खादिम।

खादिम—जिससे कुछ अंश में क्षुधा की तृप्ति हो ऐसे फल, गन्ने, चिवड़ा आदि पदार्थ।

साइमं—स्वादिम।

स्वादिम—स्वाद लेने योग्य सुपारी, तज, लौंग, इलायची, चूर्ण आदि पदार्थ।

अन्नत्थ—इसके अतिरिक्त।

अणाभोगेणं—अनाभोग से।

(यहाँ मूल शब्द अणाभोगेणं है, किन्तु इसमें से अकार का लोप हो गया है।)

किसी वस्तु का प्रत्याख्यान किया है यह बात बिलकुल भूल जाने से कोई वस्तु खाने में आ जाय अथवा मुँह में रख दी जाय, उसको अनाभोग कहते हैं।

सहसागारेणं—सहसाकार से।

कोई वस्तु इच्छा न होने पर भी संयोगवशात् अथवा हठात् मुँह में प्रविष्ट हो जाय उसको सहसागार कहते हैं।

महत्तरागारेणं—महत्तराकार से।

किसी विशिष्ट प्रयोजन के उप-

भावार्थ—हे गुरुदेव ! आप आज्ञा दीजिये कि मैं अपने द्वारा किये गये दिन सम्बन्धी दुष्कृत्यों के लिये क्षमा याचना करूँ। आपकी आज्ञा नतमस्तक होकर स्वीकार करते हुए क्षमा याचना करता हूँ :—

जो कोई भी दुष्कृत जानते हुए अथवा अनजान में हुए हों—जैसेकि—बैठने आदि के स्थान में, हलन-चलन करने में, इधर-उधर आने-जाने में, वनस्पतिकाय के स्पर्श से, सचित्त बीजों के संघट्टे से, दोइन्द्रियादि त्रस जीवों के संघट्टे से, पृथ्वीकाय आदि पाँचों स्थावर जीवों के संघट्टे से, खटमल, जूँ आदि षट्पद प्राणियों के संघट्टे से जो कोई विराधना हुई हो, अथवा मन से दुश्चिन्तन किया हो, वाणी से अनुचित बोला हो, शरीर से अनुचित व्यवहार किया गया हो वे मेरे सब दुष्कृत्य मिथ्या हों ॥१॥

रात्रि के पोसह वालेको राइय प्रतिक्रमण में सातलाख के स्थान पर निम्नलिखित पाठ बोलना चाहिये

६७. पोसह रात्रि अतिचार

संथारा उवट्टणकी, परियट्टणकी, आउट्टणकी, पसारणकी, छप्पइ--संघट्टणकी, अचक्खु--विसय--कायकी, सव्वस वि राइअ, दुच्चिंतिअ, दुब्भासिअ, दुच्चिट्ठिअ, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! इच्छं, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥१॥

शब्दार्थ

संथारा उव्वट्टणकी [illegible] आउट्टणकी शरीर का [illegible]
[illegible] ।   [illegible] ।
[illegible] पसारणकी शरीर का [illegible]
[illegible] ।

का अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिम का अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार तथा सर्वसमाधि—प्रत्ययाकार पूर्वक त्याग करता है।

अनाभोग, सहसाकार, लेपालेप, गृहस्थ—संसृष्ट, उत्क्षिप्त—विवेक, प्रतीत्य—म्रक्षित, पारिष्ठापनिकाकार और महत्तराकार पूर्वक विकृतियों का त्याग करता है।

देश से संक्षेप की हुई उपभोग और परिभोग की वस्तुओं का प्रत्याख्यान करता है और उसका अनाभोग, सहसाकार, महत्तराकार और सर्व—समाधि—प्रत्ययाकार—पूर्वक त्याग करता है।

(२) नवकारसी (साधारण)

सूर्योदयसे दो घड़ी तक नमस्कार—सहित मुष्टि—सहित नामका प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, और सहसाकार पूर्वक त्याग करता है।

(३) पोरिसी और साढ़पोरिसी

सूर्योदयसे एक प्रहर (अथवा डेढ़ प्रहर) तक नमस्कार—सहित मुष्टि—सहित प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और स्वादिमका अनाभोग, सहसाकार, प्रच्छन्नकाल, दिङ्मोह, साधु—वचन, महत्तराकार और सर्व—समाधि—प्रत्ययाकार—पूर्वक त्याग करता है।

(४) पुरिमड्ढ—अवड्ढ

सूर्योदयसे पूर्वार्ध अर्थात् दो प्रहर तक अथवा अपरार्ध अर्थात् तीन प्रहर तक नमस्कार—सहित मुष्टि—सहित प्रत्याख्यान करता है। उसमें चारों प्रकारके आहारका अर्थात् अशन, पान, खादिम और

(७) आगाढे आसन्ने उच्चारे पासवणे अणहियासे।

(८) आगाढे आसन्ने पासवणे अणहियासे।

(९) आगाढे मज्झे उच्चारे पासवणे अणहियासे।

(१०) आगाढे मज्झे पासवणे अणहियासे।

(११) आगाढे दूरे उच्चारे पासवणे अणहियासे।

(१२) आगाढे दूरे पासवणे अणहियासे।

(ये दूसरे छह मांडले उपाश्रय के बाहर करना)

(१३) अणागाढे आसन्ने उच्चारे पासवणे अणहियासे।

(१४) अणागाढे आसन्ने पासवणे अणहियासे।

(१५) अणागाढे मज्झे उच्चारे पासवणे अणहियासे।

(१६) अणागाढे मज्झे पासवणे अणहियासे।

(१७) अणागाढे दूरे उच्चारे पासवणे अणहियासे।

(१८) अणागाढे दूरे पासवणे अणहियासे।

(ये तीसरे छह मांडले उपाश्रय के द्वार के बाहर अथवा समीप में रहकर करना)

(१९) अणागाढे आसन्ने उच्चारे पासवणे अहियासे।

(२०) अणागाढे आसन्ने पासवणे अहियासे।

(२१) अणागाढे मज्झे उच्चारे पासवणे अहियासे।

(२२) अणागाढे मज्झे पासवणे अहियासे।

---

८. सह्य होने पर। ९. खास कठिनाई न हो उस समय।

बंभचेर-पोसहं—ब्रह्मचर्य-पोषध।
सव्वओ—सर्व से।
अव्वावार-पोसहं—अव्यापार-पोषध कुत्सित प्रवृत्ति के त्यागरूप जो पोषध वह अव्यापार-पोषध।
सव्वओ—सर्व से।
चउव्विहं—चार प्रकार के।
पोसहं—पोषध के विषय में, पोषध-व्रत में।
ठामि—रहता हूँ, स्थिर होता हूँ।
जाव—जहाँ तक।
दिवसं—दिन पूर्ण हो वहाँ तक।
जाव—जहाँ तक।
अहोरत्तं—अहोरात्र।) (दिवस और रात्रि पूर्ण हो, वहाँ तक।)
पज्जुवासामि—सेवन करूँ।
दुविहं—दो प्रकार से, करना और कराना इन दो प्रकारों से।
तिविहेणं—तीन प्रकार से, मन, वचन और काया इन तीन प्रकारों से।
मणेणं—मन से।
वायाए—वाणी से।
काएणं—काया से।
न करेमि—न करूँ।
न कारवेमि—न कराऊँ।
तस्स—तत्सम्बन्धी सावद्य योग का।
भंते!—हे भदन्त! हे भगवन्!
पडिक्कमामि—प्रतिक्रमण करता हूँ, निवृत्त होता हूँ।
निंदामि—निन्दा करता हूँ, बुरी मानता हूँ।
गरिहामि—गर्हा करता हूँ, स्पष्ट-रूप से पुकार करता हूँ।
अप्पाणं—आत्मा का, कषायात्मा का।
वोसिरामि—वोसिराता हूँ, त्याग करता हूँ।

भावार्थ—हे पूज्य! मैं पोषध करता हूँ। उसमें आहार—पोषध देश से (कुछ अंश से) अथवा सर्व से (सर्वांश से) करता हूँ, शरीर सत्कार पोषध सर्व से करता हूँ। ब्रह्मचर्य—पोषध सर्व से करता हूँ और अव्यापार—पोषध (भी) सर्व से करता हूँ। इस तरह चार प्रकार के पोषध—व्रत में स्थिर होता हूँ। जहाँ तक दिन अथवा अहोरात्र—पर्यन्त मैं प्रतिज्ञा का सेवन करूँ वहाँ तक मन, वचन और काया से सावद्य—प्रवृत्ति न करूँ और न कराऊँ। हे भगवन्! इस प्रकार की जो कोई अशुभ—प्रवृत्ति हुई हो उससे मैं निवृत्त होता हूँ, उन अशुभ

विहरिया—विचरे ।
निसरणा—आहार पानी रहित ।
जएज्ज—उद्यम करें ।
एअ—इस ।
ओवमाणेणं—दृष्टांत से ।

भावार्थ—इस विश्व में श्री ऋषभदेव जिनेश्वर एक वर्ष तक तथा श्रीमहावीर जिनचंद्र छह मास तक आहार पानी रहित तप के साथ विचरे इस दृष्टांत से जिस प्रकार श्री ऋषभदेव प्रभु तथा श्रीमहावीर स्वामी ने तप में उद्यम किया उसी प्रकार सब उद्यम करें ।

जइ ता तिलोय नाहो, विसहइ बहुयाइं असरिस जणस्स ।
इअ जीयंत-कराइं, एस खमा सव्व साहूणं ॥३॥

शब्दार्थ

जइ—जिस, जैसी क्षमा से ।
ता—इस कारण से ।
तिलोय-नाहो—तीन लोक के नाथ ।
विसहइ—सहन किया ।
बहुयाइं—बहुत उपसर्गों को ।
असरिस-जणस्स—साधारण पुरुषों ।
जियंत-कराइं—प्राणांत कष्ट को करने वाले ।
एस—ऐसी ।
खमा—क्षमा ।
सव्व-साहूणं—सब साधुओं को ।
इअ—इन ।

भावार्थ—तीन लोक के नाथ श्रीमहावीर प्रभु ने जैसी क्षमा से गवाले जैसे साधारण पुरुषों द्वारा किये गये इन प्राणांत कष्टों—बहुत उपसर्गों को सहन किया वैसी क्षमा सब साधुओं को रखनी चाहिये ॥३॥

न चइज्जइ चालेउ, महइ-महा वद्धमाण-जिणचंदो ।
उवसग्ग सहस्सेहिं वि, मेरु जहा वाय-गुंजाहिं ॥४॥

लीपते या अन्य कुछ काम काज करते यतना न की। पाखी पोसह आदि तिथि का नियम तोड़ा। धूनी करवाई। इत्यादि पहले स्थूल-प्राणातिपात-विरमण-व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं।

दूसरे स्थूल-मृषावाद-विरमण-व्रत के पांच अतिचार : "सहस्सा रहस्स दारे०" सहसात्कार :—विना विचारे एकदम किसीको अयोग्य आल कलंक दिया। स्व-स्त्री-संबंधी गुप्त बात प्रकट की, अथवा अन्य किसी का मंत्र-भेद मर्म प्रकट किया। किसी को दुःखी करने के लिये खोटी सलाह दी। झूठा लेख लिखा, झूठी साक्षी दी। अमानत में खयानत की। किसी की धरोहर रखी हुई वस्तु वापिस न दी। कन्या, गौ, भूमि संबंधी लेन-देन में लड़ते झगड़ते वाद-विवाद में मोटा झूठ बोला। हाथ-पैर आदि की गाली दी। इत्यादि स्थूल-मृषावाद-विरमण-व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं॥

तीसरे स्थूल-अदत्तादान-विरमण-व्रत के पाँच अतिचार :—"तेनाहडप्पओगे०" घर-बाहिर, खेत, खला में बिना मालिक के भेजे वस्तु ग्रहण की। अथवा बिना आज्ञा अपने काम में ली। चोरी की वस्तु ली। चोर को सहायता दी। राज्य-विरुद्ध कर्म किया। अच्छी, बुरी, सजीव, निर्जीव नई, पुरानी वस्तु का मेल संमेल किया। जकात की चोरी की। लेते देते तराजू की डंडी चढ़ाई अथवा देते हुए कमती दिया, लेते हुए अधिक लिया। रिशवत खाई। विश्वासघात किया, ठगी की, हिसाब किताब में धोखा दिया। माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री आदिकों के साथ ठगी कर किसी को दिया। अथवा पूंजी अलहदा रखी, इमानत रखी हुई

९५—संथारा-पोरिसी

[संस्तारक—पौरुषी]

निसीहि, निसीहि, निसीहि,

नमो खमासमणाणं गोयमाइणं महामुणीणं ॥

शब्दार्थ

निसीहि—अन्य सर्व प्रवृत्तियों का निषेध करता हूँ।
नमो—नमस्कार हो।
खमासमणाणं—क्षमा-श्रमणों को।
गोयमाइणं—गौतम आदि।
महामुणिणं—महामुनियों को।

भावार्थ—नमस्कार—अन्य सब प्रवृत्तियों का निषेध करता हूँ, निषेध करता हूँ। क्षमाश्रमणों को नमस्कार हो। गौतम आदि महामुनियों को नमस्कार हो।

अणुजाणह जिट्ठुज्जा !

अणुजाणह परम-गुरु ! गुरु-गुण-रयणेहिं मंडिय-सरीरा !

बहु-पडिपुन्ना पोरिसी, राइय-संथारए ठामि ॥१॥

शब्दार्थ

अणुजाणह—अनुज्ञा दीजिए।
जिट्ठुज्जा !—हे ज्येष्ठ आर्यो !
अणुजाणह—अनुज्ञा दीजिये।
परम-गुरु !—हे परम-गुरुओं !
गुरु-गुण-रयणेहिं—उत्तम गुण-रत्नोंसे।
मंडिय-सरीरा—विभूषित देह वाले।
बहु-पडिपुन्ना—सम्पूर्ण, अच्छी तरह परिपूर्ण।
पोरिसी—पौरुषी।
पोरिसी—दिन अथवा रात्रिका चौथा भाग।
राइय-संथारए—रात्रि संथारे के विषय में।
ठामि—स्थिर रहता हूँ, स्थिर होने की।

अ—और।
काय-पडिलेहा—काया की पडिलेहणा करनी।
दव्वाइ-उवओगं—द्रव्यादिका विचार करना; द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की विचारणा करनी।
णिस्सास-निरुंभणा-लोए—श्वास को रोकना और द्वार की ओर देखना।
णिस्सास-निःश्वास। निरुंभण-रोध, रोकना।

भावार्थ—यदि पैर लम्बे करने के बाद में सिकोड़ने पड़ें तो घुटनों को पूंजकर सिकोड़ने और करवट बदलनी पड़े तो शरीर का प्रमार्जन करना (यह इसकी विधि है। यदि कायचिन्ता के लिये उठना पड़े तो) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की विचारणा करनी और (इतना करने पर भी यदि निद्रा न उड़े तो हाथ से नाक दबा कर) श्वास को रोकना और इस प्रकार निद्रा बराबर उड़े तब प्रकाश वाले द्वार के सामने देखना (यह इसकी विधि है) ॥३॥

जइ मे हुज्ज पमाओ, इमस्स देहस्सिमाइ रयणीए।
आहारमुवहि-देहं, सव्वं तिविहेण वोसिरिअं ॥४॥

शब्दार्थ

जइ—यदि।
मे—मेरे।
हुज्ज—हो।
पमाओ—प्रमाद, मरण।
इमस्स—इस।
देहस्स—देह का।
इमाइ रयणीए—इस रात्रि में ही।
आहारमुवहि-देहं—आहार—पानी, वस्त्र—उपकरण और देह का।
सव्वं—सब का।
तिविहेण—तीन प्रकार से, मन, वचन और काया से।
वोसिरिअं—वोसिराया है, त्याग किया है।

भावार्थ—सागारी अनशन—यदि मेरे इस देह का इस रात्रि में ही मरण

इग्र—ऐसा ।	मए—मैंने ।
सम्मत्तं—सम्यक्त्व ।	गहिअं—ग्रहण किया है ।

भावार्थ—सम्यक्त्व की धारणा—मैं जीऊँ वहाँ तक अरिहन्त मेरे देव हैं, सुसाधु मेरे गुरु हैं और जिनेश्वरों द्वारा प्ररूपित तत्त्व (यह मेरा धर्म है,) ऐसा सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है ॥१०॥

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि--पन्नत्तो धम्मो मंगलं ॥११॥

शब्दार्थ

चत्तारि—चार, चार पदार्थ ।	साहू—साधु ।
मंगलं—मङ्गल ।	मंगलं —मङ्गल ।
अरिहंता—अरिहन्त ।	केवलि-पन्नत्तो—केवलि से प्ररूपित, केवलि-प्ररूपित ।
मंगलं—मङ्गल ।	धम्मो—धर्म ।
सिद्धा—सिद्ध ।	मंगलं मङ्गल ।
मंगलं—मंङ्गल ।	

भावार्थ—मंगलभावना—चार पदार्थ मङ्गल :—(१) अरिहन्त मङ्गल हैं, (२) सिद्ध मङ्गल हैं, (३) साधु मङ्गल हैं और (४) केवलि—प्ररूपित धर्म मङ्गल है ॥११॥

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि-पन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥१२॥

शब्दार्थ

चत्तारि—चार, चार पदार्थ ।	अरिहन्ता०—पूर्ववत् ।
लोगुत्तमा—लोकोत्तम हैं ।	

किरिआ-विहि-संचिअ--कम्म-किलेस--विमुक्खयरं,
अजिअं निचिअं च गुणेहिं महामुणि--सिद्धिगयं।
अजिअस्स य संतिमहामुणिणो वि अ संतिकरं,
सययं मम निव्वुइ--कारणयं च नमंसणयं ॥५॥
आलिंगणयं

पुरिसा ! जइ दुक्ख--वारणं,
जइ य विमग्गह सुक्ख--कारणं।
अजिअं संतिं च भावओ,
अभयकरे सरणं पवज्जहा ॥६॥
मागहिआ

शब्दार्थ

अजिअजिण !—हे अजितनाथजिन !
सुह-प्पवत्तणं—शुभका प्रवर्तन करने वाला। शुभ करने वाला।
सुह—सुख, शुभ। प्पवत्तण—प्रवर्तन करने वाला।
तव—आपका।
पुरिसुत्तम !—हे पुरुषोत्तम !
नाम-कित्तणं—नामस्मरण।
कित्तण—कीर्तन, स्मरण।
तह य—वैसा ही।
धिइ-मइ-प्पवत्तणं—धृतिगुण मतिका प्रवर्तन करने वाला, स्थिर बुद्धि को देने वाला।
धिइ—चित्त का स्वास्थ्य, स्थिरता। मइ—बुद्धि।
तव—आपका।
च—और।
जिणुत्तम !—हे जिनोत्तम !
संति !—हे शान्तिनाथ !
कित्तणं—कीर्तन, नाम—स्मरण।
किरिआ-विहि-संचिअ-कम्म-किलेस-विमुक्खयरं—कायिकी आदि

दन के पोसह वाले को देवसिय प्रतिक्रमण में सात लाख
के स्थान पर निम्नलिखित पाठ बोलना चाहिए

६६. पोसह देवसिय अतिचार

ठाणे, कमणे, चंकमणे, आउत्ते, अणाउत्ते, हरियक्काय संघट्टे, बीयकाय संघट्टे, तसकाय संघट्टे, थावरकाय संघट्टे, छप्पइय संघट्टे, सव्वस वि देवसीय, दुच्चिंतिअ, दुब्भासिअ, दुच्चिट्ठिअ, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! इच्छं, तस्स-मिच्छामि दुक्कडं ॥१॥

शब्दार्थ

ठाणे—स्थान में, बैठने आदि के स्थान में।
कमणे—हलन चलन करने में।
चंकमणे—इधर उधर फिरने में।
आउत्ते—जानते हुए।
अणाउत्ते—अनजान में।
हरियक्काय संघट्टे—वनस्पति के स्पर्श से।
बीयक्काय संघट्टे—सचित बीज के संघट्टे से।
तसकाय संघट्टे—त्रस जीवोंके संघट्टे से चलने फिरने की क्षमता रखने वाले जीवों के संघट्टे से।
थावरकाय संघट्टे—पृथ्वी आदि पाँचों स्थावर के संघट्टे से।
छप्पइय संघट्टे—छह पैरों वाले जूं खटमल आदि के संघट्टे से।
सव्वसवि—सब।
देवसिय—दिन सम्बन्धी।
दुच्चितिय—दुश्चितन किया हो।
दुब्भासिय—अनुचित बोला हो।
दुच्चिट्ठय—अनुचित व्यवहार किया हो
इच्छाकारेण—इच्छा पूर्वक।
संदिसह—आज्ञा दीजिए।
भगवन्—हे भगवन्।
इच्छं—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।
तस्स—उसके लिये।
मिच्छामि—मेरा मिथ्या हो।
दुक्कडं—दुष्कृत।

है। हे जिनोत्तम ! हे शान्तिनाथ ! आपका नाम—स्मरण भी ऐसा ही है॥४॥

कायिकी आदि पच्चीस प्रकार की क्रियाओं से संचित कर्मों की पीड़ा से सर्वथा छुड़ानेवाला, सम्यग्दर्शनादि गुणों से परिपूर्ण, महामुनियों की अणिमादि आठों सिद्धियोंको प्राप्त करानेवाला और शान्तिकर ऐसा श्रीशान्तिनाथ भगवान्का पूजन मुझे सदा मोक्ष का कारण बनो ॥५॥

हे पुरुषो ! यदि तुम दुःख—नाशका उपाय अथवा सुख—प्राप्तिका कारण खोजते हो तो अभयको देनेवाले श्रीअजितनाथ और श्रीशान्तिनाथ की शरण भावसे अङ्गीकृत करो ॥६॥

(मुक्तकद्वारा श्रीअजितनाथ की स्तुति)

अरइ–रइ–तिमिर–विरहिअमुवरय–जर–मरणं,
सुर–असुर--गरुल--भुयगवइ--पयय-पणिवइयं ।
अजिअमहमवि अ सुनय--नय--निउणमभयकरं,
सरणमुवसरिअ भुवि--दिविज--महियं सययमुवणमे ॥७॥
संगययं

शब्दार्थ

अरइ-रइ-तिमिर-विरहिअं — विषाद और हर्ष को उत्पन्न करने वाले अज्ञान से रहित।
अरइ—विषाद। रइ—हर्ष। तिमिर—अन्धकार, अज्ञान। विरहिअ—रहित।
उवरय जर-मरण वृद्धावस्था और मृत्यु से रहित।

उवरय—निवृत्त, रहित। जरा—वृद्धावस्था। मरण—मृत्यु।
सुर-असुर-गरुल भुयगवइ पयय-पणिवइयं — देव, असुरकुमार, सुवर्णकुमार, नागकुमार आदि के इन्द्रों से अच्छी तरह नमस्कार किये हुए।
सुर—वैमानिक देव। असुर

छप्पइअ-संघट्टणकी—षट्पद जन्तुओं के संघट्टन से।	हुई हो।
	सव्वसवि—सब।
अच्चक्खु-विसय-कायकी—पेशाब आदि परठवते हुए जो कोई विराधना	राइअ—रात्रि के।
	दुच्चिंतिअ आदि—पूर्ववत्।

भावार्थ—हे गुरुदेव! आप आज्ञा दीजिए कि मैं अपने द्वारा किये गये रात्रि सम्बन्धी दुष्कृत्यों के लिये क्षमा याचना करूँ। आपकी आज्ञा नतमस्तक होकर स्वीकार करता हूँ और क्षमा याचना करता हूँ:—

जो कोई भी दुष्कृत जानते हुए अथवा अनजान में हुए हों—जैसेकि—संथारा बिना पूंजे एक बार करवट बदलते हुए, शरीर का संकोच करते हुए, हाथ, पैर पसारते हुए, षट्पद आदि जन्तुओं के संघट्टन से, पेशाब आदि परठते हुए जो कोई विराधना हुई हो अथवा मन से दुश्चिंतन किया हो, वाणी से अनुचित बोला हो, शरीर से अनुचित किया गया हो; मेरे ये सब दुष्कृत मिथ्या हों ॥१॥

६८. चौवीस मांडला थंडिला पडिलेहण

(१) आगाढे[1] आसन्ने[2] उच्चारे[3] पासवणे[4] अणहियासे[5]।

(२) आगाढे आसन्ने पासवणे अणहियासे।

(३) आगाढे मज्झे[6] उच्चारे पासवणे अणहियासे।

(४) आगाढे मज्झे पासवणे अणहियासे।

(५) आगाढे दूरे[7] उच्चारे पासवणे अणहियासे।

(६) आगाढे दूरे पासवणे अणहियासे।

(ये पहले छह मांडले संथारेकी जगहके पास करना)

---

१. खास कठिनाई के समय। २. पास में। ३. बड़ीनीति के प्रसंग में। ४. लघुनीति के प्रसंग में। ५. असह्य होने पर। ६. मध्य में। ७. दूर।

शब्दार्थ

तं—उन।

च—और।

जिणुत्तमं—जिनोत्तम को।

उत्तम-नित्तम-सत्त-धरं—श्रेष्ठ और निर्दोष पराक्रम को धारण करने वाले।

उत्तम—श्रेष्ठ। नित्तम—निर्मल, निर्दोष। सत्त—पराक्रम। धर-धारण करने वाले।

अज्जव-मद्दव-खंति-विमुत्ति-समाहि-निहिं—सरलता, मृदुता, क्षमा और निर्लोभिता द्वारा समाधि के भण्डार।

अज्जव—सरलता। मद्दव-मृदुता। खंति—क्षमा। विमुत्ति—निर्लोभिता। समाहि—समाधि। निहि-भण्डार।

संतिकरं—शान्ति करने वाले।

पणमामि—प्रणाम करता हूँ।

दमुत्तम-तित्थयरं—इन्द्रियदमनमें उत्तम ऐसे तीर्थङ्कर को। दम-इन्द्रियों का दमन।

संतिमुणी!—हे शान्तिनाथ!

मम—मुझे।

संति-समाहि-वरं—श्रेष्ठ शान्ति और समाधि।

संति—उपद्रवरहित स्थिति। समाहि—चित्त की प्रसन्नता। वरं—श्रेष्ठ।

दिसउ—दो, देने वाले बनो।

भावार्थ—श्रेष्ठ और निर्दोष पराक्रमको धारण करनेवाले; सरलता, मृदुता, क्षमा, और निर्लोभिता द्वारा समाधि के भण्डार; शान्ति करनेवाले; इन्द्रियदमन में उत्तम ऐसे तीर्थङ्कर को मैं प्रणाम करता हूँ। हे शान्तिनाथ! मुझे श्रेष्ठ समाधि देने वाले बनो ॥८॥

(सन्दानितक द्वारा श्रीअजितनाथकी स्तुति)

सावत्थि-पुव्व-पत्थिवं च वरहत्थि-मत्थय-पसत्थ-वित्थिन्न-संथियं थिर-सरिच्छ-वच्छं,

(२३) अणागाढे दूरे उच्चारे पासवणे अहियासे ।
(२४) अणागाढे दूरे पासवणे अहियासे ।
(ये चौथे छह मांडले उपाश्रयके करीब सौ हाथ दूर रहकर करना)

६१. हिन्दी पाक्षिकादि अतिचार

"नाणम्मि दंसणम्मि अ चरणम्मि तवम्मि तह य वीरियम्मि ।
आयरणं आयारो, इअ एसो पंचहा भणिओ ॥१॥

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार, इन पाँचों आचारों में जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में[1] सूक्ष्म या बादर जानते, अजानते लगा हो वह सब मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं ।

तत्र ज्ञानाचार के आठ अतिचार

"काले विणए बहुमाणे, उवहाणे तह अनिण्हवणे ।
वंजण-अत्थ-तदुभये अट्ठ-विहो नाणमायारो ॥२॥"

ज्ञान नियमित समय में पढ़ा नहीं । अकाल समय में पढ़ा । विनय रहित, बहुमान रहित, योगोपधान रहित पढ़ा । ज्ञान जिससे

---

१. चउमासी प्रतिक्रमण में—इन पांचों आचारों में जो कोई अतिचार चउमासीअ दिवस में सूक्ष्म आदि, संवच्छरीअ प्रतिक्रमण में इन पांचों आचारों में जो कोई अतिचार संवच्छरीअ दिवस में सूक्ष्म आदि पढ़ना चाहिये ।

इस प्रकार इस अतिचार में जहाँ-जहाँ "पक्ष दिवस में" आया हो, वहाँ चउमासीअ प्रतिक्रमण में "चउमासीअ दिवस में" तथा संवच्छरीअ प्रतिक्रमण में "संवच्छरीअ दिवस में" पढ़ना चाहिये ।

अ—और।
बले—बल में।
अजिअं—अजित।
तव-संजमे—तप तथा संयम में।
अ—और।
अजिअं—अजित।
एस—यह।
थुणामि—मैं स्तुति करता हूँ।
जिणं—जिनकी।
अजिअं—अजितनाथ को।

भावार्थ—चन्द्रकलासे भी अधिक सौम्य, आवरण-रहित सूर्य की किरणोंसे भी अधिक तेजवाले, इन्द्रोंके समूहसे भी अधिक रूपवान्, मेरु—पर्वतसे भी अधिक दृढ़तावाले तथा निरन्तर आत्म—बलमें अजित, शारीरिक बलमें भी अजित और तप—संयम में भी अजित, ऐसे श्रीअजितजिन की मैं स्तुति करता हूँ ॥१५—१६॥

सोम–गुणेहिं पावइ न तं नव–सरय–ससी,
तेअ–गुणेहिं पावइ न तं नव–सरय–रवी।
रूव–गुणेहिं पावइ न तं तिअस–गण–वई,
सार–गुणेहिं पावइ न तं धरणि–धर–वई ॥१७॥
खिज्जिअयं

तित्थवर–पवत्तयं तम–रय–रहियं,
धीर–जण–थुअच्चिअं चुअ–कलि–कलुसं।
संति–सुह–पवत्तयं तिगरण–पयओ,
संतिमहं महामुणिं सरणमुवणमे ॥१८॥ ललिअयं

शब्दार्थ

सोम-गुणेहिं—आह्लादकता आदि गुणों से।
पावइ न—प्राप्त नहीं हो सकता, बराबरी नहीं कर सकता।

किया। कुचारित्री को देखकर चारित्रवान पर भी अश्रद्धा की। संघ में गुणवान की प्रशंसा न की। धर्म से पतित होते हुए जीव को स्थिर न किया। साधर्मी का हित न चाहा। भक्ति न की। अपमान किया। देवद्रव्य, ज्ञानद्रव्य, साधारणद्रव्य की हानि होते हुए उपेक्षा की। शक्ति के होते हुए भली प्रकार सार संभाल न की। साधर्मी से कलह क्लेश करके कर्मबंधन किया। मुखकोप बांधे विना वीतराग देव की पूजा की। धूपदानी, खसकूची, कलश आदिक से प्रतिमाजी को ठपका लगाया। जिनबिंब हाथ से गिरा। श्वासोच्छ्वास लेते हुए आशातना हुई। जिनमंदिर तथा पौषधशाला में थूका तथा मल श्लेश्म किया, हँसी मश्करी की, कुतूहल किया। जिनमंदिर संबंधी चोरासी आशातनाओं में से और गुरु महाराज संबंधी तेत्तीस आशातनाओं में से कोई आशातना हुई हो। स्थापनाचार्य हाथ से गिरे हों, या उनकी पडिलेहण न हुई हो। गुरु के वचन को मान न दिया हो इत्यादि दर्शनाचार संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

चारित्राचार के आठ अतिचार

"पणिहाणजोगजुत्तो, पंचहिं समिइहिं तिहिं गुत्तिहिं।
एस चरित्तायारो, अट्ठ विहो होइ नायव्वो ॥४॥

ईर्या-समिति, भाषा-समिति, एषणा-समिति, आदान-भंडमत्त-निक्षेपणा-समिति और पारिष्ठापनिका-समिति, मनो-गुप्ति, वचन-गुप्ति, काया-गुप्ति, ये आठ प्रवचन-माता सामायिक–पौषधादिक में अच्छी तरह पाली नहीं। चारित्राचार संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

आदि की निंदा की। मिथ्यादृष्टि की पूजा प्रभावना देखकर प्रशंसा तथा प्रीति की। दाक्षिण्यता से उसका धर्म माना। मिथ्यात्व को धर्म कहा। इत्यादि श्रीसम्यक्त्व व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

पहले स्थूल-प्राणातिपात-विरमण-व्रत के पांच अतिचार :—
"वह बंध छविच्छेए०" द्विपद, चतुष्पद आदि जीव को क्रोधवश ताड़न किया, घाव लगाया, जकड़कर बांधा, अधिक बोझ लादा। निर्लांछन कर्म—नासिका छीदवाई, कर्ण छेदन करवाया। खस्सी किया। दाना घास पानी की समय पर सार संभाल न की, लेन देन में किसी के बदले किसी को भूखा रखा, पास में खड़ा होकर मरवाया कैद करवाया। सड़े हुए धान को बिना सोधे काम में लिया, अनाज बिना सोधे पिसवाया। धूप में सुकाया। पानी यतना से न छाना। ईंधन, लकड़ी, उपले, गोहे आदि बिना देखे जलाये। उसमें सर्प, बिच्छू, कानखजूरा, कीड़ी, मकोड़ी आदि जीवों का नाश हुआ। किसी जीव को दबाया। दुःख दिया। दु.खी जीव को अच्छी जगह पर न रखा। कीड़ी मकोड़ी के अंडे नाश किये। लीख, फोड़ा, दीमक, कीड़ी, मकोड़ी, घीमेल, कांतर, चूडेल पतंगिया, मेंढक, अलसिया, ईयल, डांस, मच्छर, मंगतरा, मक्खी, टिड्डी, प्रमुख जीवों का नाश किया। चील, काग, कबूतर आदि के रहने की जगह का नाश किया। घोंसले तोड़े। चलते फिरते या अन्य कुछ काम काज करते निर्दयपना किया। भली प्रकार जीव रक्षा न की। बिना छाने पानी से स्नानादि कामकाज किया, कपड़े धोये। यतना-पूर्वक काम-काज न किया। चारपाई, खटोला, पीढ़ा, पीढ़ी आदि धूप में रखे। डंडे आदि से झटकाये। जीव जंतुवाली जमीन को लीपा। दलते, कूटते,

वस्तु में इनकार किया। पड़ी हुई चीज उठाई। इत्यादि स्थूल-अदत्तादान-विरमण-व्रत संबंधी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

चौथे स्वदारा-संतोष-परस्त्री-गमन-विरमण-व्रत के पांच अतिचार :—"अपरिगहिया इत्तर०" पर स्त्री गमन किया। अविवाहिता कुमारी, विधवा वेश्या आदिक से गमन किया। अनंगक्रीड़ा की। काम आदि की विशेष जागृति की अभिलाषा से सराग वचन कहा। अष्टमी चौदस आदि पर्व तिथि का नियम तोड़ा। स्त्री के अंगोपांग देखे, तीव्र अभिलाषा की। कुविकल्प चिंतन किया। पराये नाते जोड़े। गुड्डे गुड्डियों का विवाह किया या कराया। अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार स्वप्न स्वप्नांतर हुआ। कुस्वप्न आया। स्त्री, नट, विट, भांड, वेश्यादिक से हास्य किया। स्व-स्त्री में सन्तोष न किया। इत्यादि स्वदारा-संतोष-परस्त्री-गमन-विरमण व्रत सम्बन्धी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

पांचवें स्थूल-परिग्रह-परिमाण-व्रत के पांच अतिचार :—"धण-धन्न-खित्त-वत्थू०" धन, धान्य, क्षेत्र, वास्तु, सोना, चांदी, वर्त्तन आदि, द्विपद-दास-दासी नौकर, चतुष्पद—गौ, बैल, घोड़ादि नव प्रकार के परिग्रह का नियम न लिया। लेकर बढ़ाया। अथवा अधिक देखकर मूर्च्छा-वश माता-पिता पुत्र-स्त्री के नाम किया। परिग्रह का परिमाण नहीं किया। करके भुलाया। याद न किया। इत्यादि स्थूल-परिग्रह-परिमाण-व्रत सम्बन्धी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

([illegible] श्रीअजितनाथकी स्तुति)

अंवरंतर--विआरणिआहिं,

ललिअ--हंस--वहु--गामिणिआहिं ।

पीण--सोणि--थण--सालिणिआहिं,

सकल--कमल--दल--लोअणिआहिं ॥२६॥

दीवयं

पीण--निरंतर--थणभर--विणमिअ--गाय--लआहिं,

मणि--कंचण--पसिढिल--मेहल--सोहिअ--सोणि--तडाहिं ।

वर--खिंखिणि--नेउर--सतिलय--वलय--विभूसणिआहिं,

रइकर--चउर--मणोहर--सुंदर--दंसणिआहिं ॥२७॥

चित्तक्खरा

देव—सुंदरीहिं—पाय—वंदिआहिं वंदिआ य जस्स ते

सुविक्कमा कमा,

अप्पणो निडालएहिं मंडणोड्डण—प्पगारएहिं

केहिं केहिं वि ?

यह सब मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

आभ्यन्तर तप :—"पायच्छित्तं विणओ०" शुद्धांतःकरणपूर्वक गुरु महाराज से आलोचना न ली। गुरु की दी हुई आलोचना सम्पूर्ण न की। देव, गुरु, संघ, साधर्मी का विनय न किया। बाल, वृद्ध, ग्लान, तपस्वी आदि की वैय्यावच्च (सेवा) न की। वाचना, पृच्छना, परावर्त्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा रूप पांच प्रकार का स्वाध्याय न किया। धर्म-ध्यान, शुक्ल-ध्यान ध्याया नहीं। आर्त-ध्यान रौद्र-ध्यान ध्याया। दुःख-क्षय कर्म क्षय निमित्त दस बीस लोगस्स का काउसग्ग न किया। इत्यादि आभ्यन्तर (भीतरी) तप सम्बन्धी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस मे सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

वीर्याचार के तीन अतिचार :—अणिगूहिअ बल विरिओ० पढ़ते, गुणते, विनय, वैय्यावच्च, देवपूजा, सामायिक, पोषध, दान, शील, तप, भावनादिक धर्म-कृत्य में मन वचन काया का बल-वीर्य पराक्रम फोरा नहीं। विधिपूर्वक पंचांग खमासमण न दिया। द्वादशावर्त्त वंदन की विधि भली प्रकार न की। अन्य चित्त निरादर से बैठा। देववंदन, प्रतिक्रमण, में जल्दी की। इत्यादि वीर्याचार सम्बन्धी जो कोई अतिचार पक्ष दिवस में सूक्ष्म या बादर जानते अजानते लगा हो वह सब मन वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं ॥

"नाणाइ अट्ठ पइवय, समसंलेहण पन्नर कम्मेसु ॥
बारस तव विरिअ तिगं चउव्वीसं सय अइयारा ॥"

"पडिसिद्धाणं करणे०" प्रतिषेध :—अभक्ष्य अनंतकाय बहुबीज भक्षण, महारंभ, परिग्रहादि किया। देवपूजन आदि षट्कर्म, सामायिकादि छह आवश्यक, विनयादिक अरिहंत की भक्ति प्रमुख करणीय कार्य किये नहीं। जीवाजीवादि सूक्ष्म विचार की सद्दहणा न की।

पधारनेके बाद [illegible] प्रदक्षिणा देकर, वन्दन करनेके लिये आकर तथा भक्ति—पूर्ण वन्दन करनेके बाद हैं देवाङ्गनाओंने अपने नाटकोंमें जिनके सम्यक् प्रकारसे चरणोंकी भक्ति किया है तथा बार-बार वन्दन किया है, ऐसे मोहको सर्वथा जीतने वाले, सर्व क्लेशोंका नाश करनेवाले जिनेश्वर श्रीअजितनाथको मन, वचन और कायाके प्रणिधान—पूर्वक मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २६—२७—२८—२९॥

(कलापकद्वारा श्रीशान्तिनाथकी स्तुति)

थुअ—वंदिअस्सा, रिसि गण—देव—गणेहिं ।
तो देव—वहुहिं, पयओ—पणमिअस्सा
जस्स—जगुत्तम सासण—अस्सा,
भत्ति—वसागय—पिंडियआहिं ।
देव—वरच्छरसा—बहुआहिं,
सुर—वर—रइगुण—पंडियआहिं ॥३०॥ भासुरयं
वंस—सद्द—तंति—ताल—मेलिए तिउक्खराभिराम—सद्द—
मीसए—कए अ, सुइ—समाणणे अ सुद्ध—सज्ज—गीय—
—पाय—जाल—घंटिआहिं ।
वलय—मेहला—कलाव—नेउराभिराम—सद्द—मीसए कए अ,
देव—नट्टिआहिं हाव—भाव—विब्भम—प्पगारएहिं
नच्चिऊण अंगहारएहिं

अथ सप्त-स्मरणानि

(श्री आचार्य नंदिषेणजी कृत)

७०. पहला [1]अजित-शांति स्मरण

अजिअं जिअ-सव्व-भयं, संतिं च पसंत-सव्व-गय-पावं।
जय-गुरु संति-गुणकरे, दो वि जिणवरे पणिवयामि ॥१॥ गाहा

शब्दार्थ

अजिअं—श्रीअजितनाथ को।
जिअ-सव्व-भयं—समस्त भयों को जीतने वाले।
जिअ—जीतने वाले। सव्व-भय-समस्त भय।
संतिं—श्री शान्तिनाथ को।
च—और।
पसंत-सव्व-गय-पावं—सर्व रोगों और पापों का प्रशमन करते वाले।
पसंत—पुनः न हो इस प्रकार निवृत्ति प्राप्त, प्रशमन करने वाले। सव्व—सर्व।
जय-गुरु—जगत् के गुरु को।
संति-गुणकरे—विघ्नों का उपशमन करने वाले को।
संति—विघ्नों का उपशमन।
दो वि—दोनों ही।
जिणवरे—जिनवरों को।
पणिवयामि—मैं पंचाङ्ग प्रणिपात करता हूँ।

एक स्वतन्त्र पद्य को मुक्तक, दो पद्यों के समूह सन्दानितक, तीन पद्यों के समूह को विशेषक और चार पद्यों के समूह को कलापक कहते हैं।

१. श्रीमहावीर प्रभुके शिष्य श्रीनंदिषेणजी श्रीशत्रुञ्जयतीर्थ की यात्राके लिये गये वहां आदि प्रासादमें प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव को नमस्कार करके पश्चात् दो मंदिरों में विराजित श्रीअजितनाथ व श्रीशांतिनाथका नमस्कार कर, दोनों मंदिरों के बीच में काउस्सग्ग में रहे। कायोत्सर्ग पूर्ण कर श्रीअजितनाथ तथा श्रीशांतिनाथकी एक साथ स्तुति की। किसी आचार्य का मत है कि यह आचार्य भगवान् नेमिनाथ के शिष्य थे।

दर्दु रक नामके चमड़ेके मढ़े हुए वाद्य। अभिराम—प्रिय। सद्द—शब्द। मीसअ—कअ-मिश्रण करना।

य—और।

सुइ-समाणणे अ—और श्रुतियोंको समान करती हुई।

सुइ—स्वरका सूक्ष्म भेद। समाणण—सम में लानेकी क्रिया।

सुद्ध-सज्ज-गीय-पायजाल-घंटिआहिं—दोष रहित प्रकृष्ट गुणवाले गीत गाती तथा पाद-जाल-पायजेवकी घूघरियां बजाती।

सुद्ध—दोष—रहित। सज्ज—प्रकृष्ट गुणवाला। गीय—गीत। पाय—जाल—पाय-जेब, पाँव का एक प्रकारका आभूषण। घंटिआ-घूघरिया।

वलय-मेहला-कलाव-नेउराभिराम-सद्द-मीसए कए—कङ्कण, मेखला, कलाप और झांझरके मनोहर शब्दोंका मिश्रण करती।

वलय—कङ्कण। मेहला—मेखला, कलाव—कलाप। नेउर—नूपुर, झांझर। अभिराम—मनोहर। सद्द—शब्द। मीसए कए—मिश्रण करती।

अ—और।

देव-नट्टिआहिं — देवनर्तिकाओंसे। देवलोक में नृत्य—नाट्य आदि कार्य करनेवाली देवनर्तिका कहलाती है।

हाव-भाव-विब्भम-प्पगार-एहिं—हाव-भाव और विभ्रमके प्रकारोंसे।

हाव—मुखसे की जानेवाली चेष्टा। भाव—मानसिक भावोंसे दिखायी जानेवाली चेष्टा। विब्भम—नेत्रके प्रान्तभागसे दिखाया जाने वाला विकार विशेष।

नच्चिऊण-अंगहारएहिं—अङ्गहारों से नृत्य करके।

नच्चिऊण—नृत्य करके। अंग-हारअ—अङ्गहार। शरीरके अङ्गोपाङ्गोंसे विविध अभिनय करनेको अङ्गहार कहते हैं।

वंदिया—वन्दित।

य—और।

जस्स—जिनके।

ते—वे (दोनों)।

सुविक्कमा कमा—उत्तम पराक्रम शाली चरण।

पच्चीस प्रकार की क्रियाओं से संचित कर्म की पीड़ा से छुड़ाने वाला।

किरिया—कायिकी आदि पच्चीस प्रकार की क्रिया। विहि—विधान, करना। संचिय—एकत्रित। कम्म—ज्ञानावरणीय आदि कर्म। किलेस—पीड़ा। विमुक्खयरं—विशेषतापूर्वक मुक्त करने वाला, सर्वथा छुड़ानेवाला।

अजिअं—पराजित न हो ऐसा सर्वोत्कृष्ट।

संचिअं—व्याप्त, परिपूर्ण।

य—और।

गुणेहिं—गुणों से, सम्यग्दर्शनादि गुणों से।

महामुणि-सिद्धिगयं—महामुनियों की (अणिमादि आठों) सिद्धियों को प्राप्त कराने वाला। महामुणि—योगी। सिद्धिगय—सिद्धियों को प्राप्त कराने वाला।

अजिअस्स—श्रीअजितनाथ का।

य—और।

संति-महामुणिणो वि य—श्रीशान्तिनाथ भगवान् भी।

संतिकरं—शान्तिकर।

सययं—सदा।

मम—मुझे।

निव्वुइ-कारणयं—मोक्ष का कारण। निव्वुइ—मोक्ष। कारणयं—कारण।

च—और।

नमंसणयं—पूजन।

पुरिसा!—हे पुरुषो!

जइ—यदि।

दुक्ख-वारणं—दुःख-निवारण, दुःख—नाश का उपाय। वारण—निषेध, प्रत्युपाय।

जइ य—और यदि।

विमग्गह—खोजते हो।

सुक्ख-कारणं—सुख प्राप्ति का कारण।

अजिअं—श्रीअजितनाथ का।

संति—श्रीशान्तिनाथ का।

च—और।

भावओ—भाव से।

अभयकरे—अभय प्रदान करने वाले।

सरणं—शरण।

पवज्जहा—अङ्गीकृत करो।

भावार्थ—हे पुरुषोत्तम! हे अजितनाथ! आपका नाम—स्मरण (सर्व) शुभ (सुख) का प्रवर्त्तन करने वाला है, वैसा ही स्थिर—बुद्धि को देने वाला

मयगल-लीलायमाण-वरगंधहत्थि-पत्थाण-पत्थियं संथ-
वारिहं ।

हत्थि-हत्थ-बाहुं धंत-कणग-रुअग-निरुवहय-पिंजरं पवर-
लक्खणोवचिय-सोम-चारु-रूवं,

सुइ-सुह-मणाभिराम-परम-रमणिज्ज-वर- देव- दुंदुहि-
निनाय-महूरयर-सुहगिरं ॥६॥ वेड्ढओ (वेढो)

अजिअं जिआरिगणं, जिअ-सव्व-भयं भवोह-रिउं ।
पणमामि अहं पयओ, पावं पसमेउ मे भयवं ॥१०॥
रासालुद्धओ

शब्दार्थ

सावत्थि-पुव्व-पत्थिवं—श्रावस्ती नगरी के पूर्व (काल में) राजा—
सावत्थि—श्रावस्ती अयोध्या । पूव्व पूर्व । पत्थिव—राजा ।

च—और ।

वरहत्थि-मत्थय-पसत्थ-वित्थिन्न-संथियं —श्रेष्ठ हाथी के कुम्भस्थल जैसे प्रशस्त और विस्तीर्ण संस्थान वाले ।
वर-श्रेष्ठ । हत्थि-हाथी । मत्थय-कुम्भस्थल । पसत्थ-प्रशस्त । वित्थिन्न-विस्तीर्ण । संथिय-संस्थान ।

थिर-सरिच्छ-वच्छं—निश्चल और अविषम वक्षःस्थल वाले । थिर-निश्चल । सरिच्छ-समान, अविषम । वच्छ-वक्षस्थल ।

मयगल-लीलायमाण-वर-गंधहत्थि-पत्थाण-पत्थियं—जिनका मद झर रहा हो और लीलायुक्त श्रेष्ठ गंधहस्ति के जैसी गति से चलते हुए ।

जं सुर-संघा-सासुर-संघा-वेर-विउत्ता भत्ति-सुजुत्ता,
आयर-भूसिअ-संभम-पिंडिअ-सुट्ठु-सुविम्हिअ-सव्व-बलोघा।
उत्तम-कंचण-रयण-परूविय-भासुर-भूसण-भासुरिअंगा,
गाय-समोणय-भत्ति-वसागय-पंजलि-पेसिय-सीस-
पणामा ॥२३॥ रयणमाला

वंदिऊण थोऊण तो जिणं, तिगुणमेव य पुणो पयाहिणं।
पणमिऊण य जिणं सुरासुरा, पमुइआ सभवणाइं
तो गया ॥२४॥ खित्तयं

तं महामुणिमहं पि पंजली, राग–दोस–भय–मोह–वज्जिअं।
देव–दाणव–नरिंद–वंदिअं, संतिमुत्तमं महातवं नमे ॥२५॥
खित्तयं

शब्दार्थ

वागया—आये हुए।
वर-विमाण-दिव्व-कणग-रह-तुरय-पहकर-सएहिं—श्रेष्ठ विमान, सैकड़ों दिव्य मनोहर सुवर्णमय रथ और घोड़ों के समूहों। वर—श्रेष्ठ। विमाण—विमान। दिव्व—दिव्य। कणग—सुवर्ण। रह—रथ। तुरय—घोड़ा। पहकर—समूह। सए—सैकड़ों।
हुलिअं—शीघ्र।
ससंभमोअरण-खुभिय-लुलिय-चल-कुंडलंगय-तिरीड-सोहंत-मउलि-माला—वेगपूर्वक नीचे उतरने के कारण क्षोभ को प्राप्त हुए, डोलते और चञ्चल ऐसे कुण्डल, भुज-

भत्ति—भक्ति। वस—काबू वश। आगय—आये हुए। पंजलि-अंजलीपूर्वक। पेसिय-किया हुआ। सीस—मस्तक। पणाम-प्रणाम, नमस्कार।
वंदिऊण—वन्दन करके।
थोऊण—स्तुति करके।
तो—वादमें।
जिणं—जिनको।
तिगुणमेव—वस्तुतः तीनवार।
य—और।
पुणो—पुनः।
पयाहिणं—प्रदक्षिणा देकर।
पणमिऊण—प्रणाम करके।
य—और।
जिणं—जिनको।
सुरासुरा—सुर और असुर।
पमुइआ—प्रमुदित, हर्षित होकर।
सभवणाइं—अपने स्थानको।
तो—तदनन्तर।
गया—गये।
तं—उन।
महामुणि—महामुनिको।
अहं पि——मैं भी।
पंजली—अञ्जलि-पूर्वक।
राग-दोस-भय-मोह- वज्जिअं — राग, द्वेष, भय और मोह से रहित।
देव-दाणव-नरिंद-वंदिअं—देवेन्द्र, दानवेन्द्रोंसे वन्दित।
दाणव—दानव। नरिंद—नरेन्द्र।
वंदिअ—वन्दित।
संति—श्रीशान्तिनाथको।
उत्तमं—उत्तम, श्रेष्ठ।
महातवं—महान् तपस्वी को।
नमे—नस्कार करता हूँ।

भावार्थ—सैकड़ों श्रेष्ठ विमान, सैकड़ों दिव्य—मनोहर सुवर्णमय रथ और सैकड़ों घोड़ोंके समूहसे जो शीघ्र आये हुए हैं और वेग—पूर्वक नीचे उतरनेके कारण जिनके कानके कुण्डल, भुजवन्ध और मुकुट क्षोभको प्राप्त होकर डोल रहे हैं और चञ्चल बने हैं; तथा जो (परस्पर) वैर - वृत्तिसे मुक्त और पूर्ण भक्तिवाले हैं; जो शीघ्रतासे एकत्रित हुए हैं और वहुत आश्चर्यान्वित हैं तथा सकल—सैन्य परिवार से युक्त हैं; जिनके अङ्ग उत्तम जातिके सुवर्ण और रत्नोंसे बने हुए तेजस्वी अलङ्कारोंसे देदीप्यमान हैं; जिनके गात्र भक्तिभाव से नमे हुए हैं तथा दोनों हाथ मस्तकपर जोड़कर अञ्जलि—पूर्वक प्रणाम कर

वंग—तिलय—पत्तलेह—नामएहिं चिल्लएहिं संगयंगयाहिं,
त्ति—संनिविट्ठ—वंदणागयाहिं हुंति ते वंदिआ
पुणो पुणो ॥२८॥ नारायश्रो

मह्ं जिणचंदं, अजिअं जिअ—मोहं ।
ुय—सव्व—किलेसं, पयओ पणमामि ॥२९॥ नंदिअयं

शब्दार्थ

ंबरंतर-विआरणिआहिं — आकाशके मध्यमें विचरण करनेवाली।
ंबर—आकाश। अंतर—मध्यभाग। विआरणिआ—विचरण करने वाली।
ललिअ-हंसवहु-गामिणिआहिं—मनोहर हंसीकी तरह सुन्दर गतिसे चलने वाली।
ललिअ—मनोहर। हंसवहु—हंसी। गामिणिआ—चलने-वाली।
पीण-सोणि-थणसालिणिआहिं— पुष्ट-नितम्ब और भरावदार स्तनोंसे शोभित।
पीण—भरावदार, पुष्ट। सोणि—नितम्ब, कटिके नीचेका भाग। थण—स्तन। सालि-णिआ—शोभित।
सकल-कमल-दल-लोअणिआहिं—कलामय विकसित कमलपत्रके समान नयनों वाली।
सकल—कलासे युक्त, विकसित। कमल-दल-कमलपत्र। लोअ-णिआ—नयनोंवाली।
पीण-निरंतर- थणभर- विणमिअ-गाय-लयाहिं—पुष्ट और अन्तर-रहित स्तनोंके भारसे अधिक झुकी हुई गात्र लतावाली।
पीण—पुष्ट। निरंतर—अन्तर—रहित। थण—स्तन। भार—भार। विणमिअ—अधिक झुकी हुई। गायलया—गात्रलता।
मणि-कंचण- पसिढिल- मेहल- सोहिअ-सोणि-तडाहिं—रत्न और सुवर्ण की झूलती हुई मेखलाओंसे

वंदिआ य जस्स ते सुविक्कमा कमा,
तयं तिलोय-सव्व-सत्त-संतिकारयं।
पसंत-सव्व-पाव-दोसमेस हं,
नमामि संतिमुत्तमं जिणं ॥३१॥ नारायओ

शब्दार्थ

थुअ-वंदिअस्सा—स्तुत और वन्दित।
रिसि-गण-देव-गणेहिं—ऋषि और देवताओंके समूहसे।
रिसिगण—ऋषियोंका समूह।
देवगण—देवताओंका समूह।
तो—बादमें।
देव-वहुहिं—देवाङ्गनाओंसे।
पयओ—प्रणिधानपूर्वक।
पणमिअस्सा—प्रणाम किये जाते हैं।
जस्स-जगुत्तम-सासणअस्सा—जिनका जगत् में उत्तम शासन है।
जस्स—जिनका। जगुत्तम—जगत् में उत्तम। सासण—शासन।
भत्ति-वसागय-पिंडिअआहिं—भक्तिवश एकत्र हुई।
भत्ति—भक्ति। वसागय—वशीभूत होकर आयी हुई।
पिंडिआ—एकत्र हुई।

देव-वरच्छरसा-बहुआहिं—स्वर्ग की अनेक सुन्दरियाँ।
देव—विमानवासी देव। वरच्छरसा—श्रेष्ठ अप्सराएँ, स्वर्ग की सुन्दरियाँ।
सुर-वर-रइगुण-पंडिअआहिं—देवोंको उत्तम प्रकार की प्रीति उत्पन्न करने में कुशल।
रइ—प्रीति। पंडिआ—कुशल।
वंस-सद्द-तंति-ताल-मेलिए—वंशी आदिके शब्दमें वीणा और ताल आदि के स्वरको मिलाती हुई।
वंस—वंशी। सद्द—शब्द। तंति—वीणा। मेलिअ—मिलाना।
तिउक्खराभिराम-सद्द-मीसए कए—आनन्द वाद्यों के नादका मिश्रण करती।
तिउक्खर—पुष्कर, पणव और

सं—उन ।

तिलोय-सव्व- सत्त -संति-कारयं—
तीनों लोकके सर्व प्राणियोंको शान्ति करनेवाले । तिलोय—तीन लोक । सव्व—सर्व । सत्त—प्राणी । संति-कारय—शान्ति करनेवाले ।

पसंत-सव्व-पाव-दोसं—जो सर्व पाप और दोषों—रोगोंसे रहित हैं ।

पसंत—प्रशान्त, रहित । पाव—पाप । दोस-दोष, रोग ।

एस हं—यह मैं ।

नमामि—नमन करता हूँ, नमस्कार करता हूँ ।

संति—श्रीशान्तिनाथको ।

उत्तमं—उत्तम ।

जिणं—जिन भगवान् ।

भावार्थ—देवोंको उत्तम प्रकारकी प्रीति उत्पन्न करने में कुशल ऐसी स्वर्ग की सुन्दरियाँ भक्तिवश एकत्रित होती हैं । उनमेंसे कुछ बंसी आदि सुषिर वाद्य बजाती हैं, कुछ ताल आदि घनवाद्य बजाती हैं और कुछ नृत्य करती जाती हैं और पाँव में पहने हुए पायजेबकी घुघरियोंके शब्दको कङ्कण, मेखला—कलाप और नूपुर की ध्वनि में मिलाती जाती हैं, उस समय जिनके मुक्ति देने योग्य, जगत्में उत्तम शासन करने वाले तथा सुन्दर पराक्रमवाले चरण पहले ऋषियों और देवताओं के समूहसे स्तुत है -वन्दित है बादमें देवियोंद्वारा प्रणिधानपूर्वक प्रणाम किये जाते है और तत्पश्चात् हाव, भाव विभ्रम और मनुहार करती हुई देवनर्तिकाओंसे वन्दन किये जाते है ऐसे तीनों लोकके सर्व जीवोंको शान्ति करनेवाले, सर्व पाप और दोषसे रहित उत्तम जिन भगवान् श्रीशान्तिनाथको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३०— १ ॥

(विशेषकद्वारा श्रीअजितनाथ और श्रीशान्तिनाथ की स्तुति)

छत्त-चामर-पडाग-जूअ-जव-मंडिआ,
झयवर-मगर-तुरय-सिरिवच्छ-सुलंछणा ।
दीव-समुद्द-मंदर-दिसागय-सोहिआ,
सत्थिअ-वसह-सीह-रह-चक्क-वरंकिया ॥३२॥ ललिअयं